नेशनल पब्लिशिंग हाउस

कुल्लुई लोक साहित्य

डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप

मूल्य : सत्रह रुपये पचास पैसे
प्रथम संस्करण : १६७२
आवरण : एस० के० बेरी
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली-६
मुद्रक : राज कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

KULLUI LOK-SAHITYA
by Dr. P. C. Kashyap Rs. 17.50

अपनी बात

हिमाचल प्रदेश क्या है ? इसका अपना कौन-सा और कैसा व्यक्तित्व है ? इन प्रश्नों का उत्तर हमें यहां के लोक-साहित्य से ही प्राप्त हो सकता है । ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यांकन के लिए जो सामग्री अन्यत्र उपलब्ध है, उसका यहां नितांत अभाव है । यहां प्राप्त है तो केवल लोक-साहित्य, जिसका सहारा लेकर हिमाचली व्यक्तित्व की रूपरेखा निर्धारित की जा सकती है । भाग्यवश यहां का लोक-साहित्य काफी समृद्ध है । प्रदेश की विभिन्न बोलियों में लोक-गीतों, लोक-गाथाओं, लोक-कथाओं, पहेलियों, मुहावरों और परम्पराओं का अतुल भंडार मौजूद है, जिसमें उतनी ही पुरातन ऐतिहासिक सामग्री गुंफित है जितनी ऋग्वेद में, समाज का वैसा ही चित्र विवित है जैसा महाभारत में, और दैनिक जीवन सम्बन्धी वैसी ही सचाई निहित है, जैसी संसार के किसी अन्य साहित्य में । आवश्यकता केवल यह है कि इस साहित्य का व्यवस्थित रूप से अनुशीलन हो ।

यह एक खेदपूर्ण स्थिति है कि हिमाचल प्रदेश में अभी तक इस दिशा में कोई विशेष काम नहीं हुआ है । समूचे राज्य को एक इकाई मानकर उसके लोक-साहित्य के अध्ययन की बात तो दूर रही, इसकी विभिन्न बोलियों के साहित्य का संकलन भी समुचित ढंग से होना अभी बाकी है ।

पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध पर आधारित यह ग्रन्थ इस ओर सर्वप्रथम सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रयास है । इस ग्रन्थ में कुल्लुई लोक-साहित्य के विविध अंगों का संकलन और अध्ययन किया गया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल्लुई भाषा के अन्तर्गत सराजी, शडोची और उत्तरी क्योंथली को भी अन्तर्भुक्त किया गया है । ये सभी बोलियां सहोदरा तो हैं ही, समप्रसवना भी हैं, शौरसेनी से एक ही समय इनका जन्म हुआ है । भाषा-विज्ञान की बारीकियों की कसौटी से भले ही इनकी पृथक्-पृथक् सत्ता हो, किन्तु लोक-साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से इन सब बोलियों का क्षेत्र एक है । यों भी भूतपूर्व राज्यों की राजधानियों से विलग, पूर्व में गिरी-पिब्बर उपत्यका में हाटकोटी, मध्य में सतलजी घाटी में निरमंड तथा

पश्चिम में व्यास उपत्यका का जगतसुख, इस प्रदेश में संस्कृति के केन्द्र रहे हैं, अतः इन तीनों ग्रामों के बीच पड़ने वाले भखंड को संकलन और अध्ययन के लिए कुल्लुई माना गया है। निरमंड हज़ारों वर्षों से इस प्रांत में आर्य संस्कृति का गढ़ चला आया है। जब यह प्रदेश राजा-राणाओं के अधीन था, तब भी निरमंड का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था। यह गांव धर्म, रीति-रिवाज, शिक्षा-दीक्षा और विद्या-कौशल के लिए इस क्षेत्र का प्रकाश-स्तम्भ रहा, इसीलिए संस्कार सम्बन्धी गीतों के उदाहरण वहां से प्राप्त किए गए।

अध्ययन के फलस्वरूप इस पर्वतीय भूखंड में संस्कृति की दो धाराएं प्रवाहित होती दीख पड़ती हैं। एक समूचे देश में बहने वाली सामान्य धारा तथा दूसरी उससे भी बलवती किन्तु अपरिचित-सी धारा है। यहां संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं, पौराणिक देवी-देवताओं की गाथाएं सुनी और सुनाई जाती हैं, त्योहारों और पर्वों पर व्रत रखे जाते हैं, परन्तु प्रातःकाल 'राधेश्याम-सीताराम' का उच्चारण अपशकुन भी माना जाता है।

इस प्रबन्ध में निजी दृष्टिकोण का प्राधान्य हो गया है। यह स्वाभाविक था। खोज सम्बन्धी परम्परा के पूर्ण अभाव के कारण समस्त स्थापनाएं और सभी मानदंड नए स्थिर करने पड़े। लक्ष्य यह रहा कि आगे आनेवाले विद्वानों को हिमाचली लोक-साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन में थोड़ी बहुत सहायता मिल सके।

आरम्भ में विचार था कि इतिहास और संस्कृति का लोक-साहित्य के आधार पर सविस्तार निरूपण किया जाए, पर ज्यों-ज्यों उपलब्ध सामग्री का मनन किया गया तो उचित जान पड़ा कि इस संदर्भ में पृथक् प्रयास होना चाहिए। यहां केवल आठ-दस पृष्ठों में ही अलम् कर दिया गया है।

प्रथम अध्याय में भौगोलिक स्थिति तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उपस्थित की गई है। द्वितीय अध्याय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अभी तक अपनायी गई लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति का परीक्षण कर एक नवीन, संतुलित और बुद्धि-संगत प्रणाली का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त कुल्लुई लोक-साहित्य की अन्य विधाओं का वर्गीकरण तथा प्रत्येक वर्ग का सैद्धांतिक विवेचन भी इसी अध्याय में किया गया है।

तृतीय अध्याय में लोकगीतों के विभिन्न प्रकारों का सोदाहरण निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। संस्कार गीतों के सम्बन्ध में यहां की विभिन्न विवाह-रीतियों की चर्चा है। चतुर्थ अध्याय में जनप्रिय लोक-गाथाओं के टिप्पणी सहित उदाहरण दिए गए हैं। पंचम अध्याय में लोक-सुभाषितों का उल्लेख है और अन्तिम दो अध्यायों में समस्त कुल्लुई लोक-साहित्य के मूल्य और महत्त्व पर विचार किया गया है। परिशिष्ट में शडोची और कुल्लुई बोलियों का

संक्षिप्त व्याकरण है।

विवेच्य सामग्री के अप्रकाशित होने के कारण विवेचन तथा उदाहरणों के बीच संतुलन स्थापित करने की समस्या बार-बार सामने आयी। बीच का यह रास्ता अपनाया गया कि जिन गीतों के लुप्त हो जाने का भय है, उन्हें अधिक संख्या में सम्मिलित किया जाए। भाषा को यथासंभव सरल और सुबोध ही रखा गया है।

कुल्लुई लोक-साहित्य के संग्रह में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक तो पढ़े-लिखे और अनपढ़ दोनों वर्गों में रुचि का अभाव है, दूसरे सारा प्रदेश पहाड़ी होने के कारण वर्षा और शीतकाल में दुर्गम है। तीसरी अड़चन यह सामने आयी कि लोक-गीतों को बोलकर लिखा नहीं सकते, उन्हें तो गीत तभी याद आते हैं, जब वे भावमान होते हैं और तदनुरूप वातावरण पाते हैं, इसके लिए वाद्ययंत्रों का समुचित प्रबंध आवश्यक है। दिन में तो उन्हें काम-काज से अवकाश मिलता नहीं, इस कारण रात में ही अधिकांश गीत लिखने पड़े। इस प्रकार की विशेष कठिनाई 'छाड़ी' तथा 'छींजा' गीतों में सामने आयी। 'छींजा' गाते समय स्त्रियों पुरुषों की उपस्थिति में लज्जा अनुभव करती हैं, अतः मेरी पत्नी को गानेवाली स्त्रियों के पास बैठकर ये गीत लिपिबद्ध करने पड़े।

संग्रह के दिनों में एक और रोचक घटना हुई। 'काव' नामक लोक-गाथा एक फकीरी (चारण) परिवार के पास पुस्तकबद्ध है। यह गाथा नाचते हुए गायी जाती है, उस पर बोलों की गति इतनी तीव्र होती है कि उन्हें लिख पाना असंभव है। पुस्तक प्राप्त करने के भी सभी उचित उपाय किए गए, किन्तु फ़कीरियों ने यह कहकर कि 'यह हमारी ब्रह्मविद्या है,' देने से इनकार कर दिया। हारकर भेद का आश्रय लिया और उनमें से एक शिक्षित युवक की सहायता से पुस्तक प्राप्त की। रातभर टेढ़े-मेढ़े अक्षरों को जोड़-जोड़कर पढ़ने का प्रयत्न करता रहा, पर दूसरे दिन 'ब्रह्म-विद्या' की चोरी प्रकट हो गई और पुस्तक लौटा देनी पड़ी। परिणाम यह हुआ कि बेचारी 'ब्रह्मविद्या' पुनः ताले के नीचे कैद होकर जनसाधारण का कल्याण करने के सुअवसर से वंचित हो गई।

अन्त में मैं उन सब महानुभावों और देवियों का आभारी हूं, जिन्होंने लोक-साहित्य के संकलन में मेरी सहायता की। हिमाचल प्रदेश प्रशासन पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष ठाकुर गोवर्धन सिंह ने अलभ्य पुस्तकें समय-समय पर दीं, और इसके मुद्रण में विशेष रुचि ली, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकटकरता हू।

—पद्मचन्द्र काश्यप

अनुक्रम

कुल्लुई लोक-साहित्य

१ : भौगोलिक-ऐतिहासिक दिग्दर्शन

भौगोलिक अवस्था

कुल्लुई प्रदेश एक विस्तृत पर्वतीय भूखंड है, जिसका क्षेत्रफल ४,५५६ वर्गमील है और जनसंख्या, सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार ४,०७,८०० है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रदेश २,००० फीट से १८,००० फीट की ऊंचाई पर, पंजाब के पूर्वोत्तर में हिमालय तथा शिवालिक के बीच ३१° से ३३° उत्तरी अक्षांश और ७७°-७९° देशान्तर के मध्य स्थित है। इसमें हिमाचल प्रदेश का समूचा कुल्लू जिला, मंडी जिले की सदर तथा चिच्योट तहसील के सराज[1], करसोग तहसील का पूर्वोत्तरी भाग और महासू जिले के रामपुर, कोटगढ़, कुम्हारसेन, शांगरी, रोहड़ू, जुब्बल, कोटखाई और ठ्योग सम्मिलित हैं।

भूमि : इस प्रदेश का अधिकांश भाग, लगभग ९२ प्रतिशत, या तो गहन जंगलों से आच्छादित है, या निर्जन सूखी पहाड़ियों और चट्टानों से भरा है। खेती योग्य भूमि केवल आठ प्रतिशत ही है और वह भी अधिकांश में पथरीली है। इस भूमि में कहीं दो फसलें तो कहीं केवल एक ही फसल उगाई जाती है। खेत, एक नगण्य अंश को छोड़, सब सीढ़ीदार हैं जो कहीं बीस-पच्चीस गज चौड़े होते हैं तो कहीं केवल एक ही गज चौड़े रह जाते हैं।

नदियां : इस प्रदेश की दो बड़ी नदियाँ सतलुज और व्यास हैं, जो सिन्धु में मिलती हैं। तुलनात्मक रूप से दो अन्य छोटी नदियां हैं—पब्बर तथा गिरी। ये दोनों नदियां टोन्स यमुना में गिरती हैं। इनके अतिरिक्त सरवरी, तीर्थन, कुरपन, नोगली, भैरा, बैना आदि कई छोटी-छोटी नदियां हैं जो इन उपर्युक्त बड़ी नदियों में जा मिलती हैं। इन सब नदियों में पानी बारहों महीने रहता है।

उपत्यकाएँ : नदियों के दोनों किनारों पर कहीं-कहीं समतलभूमि है जो कुछ सौ गजों से लेकर कुछ फर्लांग तक चौड़ी है। इसी भूमि तथा निकटवर्ती

१. स्थानीय बोली में 'सराज' का अर्थ है 'ऊंचा प्रदेश'।

इलाके को हम उपत्यकाओं का नाम दे सकते हैं। इस प्रकार की चार बड़ी उपत्यकाएँ हैं—सतलुज, व्यास, पब्बर तथा गिरी उपत्यका। सतलुज उपत्यका में कुल्लू सराज, चिच्योट तहसील का सराज, करसोग का पूर्वोत्तरी भाग, रामपुर बुशैहर, कुम्हारसेन और शांगरी के इलाके हैं। व्यास उपत्यका में, जो 'कुल्लू वैली' के नाम से देशभर में विख्यात है, कुल्लू और मंडी का सराज आता है। पब्बर उपत्यका में रोहड़ू और हाटकोटी तथा गिरी उपत्यका में कोटखाई और ठ्योग के इलाके आते हैं।

सिंचाई : पर्वतीय प्रदेश होने के कारण यहां नदियां गहरी खाई या घाटी बनाकर बहती हैं, जिसके फलस्वरूप बड़ी-बड़ी नदियों से नहरें नहीं निकाली जा सकतीं। सिंचाई के लिए छोटी-छोटी नदियों के जल को ही प्रयोग में लाया जा सकता है, जो तटवर्ती समतल भूमि की सिंचाई करता है। यही कारण है कि खेती की जाने वाली कुल भूमि के ६-७ प्रतिशत भाग में ही सिंचाई की जा सकती है, जिसके लिए छोटी-छोटी नहरें, जिन्हें कुल्हें कहते हैं, निकाली गई हैं। बड़ी नहरों का नितांत अभाव है।

उपज : यहां उपज पथरीली भूमि तथा खेतों के छोटे-छोटे तथा सीढ़ीदार होने के कारण कम होती है। जहां कहीं भूमि कुछ समतल है, खेत बड़े-बड़े हैं और वर्षा सामान्य रूप से होती है, वहां पर पैदावार अच्छी खासी हो जाती है। रबी की फसल में मुख्य उपज गेहूं और जौ हैं तथा खरीफ में धान और मकई, जिसे छल्ली कहते हैं।

धान नहरी जमीन में, जिसे क्यार कहते हैं, होता है। बाथल में उपजाये जाने वाले धान को उफता धान कहते हैं। क्यार में भिझण, जटू, रेड़ी, बेगमी, देबल और धान जीरा उपजता है।

सब्जियों में काकड़ी (खीरा), कद्दू, तोरी, भिंडी, टमाटर, पीपड़ी (मिर्च), वाबरी मूली, गाजर, शलगम, गोभी, पालक, मेथी आदि प्रमुख हैं। केला, कीमूं (चीमूं), आरटी (चूली या शाड़ी), चेरी, आलूचा, अखरोट, आम, गलगल, केमटू, सेब, आड़ू, अमरूद, दाख, बीदाना, नाशपाती, दाड़ू, जामण (जामू) आदि यहां के प्रमुख फल हैं।

सेब और आलू : इधर कुछ दिनों से यहां सुव्यवस्थित ढंग से बागीचे लगाने का प्रचलन हो गया है। कुल्लू, कोटगढ़ और कोटखाई में बहुत बड़े-बड़े सेबों के बागीचे लगाए गये हैं। अब सेब और आलू इस प्रदेश की मुख्य फसलें बन गई हैं। इन फसलों से उत्पादकों को नकद आय होती है। निरन्तर बढ़ती हुई सेब और आलू की मांग के कारण यहां की कृषि में आमूल-चूल परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। आज भी लोग कृषि योग्य भूमि को बड़ी तेजी से सेब के बागीचों और आलू के खेतों में बदल रहे हैं। उपयुक्त जलवायु,

ऊंचाई तथा ढालू भूमि होने के कारण इन दोनों की उपज काफी अच्छी होती है और देश के अन्य भागों में इनकी खपत भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

वैसे भी खाद्य पदार्थों के अनुपयुक्त भूमि होने के कारण तथा केवल एक ही फसल होने के कारण यहां खाद्यान्न का उत्पादन कम ही होता है। यही कारण है कि पहले यहां अकसर अकाल पड़ जाया करता था। अब यातायात के साधनों में भारी सुधार होने तथा सेब और आलू की आयप्रद फसलों के कारण यहां दुर्भिक्ष का भय तो काफी सीमा तक दूर हुआ ही है, साथ ही यहां की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ है।

वन : जैसा कि आरम्भ में लिखा जा चुका है, कुल्लुई प्रदेश का एक बहुत बड़ा भाग वनों से आच्छादित है और अनुमान लगाया गया है कि समस्त भूमि का लगभग ३० प्रतिशत भाग वनों के नीचे है। वृक्षों की दृष्टि से यह वन भारत के सर्वोत्तम वनों में से हैं।

जलवायु : यहां पर जाड़ा और बरसात दो प्रमुख ऋतुएँ हैं। जाड़ा कार्तिक से शुरू होकर चैत्र तक और बरसात आषाढ़ से शुरू होकर असौज तक रहती है। ग्रीष्म ऋतु केवल वैसाख और ज्येष्ठ में महीने-डेढ़ महीने तक रहती है। वसंत, चैत्र और बैसाख में तथा शरद् असौज और कार्तिक के कुछ दिन तक।

पांच महीने की हिमऋतु में काफी मात्रा में हिमपात होता है और १०,००० फुट की ऊंचाई से ऊपर का सारा भाग इन महीनों में हिम से ढका रहता है। वर्फ वैसे सारे प्रदेश में पड़ती है, अतः सर्दी बहुत होती है। ग्रीष्म में गर्मी साधारण-सी होती है। प्रातः और सायं मौसम बड़ा सुहावना होता है।

वर्षा ऋतु में बारिश कई स्थानों पर तो सप्ताह-सप्ताह तक निरंतर होती रहती है, पर साधारणतया समूचे प्रदेश में वर्षा ऋतु में औसत बारिश ३५ इंच तक होती है। सुलतानपुर (कुल्लू नगर), मनाली, नग्गर और बनजार में, जो कम ऊंचाई पर स्थित हैं, औसतन वर्षा क्रमशः ३४, ६३, ४८ और ४१ इंच तक होती है। यहां पर कई गांव ९,००० फुट की ऊंचाई पर भी हैं, पर अधिकतर गांव ३,००० से ६,००० फुट की ऊंचाई पर ही हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भौगोलिक परिस्थितियों को देख यह भ्रम हो जाता है कि यह प्रदेश सर्वदा भारत के अन्य भागों से अलग-थलग रहा होगा। यहां की वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अवस्था से इस प्रकार का भ्रम हो

जाना आश्चर्यजनक बात नहीं। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में ऐतिहासिक सामग्री का भी नितांत अभाव है। लिखित रूप में तो कुछ एक आधुनिक वंशा-वलियों को छोड़ अन्य कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है। शिलालेख भी एक-दो से अधिक नहीं मिलते हैं, और जो उपलब्ध भी हैं वे भी इतिहास पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रकाश नहीं डालते हैं। दो-एक ताम्रलेख मिलते हैं, जिनमें प्राचीनता की दृष्टि से निर्मंड में परशुराम के मंदिर का ताम्रलेख कुछ महत्त्व रखता है। सिक्का केवल कुल्लू के एक राजा का ही मिलता है। प्रदेश के पूर्वी इलाकों में इस प्रकार की कोई भी सामग्री अभी तक प्राप्त ही नहीं हो सकी है। इन पूर्वी भागों के संबंध में हमें सौ-दो सौ साल पहले संकलित वंशावलियों तथा लोक-साहित्य पर ही आश्रित रहना पड़ता है। किन्तु, पश्चिमी भाग, कुल्लू के संबंध में, युवान च्वांग के यात्रा-वर्णन में तथा 'कादम्बरी', 'राजतरंगिणी' आदि ग्रन्थों में भी कुछ सामग्री मिल जाती है। इस प्रदेश में बसने वाली जातियों के संबंध में महाभारत, रामायण, मनु-स्मृति, पुराणों तथा रोमन-लेखक तालमी के ग्रन्थों में थोड़ा-बहुत उल्लेख मिल जाता है।

इस विशृंखलित तथा अपर्याप्त सामग्री को जोड़कर एक सूत्र में बांधने के लिए हमें परम्परा तथा लोककथाओं की अधिक सहायता लेनी पड़ती है। परन्तु खेद है कि इस प्रकार की क्रमबद्ध कथाओं और परम्पराओं का भंडार भी सीमित है। फिर भी जो चित्र हमारे सम्मुख आता है, उसमें हमें प्राग्-ऐतिहासिक तथा ऐतिहासिक काल की कुछ झलक मिल जाती है।

भारत के मैदानी भागों के मानव ने बड़े-बड़े साम्राज्य देखे, कई राज्य बनते-बिगड़ते देखे, धर्म के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तनों में भाग लिया और चिन्तन के क्षेत्र में भी ऊंची उड़ान भरी। हमारे इस प्रदेश के मानव ने भी तुलनात्मक रूप से अनेकों उथल-पुथल देखे। उसने देखा कि वैदिक आर्यों के आने से कई शताब्दियों पूर्व तक का उसका अपना पृथक् इतिहास है। यहां कई परिवर्तन हुए, कई लहरें आईं, जिनके परिणामस्वरूप आज समाज का वह रूप हमारे सामने है जो देश के अन्य भागों में दुर्लभ है। यहां एक ओर यदि बहुत कुछ पुराना है तो दूसरी ओर नवीनता का पुट भी कम नहीं है।

वैदिक आर्यों के भारत-प्रवेश से कई शताब्दियों पूर्व, उनके ही भाई-बंधु इस प्रदेश में आकर बस चुके थे। उन नवागंतुक लोगों को यह प्रदेश जन-शून्य, बीहड़ या केवलमात्र गहन वनों के रूप में नहीं मिला, यहां कुछ जातियों ने पहले से ही अपना आसन जमाया हुआ था, जिनकी संभवतः अपनी बस्तियां थीं, रीति-रिवाज थे, मान्यताएं थीं और शासन-प्रणाली थी। प्रतीत होता है कि उनका मुख्य आहार मांस, ओहे जौ और वनों के फल थे। शादी-विवाह के संबंध में तुलनात्मक रूप से अधिक स्वच्छन्दता थी, जिसमें कर्मकांड का नितांत

अभाव था और सगोत्र आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। कुटुम्ब का मुखिया अथवा बस्ती का वयोवृद्ध पुरुष विशेष अधिकार रखता था। ये जातियां थीं नाग और किन्नर। वर्तमान काल में इन दोनों जातियों का अपना पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है, नाग देवताओं में परिणत हो गये और किन्नर केवल प्रदेश-विशेष को अपना नाम दे लुप्त हो गये, जहां के निवासियों में आज उस प्रागैतिहासिक जाति तत्त्व का नहीं, अनेकों अन्य जाति-तत्त्वों का सम्मिश्रण मिलता है।

नागों और किन्नरों के सम्बन्ध में तो मुख्यत: कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है, किन्तु उनके तुरन्त बाद वाली 'कुलिन्द, तगण और परतंगण जातियों का उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध है।'[1] लगता है कि नागों के पश्चात् इस भू-प्रदेश के स्वामी कुलिन्द आदि जातियां और वे 'नवागंतुक खश हुए, जिनका दल वैदिक आर्यों से पूर्व मध्य एशिया से पहाड़-पहाड़ काश्मीर से होकर यहां आया।'[2] इन जातियों के आधिपत्य के साथ ही यहां के लोगों का भारत के अन्य भागों के साथ सम्पर्क बढ़ा, और वे अपने प्रदेश से दक्षिण की ओर के क्षेत्र से परिचित हुए। यह भारत-युद्ध के आस-पास का समय है और इसकी पुष्टि महाभारत आदि ग्रन्थों और स्थानीय लोक-कथाओं से होती है। इसी समय मैदानी क्षेत्रों से वैदिक आर्य यहां आने और बसने लगे तथा परम्परा के अनुसार यह प्रदेश अनेक ऋषि-मुनियों का तपस्या-क्षेत्र बना।

साहित्यिक सामग्री हमें कुलिन्दों, खशों और वैदिक आर्यों के सम्बन्ध में ही मिलती है। महाभारत और भागवत आदि ग्रन्थों से हमें इन प्राचीन जातियों के निवास-स्थान का ज्ञान होता है और हम यह भी जान लेते हैं कि देश के मैदानी भागों में जब वैदिक आर्यों का कोई बड़ा समारोह, यज्ञ अथवा युद्ध होता तो ये लोग उसमें भी भाग लेते। रोमन लेखक तालमी (ईसा प्रथम शताब्दी) के अनुसार कुलिन्द जाति व्यास-सतलुज—गंगा-जमुना के पास रहती थी और उसके देश का नाम कुलिन्द्रिन था।

शायद उस युग में यहां की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप यहां कोई बड़ा राज्य रहा हो और पश्चिम में लद्दाख से लेकर पूर्व में नेपाल तक तथा उत्तर में पश्चिमी तिब्बत से लेकर हिमालय की दक्षिणी शाखा तक इसका विस्तार रहा हो। इस तथ्य का अनुमान महाभारत के उस प्रसंग से लगाया जा सकता है जहां तत्कालीन भारत की अनेकों जातियों के उल्लेख के संबंध में इन कुलिन्द और खश जातियों का प्रसंग आया है। इस प्रसंग में कहा गया

१. राहुल सांस्कृत्यायन: कुमाऊं।
२. वही।

है कि इन्होंने पांडव महाराज युधिष्ठिर को उसके राजसूय यज्ञ के अवसर पर सोने की धूलि का उपहार दिया था। 'हरिवंश पुराण' के अनुसार इन जातियों ने श्रीकृष्ण के विरुद्ध जरासंध के युद्ध में भाग लिया था। ये जातियां किसी एक शासक के अधीन रही होंगी, तभी वे संगठित रूप से मैदानी भागों की राजनीति में अपना योग दे पाईं।

इस समूचे क्षेत्र में आज से कम से कम तेरह-चौदह शताब्दियों पूर्व एक समृद्ध हिन्दू राज्य था, इस तथ्य की ओर निर्मंड का ताम्रपत्र संकेत करता है। इस पत्र में वरुणसेन, संजयसेन, रविसेन और समुद्रसेन इन चार राजाओं का उल्लेख है, जिनके सम्बन्ध में कनिंघम का तो यह मत है कि ये राजा मंडी के थे। इस विषय में वह कहता है कि मंडी वंशावली में जो नर-वाहन सेन, सुवहनसेन, वीरसेन तथा समुद्रसेन राजा हैं, इस ताम्रपात्र में उन्हीं का उल्लेख है। किन्तु कनिंघम के पश्चात् डा० जे० एफ० फ़्लीट ने इस लेख का सम्पादन किया। डा० फ्लीट ने कनिंघम के मत को गलत ठहराकर यह सिद्ध किया कि कनिंघम इस पत्र के काल को ठीक तरह निर्धारित नहीं कर पाए। कनिंघम ने इसे बारहवीं शताब्दी (११७० ई०) का माना है, जबकि ताम्रपत्र में छठे वर्ष की तिथि दी है, जो सम्भवतः शास्त्रीय संवत् की है। भाषा विज्ञान के आधार पर डा० फ्लीट इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह ताम्रपत्र ईसा की सातवीं शती का है और किसी प्रकार मंडी वंशावली के राजा समुद्रसेन से सम्बन्धित नहीं है। मंडी का समुद्रसेन बारहवीं शताब्दी में हुआ है। साथ ही उनका कहना है कि भाषा विज्ञान के किसी भी सिद्धान्त के अनुसार वीरसेन, सुवहनसेन और नरवाहन सेन, रविसेन, संजयसेन और वरुणसेन नहीं बन सकते। इस विशेषज्ञ के अनुसार यह ताम्रपत्र स्पिती के किसी राजा ने दिया है जो बौद्ध काल से पूर्व वहाँ राज्य करता था।

इस अनुदान का दाता समुद्रसेन अपने आप को महासामन्त की उपाधि देता है, जिससे यह संकेत मिलता है कि वह किसी बड़े राज्य का सामन्त रहा होगा। संभव है कि यह राज्य तिब्बत का रहा हो या भारत के किसी गुप्त सम्राट का, जिसका राज्य-विस्तार तिब्बत तक था। किन्तु एक बात स्पष्ट है कि समुद्रसेन चाहे स्वयं राजा हो या किसी बड़े राज्य का महासामन्त, उसका स्पिती में होना यह सिद्ध करता है कि उस काल में यह समूचा प्रदेश एक राजनीतिक इकाई था, क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए स्पिती से निर्मंड तक आने का मार्ग किन्नर प्रदेश से होकर ही है और जब समूचा कुल्लू तथा किन्नर प्रदेश उसके अधीन रहा हो, तभी वह निर्मंड तक आ पाया होगा। यदि निर्मंड भी उसके राज्य की दक्षिणी सीमा मानी जाए, तब भी यह भाषा-क्षेत्र उसके राज्य के अन्तर्गत आ जाता है। और इस प्रकार हम

देखते हैं कि यहां एक बड़ा राज्य था।

लगता है, भारत युद्ध के पश्चात एक बार पुनः यहां के लोगों का सम्बन्ध मैदानी भाग से टूट गया और स्मृति काल तक आते-आते वे वैदिक आर्यों के आचार-विचार को भूल बैठे तथा मैदानी भागों में इस काल में जो परिवर्तन हुए, जो मान्यताएं और परम्पराएं बनीं उनसे ये लोग अनभिज्ञ रहे। इसी कारण मनु ने इन्हें क्षत्रिय वर्ग से हटाकर म्लेच्छों की श्रेणी में ला बिठाया। उस युग में इन लोगों का झुकाव उत्तर की ओर रहा और देश का मैदानी भाग इनके लिए एकदम अपरिचित स्थान बन गया। कैलाश और मानसरोवर ही तीर्थ यात्रा के पुनीत स्थान बन गये, जहाँ आने-जाने के लिए इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न मार्ग जाते रहे। आज भी पूर्व में हाटकोटी, मध्य में चीनी तथा पश्चिम में कुल्लू की खीर-गंगा के मार्ग इसयात्रा के लिए प्रसिद्ध हैं।

उत्तर के भागों से अधिक सम्पर्क तथा मैदानी भागों से अपेक्षाकृत अपरिचित होने की बात का समर्थन किन्नर प्रदेश के कामरू राज्य के सेनापति तथा बाद में शोणितपुर (सराहन) के राजा बाणासुर की कथा से होता है। इस कथा में बाणासुर द्वारा सतलुज नदी को मानसरोवर से अपने साथ शोणितपुर तक लाने का वृत्तान्त है। शोणितपुर में सतलुज को आदेश दिया गया कि आगे वह अपना मार्ग स्वयं ढूंढे। इस प्रसंग से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मानसरोवर से लेकर सराहन तक का प्रदेश तो बाणासुर और उस काल के लोगों को ज्ञात था, किन्तु सराँहन से दक्षिण की ओर देश के बाकी भागों से वे अपरिचित थे। ऐतिहासिक काल में आकर भी हमें कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय संधियों में मानसरोवर का उल्लेख मिलता है। लद्दाख की 'रग्याल-रबस्' नामक पुस्तक में लद्दाख के राजा ल्हा-चेन-उत्पल (११२५-११५० ई०) का वृत्तान्त है जिसके अनुसार उस राजा ने कुल्लू पर आक्रमण कर वहाँ के राजा को परास्त किया। उनके बीच हुई सन्धि के अनुसार कुल्लू के राजा ने ल्हा-चेन-उत्पल को तब तक सुरागाय खिराज में भेंट देने की शपथ ली थी जब तक कि 'कैलाश पर्वत का हिम न पिघल जाए और मानसरोवर का जल न सूख जाए'। इधर रामपुर बुशैहर के राजा केहरीसिंह ने (सोलहवीं शताब्दी) तिब्बत के शासक को युद्ध में हराकर एक व्यापारिक सन्धि करने के लिए बाध्य किया, जिसका पालन करने की अवधि तिब्बत के राजा ने तब तक मानी थी जब तक मानसरोवर में जल है।

इस विवेचन से यह आभास मिलता है कि किसी समय हिमालय के इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति वर्तमान काल जैसी न रही हो, और प्रागैतिहासिक काल में यहाँ पर बड़े-बड़े राज्य भी रहे हों। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस प्रकार के राज्य यहां सदा से चले आए हों, या वे राज्य चिर काल तक

स्थापित रहे हों। जहां एक ओर बड़े राज्यों के होने के संकेत मिलते हैं, वहां स्थानीय परम्पराओं और लोक-कथाओं से यह ज्ञात होता है कि वास्तव में यहां का शासन ठाकुरों, विष्टों, राणाओं और रावतों के हाथों में था, जो जहां कहीं तो केवल एक-दो गाँवों के स्वामी थे तो कहीं-कहीं पांच-दस गांवों के।

मावी : परम्पराओं में राणाओं, ठाकुरों, विष्टों और मवाई (मावी या मवाणों) का बार-बार उल्लेख आता है। विष्ट तो राणाओं या ठाकुरों के अधीन छोटे-छोटे स्थानीय शासक अथवा वजीर आदि थे, किन्तु मावी या मवाणे प्रागैतिहासिक काल के शासक थे। कई लोककथाओं में बताया गया है कि मावी इस प्रदेश में वैदिक आर्यों के शासन से पहले राज्य किया करते थे। कहीं-कहीं उन्हें राणाओं से पूर्व का माना गया है।

मावी शब्द उपाधिसूचक है या जाति सूचक, इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। कुछ परम्पराओं में यह शब्द उपाधिसूचक लगता है और उनके अनुसार किसी शासक को मवाई या मावी या मवाणा कहा जाता है, किन्तु कतिपय ऐसी किंवदन्तियां भी हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मवाई जाति विशेष का नाम था। शिमला हिल स्टेट्स गेजेटियर में इस प्रकार की एक किंवदन्ती का उल्लेख है और कहा गया है कि ये मवाणे या तो मैदानी भागों से आए जाट थे या स्थानीय खशों को ही मवाणें कहा जाता था। यहां पर भी वही जाट या खश मवाणा कहलाता था जो काफी प्रभावशाली हो।

ये मावी बड़े जिद्दी और महत्त्वाकांक्षी रहे होंगे। एक दूसरे की अधीनता इन्हें असह्य रही होगी। यह बात इस लोकोक्ति से स्पष्ट हो जाती है—तोमें कैआ ऐणें मावीए जेए टौवर[1]। परम्परा के अनुसार यह लोग स्थानीय पंचायतों के मुखिया थे, जहां वे धीरे-धीरे सर्वेसर्वा बन गए। पंचायतें लुप्त हो गयीं और मावी स्वयं शासक बन गये। आरम्भ में लगता है कि मावी का पद वंशानुगत नहीं था और उसका चुनाव होता था, किन्तु कालान्तर में यह वंशानुगत बन गया। इनका अधिक जोर इस प्रदेश के पूर्वी भाग में जुब्बल से लेकर रामपुर तक रहा।

राणा और ठाकुर : सम्भवतः मावियों का अन्त हो जाने पर, इस प्रदेश की बागडोर राणा और ठाकुरों के हाथ आ गई। ये लोग भी मावियों के समान छोटे-छोटे क्षेत्रों के शासक थे। ये लोग अनेक शताब्दियों तक यहां के स्वामी रहे। ये बहुधा स्वतन्त्र शासक थे पर जब आस-पड़ौस का कोई राजा काफी बलवान होता और उसका केन्द्रीय शासन सुदृढ़ होता, तब ये लोग उसकी

१. मावी के कुटुम्बजन जैसे, जिसका प्रत्येक सदस्य अपने आपको दूसरे से बड़ा माने और दूसरे की बात न माने।

प्रभुता स्वीकार कर लेते और नज़राना देकर छुटकारा पा लेते। किंवदन्तियों से ज्ञात होता है कि इन राणाओं और ठाकुरों के युग को अपठकुराई तथा राणा के राज्य को राहूं और ठाकुर के राज्य को ठकुराई कहा जाता था।[१]

राहूं और ठकुराइयों की सीमा प्रायः सीमित ही रही थी और घटती-बढ़ती थी। जब कोई राणा अधिक सक्रिय और बलशाली हुआ, तो उसने आस-पास के दो-चार अन्य ठाकुरों, राणाओं की भूमि हथिया ली और जब कमजोर पड़ गया तो किसी अन्य के हाथों अपना इलाका भी दे दिया। जब कभी कोई शासक प्रमुख बन जाता और छोटे-मोटे अन्य शासकों को अपने अधीन कर लेता तब बात और होती थी। पर साधारणतया ये सभी स्वतन्त्र होते थे और अपनी ठकुराई या राहूं की जनता पर उनका पूर्ण अधिकार होता था।

यह ठकुराइयां और राहूं कब बनें, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु जब से परम्परा में किसी राज्य का उल्लेख आता है, तो इन्हीं ठकुराइयों और राहूं का वर्णन मिलता है। देवी-देवताओं संबंधी कथाओं में भी कई स्थानों पर इन ठाकुरों और राणाओं का उल्लेख आता है। पर कुछ ऐसी भी कथायें हैं जिनमें यह दिखाया गया है कि प्रागैतिहासिक काल में इस प्रदेश में कोई मानव शासक नहीं था और राज्य केवल देवी-देवताओं का ही था।

राजा का उल्लेख हमें पहले पहल बुशैहर के राजपूर्ण और बाणासुर तथा कुल्लू के तांडी का ही मिलता है। तांडी के विषय में ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता कि वह राजा था या राणा। कुम्हारसेन के इलाके में शासक के रूप में सर्वप्रथम भंभूराय का नाम आता है, जो राणा की उपाधि से विख्यात है। लोककथाओं में बाणासुर, राजपूर्ण और तांडी को भारत युद्ध के काल का बताया गया है, किन्तु भंभूराय के बारे में विभिन्न मत व्यक्त किये जाते हैं। किन्हीं कथाओं के आधार पर वह दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी का बताया जाता है, जब उसे मैदानी भागों से आए भगोड़े राजकुमारों ने मरवाया था। कुछ ऐसी भी किंवदन्तियां हैं, जो कहती हैं कि भंभूराय का समय आज से चार हजार वर्ष पूर्व रहा था।[२]

जो भी हो, यह स्पष्ट है कि जब कभी किसी लोक गाथा में किसी राजा का उल्लेख आता है, तब राणा और ठाकुरों की चर्चा भी साथ ही होती है। राणा और ठाकुरों का जोर आज से तीन-चार सौ वर्ष तक पूर्ण रूप से रहा; अंग्रेजों के आधिपत्य से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक उनका क्षेत्र

१. हिस्ट्री आफ दी पंजाब हिल स्टेट्स, भाग १, भूमिका, पृ० १२।
२. लीजेंड्स आफ दी गोड्लिंग्स आफ दी शिमला हिल्स।

कुछ सीमित रहा। उनके राज्य बहुधा तो बड़े-बड़े राज्यों में मिला दिये गए, और जहां वे स्वतन्त्र भी रहे, जैसे कोटखाई, खनेटी, डेलठ और कुम्हारसेन में, वहां भी उन्हें किसी न किसी सीमावर्ती राजा का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक बुशैहर राज्य अठारह ठकुराइयों और सात खूंदों में विभक्त था और वंशावली के ११०वें राजा चतर सिंह के समय में ही इन खूंदों और ठकुराइयों को समाप्त किया जा सका।[1] उधर कुल्लू में भी यही स्थिति रही। यद्यपि सिंह वंश के प्रथम राजा सिद्ध सिंह ने सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में ठाकुरों और राणाओं की शक्ति समाप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता सतरहवीं शताब्दी में राजा जगत सिंह को मिली।

इस प्रदेश में आरम्भ में चाहे देवताओं का राज्य रहा हो, चाहे पंचायत के रूप में मनुष्यों का, किन्तु जब कुछ महत्वाकांक्षी पंचों ने अपना प्रभुत्व इन पंचायतों पर जमाया, तब से इन ठाकुरों और राणाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रदेश में सर्वप्रथम पंचायती राज्य था, इस सम्बन्ध में कई कथाओं और परम्पराओं में अनेक संकेत मिलते हैं। आज भी कुल्लू में मलाणा (जमद्ग्नि ऋषि का तप: क्षेत्र) इसी पंचायती आधार पर शासित हो रहा है। सहस्त्रों वर्षों का स्थानीय राजाओं का शासन और लगभग एक सौ वर्ष का अंग्रेज़ी प्रभुत्व भी इस गाँव की परिपाटी को बदल न सके। मलाणा वालों ने बाह्य हस्तक्षेप कभी स्वीकार नहीं किया, यहां तक कहा जाता है कि आज तक कोई मलाना निवासी किसी सरकारी अदालत में न्याय पाने नहीं गया। उनकी अपनी पंचायत है, अपने कानून तथा दंड-विधान और न्यायालय हैं।

इन प्राचीन राणा और ठाकुरों के सम्बन्ध में हमें केवल लोक-साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। लिखित सामग्री का एकदम अभाव है। केवल इतिहासकार फरिश्ता (ईसा प्रथम शताब्दी) ने कुछ संकेत दिये हैं, या कहीं ताम्रपत्रों या शिलालेखों में नाममात्र इनका संकेत मिलता है। फरिश्ता ने लिखा है कि 'प्राचीन काल में कन्नौज के राजा रामदेव राठौर ने कुमाऊं से लेकर जम्मू दुर्ग तक का पहाड़ी इलाका जीता और इस प्रदेश के पांच सौ छोटे-छोटे राज्यों को, जिनमें जम्मू और कांगड़ा के राजा भी शामिल थे, परास्त किया।'[2] इस भू-प्रदेश में पांच सौ राजा तो हो नहीं सकते, अतः यह स्पष्ट है कि फरिश्ता ने राणाओं और ठाकुरों को ही राजा माना। और यदि उसका अभिप्रायः इन ठाकुरों और राणाओं से ही था तो पांच सौ की संख्या अविश्व-

१. गेजेटियर आफ दी शिमला हिल स्टेट्स।

२. हिस्ट्री आफ दी पंजाब हिल स्टेट्स, भाग १, भूमिका पृ० १२।

सनीय भी नहीं ।

लोककथाओं के अनुसार इन मध्य-कालीन शासकों का शासन अत्यन्त क्रूर था। प्रजा को लूटना इनका दैनिक कार्य था । इनका वचन ही कानून था और ये जब चाहते, किसी को मौत के घाट उतार सकते थे । इतना ही नहीं, लोगों के धन-धान्य को भी ये लोग अपना ही माल समझते थे । इस प्रकार के अनेक प्रसंग हैं, जिनमें बताया गया है कि इन ठाकुरों और राणाओं का जब भी जी चाहता, अपने आदमी भेजकर किसी के घर से कोई भी वस्तु उठवा लाते । सम्भवतः यही कारण है कि कुछ काल पूर्व तक धनी-मानी कुटुम्बों का यह कायदा था कि धन-द्रव्य को दबा कर रखा जाए, घर में कोई मूल्यवान चीज खुली न रहे और खान-पान तथा वेश-भूषा में भी कोई ऐसी बात न हो जिससे उनकी सम्पन्नता प्रकट हो जाए ।

प्रायः इन राणाओं का स्वभाव एकदम क्रूर था और मनोरंजन के साधन तथा आहार-विहार राक्षसी । इस प्रकार के वृत्तांतों की कमी नहीं है, जिनमें बताया गया है कि किसी राणा या ठाकुर को शिशु मांस का भोजन पसंद था, तो किसी अन्य की रुचि स्त्रियों के स्तनों को भूनकर खाने की ओर थी । लगता है कि गाय का दूध तो अनेकों शासकों को अरुचिकर था, और उन्हें भाता था तो केवल नारी का दूध ।

जनता निरीह थी, विवश थी, शोषण की पराकाष्ठा थी, जिससे लोगों का आत्मसम्मान खत्म हो गया । जीवन केवल दिन काटना ही माना जाने लगा ।

कुल्लू और बुशैहर : प्राप्त सामग्री से मालूम होता है कि इस प्रदेश के दो राज्य कुल्लू और बुशैहर, प्राचीन काल से ही साथ-साथ चले आते रहे हैं और दोनों के शासक राजा थे, जिनके राज्य की सीमाएं कभी घटती तो कभी बढ़ती रहीं । ऐसा लगता है कि इन राजाओं द्वारा शासित प्रदेश के दूर-दूर के भागों और उपत्यकाओं में ठाकुरों और राणाओं का जोर रहा । अष्ठकुराई युग कब तक रहा और कितनी अवधि तक रहा, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । कहीं यह पहले समाप्त हो गया तो कहीं बाद में । ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् अनेक राजपूत वंशों का प्रादुर्भाव हुआ, जो सतलुज उपत्यका में तो सन् १९४८ तक बने रहे, किन्तु कुल्लू में लगभग सौ-सवा सौ साल पहले ही समाप्त हो गये ।[१] इन वंशों की स्थापना प्रायः सर्वत्र ही मैदानी भाग से आए राजाओं या राजकुमारों ने की थी । ठाकुरों और राणाओं ने आरम्भ में तो इन भगोड़ों का विरोध किया, किन्तु कुछ काल पश्चात् इनकी प्रभुता स्वीकार कर ली थी । तब भी अपनी ठकुराई और राहू

१. हिस्ट्री आफ दी पंजाब हिल स्टेट्स, भाग १, भूमिका, पृ० १८ ।

में उनके अधिकार में कमी नहीं पड़ी। सोलहवीं-सतरहवीं शताब्दी में आकर कुछ एक ठाकुर राणाओं को छोड़, बाकी सबकी शक्ति और राज्य समाप्त हुए।

कुल्लू राजवंश ईसा की पहली शताब्दी के आस-पास कुल्लू आ चुका था, किन्तु उसके पश्चात् कई शताब्दियों तक इन राणाओं और ठाकुरों से उसका युद्ध होता रहा। प्रारम्भ में इन आगंतुक राजाओं, राजकुमारों को भी यहां केवल पांव टिकाने मात्र का स्थान ही मिला, जिसे बाद में उन्होंने धीरे-धीरे विस्तृत और संगठित किया। कुल्लू के राजा के पास तब केवल जगतसुख के आस-पास का प्रदेश था, और बुशैहर नरेश के पास कामरु-सराहन तक का क्षेत्र। इसी प्रकार कुम्हारसेन की वंशावली का प्रथम राजा कीर्तिसिंह रांगड़ा के समीपवर्ती इलाके का शासक बना और जुब्बल वाला हाटकोटी दुर्गा की जागीर पर आ जमा।

जन-दशा : राजाओं के राज में जनता की क्या दशा थी, इस विषय पर यदि हम ध्यान दें तो जान पड़ेगा कि मध्यकालीन राणा, ठाकुरों के शासन में उनकी जो हालत थी, इन राजाओं के राज्य में भी उससे बहुत अच्छी नहीं थी। अब अन्तर केवल यह था कि ठकुराई, राहूं में राणा या ठाकुर व्यक्तिगत रूप से उसके बीच उपस्थित रहता था, क्योंकि उसका राज्य दो-चार गांव में ही होता था, राजा के राज्य की सीमाएं बड़ी होने के कारण शासक को कई बार काफी दूर राजधानी में रहना पड़ता था। व्यक्तिगत रूप में ये राजा प्रजा के पोषक रहे। दैनिक व्यवहार में वे पिता-तुल्य थे, और जहां तक संभव होता न्याय का ऊंचा मानदंड उपस्थित करते थे। दीन-दुखियों की सहायता करने से कतराते नहीं थे। यही कारण है कि अनेक गीतों और आख्यायिकाओं में इन राजाओं को देवताओं के समकक्ष बैठाया गया है। किन्तु यह शासन की इकाई से काफी दूर पड़ते थे।

स्थानीय शासन मंत्रियों, नेगियों के हाथ में था, जो वहां मनमानी करते थे। जनता के जीवन का मुख्य आधार खेती-बड़ी था, जिसके उत्पादन का एक बड़ा भाग राजा को कर रूप में देना होता था। राजा स्वयं बड़ा जमींदार था और उसके खेतों का काम लोगों को बेगार में करना होता था। बेगार सर्व-प्रचलित थी और कतिपय प्रभावशाली परिवारों को छोड़ अन्य सभी कुटुम्बों को यह निभानी पड़ती थी।

कृषि को छोड़ आय का अन्य कोई साधन न था, और जब फसलें वर्षा की कमी के कारण नष्ट हो जातीं तो बहुधा भंयकर अकाल का सामना करना पड़ता। दुर्भिक्ष के दिनों में सहायता का कोई प्रबंध न था, जिसके फलस्वरूप लोग बड़ी संख्या में मृत्यु का ग्रास बन जाते। बड़ी नहरों का अभाव था।

सिंचाई के साधन लोग स्वयं उत्पन्न करते थे और छोटी-छोटी कुल्हों द्वारा, जहां कहीं संभव होता, सिंचाई कर लेते थे।

जन-कल्याण की बात शायद ही कभी सोची गई हो। कुछ एक वर्ष पहले तक किसी राज्य में यदि दो-चार पाठशालाएं थीं, तो कई राज्य ऐसे भी थे जहां शिक्षा का नाम मात्र को भी कोई प्रबन्ध न था। सम्पन्न घरानों के लोग जो राजकर्मचारी भी थे, अपने बच्चों को थोड़ा-बहुत घर पर पढ़ा लेते थे, या ब्राह्मण पुरोहितों के घर पर परम्परा से चली आ रही शिक्षा का कुछ प्रबंध था। साधारण जनता प्रायः निरक्षर ही होती थी। स्वास्थ्य-सेवाओं की भी-यही दशा थी। प्रदेश में कई बार महामारी का प्रकोप फैल जाता, जिससे गांव के गांव मृत्यु का ग्रास बन जाते। यातायात के साधन तो थे ही नहीं और सड़कों के नाम पर पगडंडियां थीं, जो बहुधा केवल एक गांव से दूसरे गांव तक ही जाया करती थीं।

राजकर्मचारी प्रायः अविवेकी और क्रूर होते थे। उन्हें जनता को लूटकर अपना स्वार्थ पूरा करने की सदा चिन्ता लगी रहती थी। राजधानी से दूर कर्मचारी प्रायः निरंकुश थे। लोगों का जीवन उनके और राजाओं के हाथ में था। मनुष्य के जीवन का कोई विशेष मूल्य न था।

डूम : जनता वैसे तो इस योग्य नहीं थी कि राजा के विरुद्ध विद्रोह करे, पर जब कभी किसी राजा के अत्याचारों की सीमा बहुत बढ़ जाती थी, तो लोग सत्याग्रह कर देते जिसे डूम कहा जाता है। जनता जब किसी शासक का ध्यान किसी विशेष शिकायत की ओर दिलाना चाहती तो लोग अपने-अपने घर छोड़कर जंगल में चले जाते, फसलें बरबाद हो जातीं और राज्य कार्य रुक जाता, वे अपने गांव और घर तभी लौटते जब उनकी मांग पूरी हो जाती थी। डूम की महत्वपूर्ण बात यह है कि यह विद्रोह अहिंसात्मक ढंग से होता था और इसमें जान की कोई हानि नहीं होती थी।

२ : लोक-साहित्य के प्रकार

लोक

'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे वाङ्मय में प्रयुक्त होता आया है। वेदों, उपनिषदों, पाणिनि की अष्टाध्यायी, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, महर्षि व्यास की शतसाहस्रीसंहिता आदि में 'लोक' का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देहि लोकम्' के अनुसार 'लोक' का स्थान के अर्थ में एक प्रयोग मिलता है, किन्तु साधारण जनता के अर्थ में भी ऋग्वेद में 'लोक' का प्रयोग कई स्थलों पर किया गया है। पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है, यथा :

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्॥'[१]

(ऋग्वेद, १०/९०/१४)

आर्यों के आगमन पर आर्येतर जातियों से उनकी मुठभेड़ दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में हुई। फलतः 'वेद' और 'वेदेतर' स्थिति प्रकट हुई। इससे एक अन्य अर्थ की उद्भावना सहज ही हो गई, जिसके अनुसार 'लोक' का दूसरा अर्थ वेद विरोधी (वेदेतर) हुआ।[२]

पाणिनि ने भी वेद से पृथक् 'लोक' की सत्ता को स्वीकार किया है। 'वेद' और 'लोक' की भिन्नता ने वेद की प्रतिष्ठा के साथ 'लोक' के स्वतंत्र महत्त्व को क्रमशः स्वीकार किया है। शीघ्र ही 'लोक' वेदेतर संस्कृति के संकुचित अर्थ से ऊपर उठ गया और उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों वर्गों को सहज रूप से छूने लगी।[३]

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्री-

१. 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' प्रस्तावना, पृ० १।
२. श्याम परमार : 'भारतीय लोक साहित्य, पृ० १।
३. वही।

संहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि यह ग्रंथ (महाभारत) अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आंखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।[१]

'लोक' का साधारण जनता के लिए प्रयोग अशोक के शिलालेखों में भी हुआ है। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ 'लोक' मानव मात्र के भावों से भूषित हुआ। प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजत्ता', 'लोकोप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्त्व व्यक्त करते हैं। यजुर्वेद में 'लोक' (समाज) की एक विराट कल्पना की गई है। वह पुरुष रूप ईश्वर है। उसके सहस्रों मुख, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं —

'सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।'

यह 'लोक' अनेक रूपों में परिव्याप्त है :—

'बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः।

'लोक' साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त मानव सम्मिलित हैं। 'लोक' में नागरिक एवं ग्रामीण दोनों संस्कृतियां विद्यमान हैं। प्रत्येक देश की संस्कृति तथा साहित्यिक परम्परा के दो भाग होते हैं —ग्रामीण परम्परा तथा नागरिक परम्परा। इन दोनों का संबंध ऐसा समझिये जैसे दूध और उसके ऊपर की मलाई की तह का।[२] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में 'लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथिवी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।'[३]

सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रस्तावना, पृ० २
२. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, परिचय।
३. सम्मेलन पत्रिका (लोक-संस्कृति विशेषांक) २०१०, पृ० ६५, 'भारतीय लोक-साहित्य' से उदधृत।

अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।'[१]

विश्वभारती-शान्ति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डा० कुंज विहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा बतलाते हुए 'लोक' शब्द की भी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कथन है —'लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रह कर कम या अधिक रूप से आदिम अवस्था में निवास करते हैं।'[२]

इससे यह स्पष्ट है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है।[३]

ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में फोक (लोक) की व्याख्या यों की गई है —'एक आदिम जाति में वे सभी व्यक्ति फोक (लोक) होते हैं जिनसे वह सम्प्रदाय बना है, और शब्द का विशदतम अर्थ लिया जाये तो इसका प्रयोग सभ्य राष्ट्र की सारी जनसंख्या के लिए भी किया जा सकता है, किन्तु लोक-संस्कृति, लोकसंगीत आदि से सम्बन्धित संकुचित अर्थ में प्रमुखतया उन्हीं के लिए आता है जो नगरसंस्कृति की धाराओं तथा विधिवत् शिक्षा से बाहर पड़ जाते हैं, जो निरक्षर अथवा कम पढ़े हैं और गांव अथवा जनपदों में निवास करते हैं।'

आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज जिसमें पूर्व संचित परम्परायें, भावनायें, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।[४]

इसी साधारण जन-समाज के साहित्य को लोक-साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है तथा परम्परागत रूप से चला आता है। यह साहित्य जब तक मौखिक रहता है, तभी तक इसमें ताजगी और जीवन पाया जाता है, लिपि की कारा में रखते ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है।[५]

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास। षोडश भाग, प्रस्तावना में उद्धृत
२. वही।
३. वही।
४. श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ० ११।
५. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश, भाग, प्रस्तावना, पृ० ४।

लोक संस्कृति

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही देश में संस्कृति की दो पृथक धारायें प्रवाहित हो रही थीं— १. शिष्ट संस्कृति, २. लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस अभिजात्य वर्ग की संस्कृति से है, जो बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचा हुआ था, जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी और पथप्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन-साधारण की उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्स भूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थी।[1]

वेदों में अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो गृह्य सूत्र लोक संस्कृति के विश्वकोष।

लोक संस्कृति और फोकलोर

इसी लोक संस्कृति को पश्चिम के देशों में फोकलोर का नाम दिया गया है। शार्लट सोफिया बर्न ने फोकलोर की वैज्ञानिक परिभाषा दी है। उसने कहा है कि 'यह एक जाति बोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियां, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्ध के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी, इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज, अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध-आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथायें, लोक कहानियाँ, साके, गीत, किंवदन्तियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं। संक्षेप में, लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है। जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके हैं जो

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना पृ० ४।

मछुआ समुद्र पर करता है। पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उसके बनाते समय दी जाती है और उसको उपयोग में लाने वाले का विश्वास। लोक वार्ता (लोक संस्कृति) वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठान में, अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में[१]।

फोकलोर शब्द की उत्पत्ति

सन १८४६ ई० में इंगलैंड के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता विलियम जान टामस ने 'फोकलोर' शब्द का निर्माण किया। यह शब्द इतना लोकप्रिय हुआ कि यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में इसका प्रयोग किया जाने लगा। फोकलोर दो ऐंग्लो सेक्सन शब्दों 'फाक' तथा 'लार' से उत्पन्न हुआ है। 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए डा० बार्कर ने लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है, परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाए तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन फोकलोर के संदर्भ में 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोग' है। 'लार' का अर्थ है 'सीखा गया या जो सीखा जाये' अर्थात ज्ञान। इस प्रकार फोकलोर का अर्थ हुआ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'। सोफिया बर्न ने फोकलोर का शाब्दिक अर्थ किया है, 'दी लर्निंग आफ दी पीपल' अर्थात लोगों की विद्या।

फोकलोर का पर्याय

हिन्दी में फोकलोर के पर्यायवाची शब्द के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि हमनें फोकलोर का एक नवीन पर्याय घड़ने का प्रयत्न किया है और उसके शाब्दिक अर्थों के साथ मेल खाने वाला शब्द बनाना चाहा। फोकलोर के वाच्यार्थ को लेकर किसीनें 'लोकविद्या' शब्द सुझाया तो किसी ने 'लोकायन'। भाषा विज्ञानवेत्ता डा० भोलानाथ तिवारी ने फोकलोर के लिए 'लोकशास्त्र', 'लोक विज्ञान', 'लोक-परम्परा', 'लोक-प्रतिभा', 'लोक-प्रवाह', 'लोक-पथ', 'लोक-विधान', 'लोक-संग्रह', 'लोक-अयन' आदि शब्दों की ओर संकेत किया है।[२] 'फोक' के लिए अधिकांश विद्वान 'लोक' का ही प्रयोग करते आये हैं, किन्तु पं० रामनरेश त्रिपाठी का फोक० शब्द के लिए 'ग्राम' शब्द पर अधिक आग्रह रहा है। इसी आधार पर

१. बर्न की 'हैंडबुक आफ फोकलोर', डा० सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य, पृ० ४-५।
२. भारतीय लोक साहित्य पृ० १५।

उन्होंने 'फोक सांग' का हिन्दी पर्याय 'ग्राम गीत' स्वीकार किया है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० सत्येन्द्र, श्री कृष्णानन्द गुप्त एवं डा० श्याम परमार ने 'लोक वार्ता' को फोकलोर के पर्यायवाची के रूप में स्वीकार किया है। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने बुन्देलखंड के 'लोकवार्ता-पत्र' के निवेदन में लिखा है: 'लोकवार्ता को अंग्रेज़ी में फोकलोर कहते हैं। अथवा यह कहिए कि फोकलोर के लिए हमने लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है 'जनता का साहित्य', ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', 'घरू वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' आदि ग्रन्थ के वार्ता शब्द के आधार पर फोकलोर का लोकवार्ता पर्याय स्वीकार किया है। डा० श्याम परमार ने भी 'सुविधा के लिए' फोकलोर के लिए वार्ता शब्द स्वीकार किया है।

लोकवार्ता को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियां हैं। डा० भोलानाथ तिवारी के शब्दों में लोकवार्ता में अधिक से अधिक लोककथा का भाव वहन करने की क्षमता है। डिंगल में 'बारता' या 'वीरता' का प्रयोग कथा के अर्थ में ही होता है। 'हिन्दी लोक साहित्य का वृहत् इतिहास' षोडश भाग की प्रस्तावना में डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि वार्ता शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं है। लोकवार्ता शब्द में अधिक से अधिक लोकगाथा या लोकचर्या का भाव वहन करने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त लोकवार्ता शब्द संस्कृत साहित्य में एक अन्य अर्थ—प्रवाह, अफ़वाह, या किंवदन्ति के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वार्ता का प्रयोग अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के लिए किया गया है और महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में वार्ता का प्रयोग नूतन समाचार या नई बात के अर्थ में किया गया है।

डा० उपाध्याय के मतानुसार 'फोकलोर' के लिए लोक संस्कृति शब्द का प्रयोग नितान्त उपयुक्त एवं समीचीन है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'फोकलोर' के अर्थ में लोक संस्कृति शब्द को ग्रहण करने का सुझाव उपस्थित किया है।[१]

लोक संस्कृति में जीवन से सम्बन्धित जितने आचार-विचार, विधि, निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि हैं, वे सभी आते हैं।

१. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, सं० २०१०।

सोफिया बर्न के अनुसार 'फोकलोर' में भी ये ही विषय समाविष्ट हैं। 'ब्रजलोक साहित्य के अध्ययन' में बर्न द्वारा किये गये विषय विभाजन की तालिका इस प्रकार दी गई है:—

१. वे विश्वास और आचरण, अभ्यास जो सम्बन्धित हैं: (१) पृथ्वी और आकाश से, (२) वनस्पति जगत से, (३) पशु जगत से, (४) मानव से, (५) मनुष्य निर्मित वस्तुओं से, (६) आत्मा और दूसरे जीवन से, (७) परा-मानवी व्यक्तियों से (जैसे देवी-देवताओं तथा ऐसी ही अन्य शक्तियों से), (८) शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणियों और आकाशवाणियों से, (९) जादू टोनों से, और (१०) रोगों तथा स्थानों की कला से।

२. रीति-रिवाज: (१) सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ, (२) व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, (३) व्यवसाय, धन्धे तथा उद्योग, (४) तिथियां, व्रत तथा त्योहार, (५) खेल-कूद तथा मनोरंजन।

३. (१) कहानियां, (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं, (आ) जो मनोरंजन के लिए होती हैं, (२) गीत, सभी प्रकार के, (३) कहावतें तथा पहेलियां, और (४) पद्यबद्ध कहावतें या स्थानीय कहावतें।[१]

'फोकलोर' की इस विषय-तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक संस्कृति, शब्द 'फोकलोर' के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है और इसका प्रयोग अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति, दोनों दोषों से मुक्त है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने दूसरी युक्ति यह दी है कि हिन्दी में लोक संस्कृति शब्द चिरपरिचित है और इसके उच्चारण मात्र से ही जन-जीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झांकी, हमारी आंखों के सामने उपस्थित हो जाती है।

हिन्दी में लोक संस्कृति शब्द पहले से ही होने के कारण नए शब्दों का निर्माण तथा लोकायन और लोकयान जैसे अपरिचित शब्दों का प्रचलन व्यर्थ है। यदि कहा जाये कि लोक संस्कृति शब्द 'फोक कल्चर' का पर्याय हो सकता है, तो वस्तुतः 'फोक कल्चर' और 'फोकलोर' में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों की सीमायें एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई पड़ती हैं।[२]

लोक संस्कृति और लोक-साहित्य

सोफिया बर्न ने लोक संस्कृति का जो श्रेणी-विभाजन किया है, उसे देखने से स्पष्ट हो जाता है कि लोक-साहित्य लोक संस्कृति का एक भाग है, उसका एक

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५।
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, पृ० १२।

अंश है। यदि लोक संस्कृति की तुलना किसी विशाल वट वृक्ष से की जाए, तो लोक-साहित्य को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए। यदि लोक संस्कृति शरीर है तो लोक-साहित्य उसका एक अवयव मात्र है। लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, लोक का जितना जीवन है उतना ही लोक संस्कृति का विस्तार है, परन्तु लोक-साहित्य का विस्तार भी संकुचित नहीं। लोक संस्कृति में लोक साहित्य का अन्तर्भाव होता है। परन्तु लोक-साहित्य में लोक संस्कृति का समावेश होना संभव नहीं है। यदि लोक संस्कृति सागर है तो लोक-साहित्य उसमें गिरने वाला एक नद।

वैसे स्वयं लोक-साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती, रोती, बोलती, हंसती है, उन सबका समावेश लोक-साहित्य में होता है। इसके अन्तर्गत स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों का गद्य एवं वाङ्मय आता है। लोक-साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है। यह स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है।

लोक-साहित्य का परिचय

चिरंतन मानव का चिरंतन मन सम्भवतः सृष्टि के आरम्भ से ही अपने भावों, मनोवेगों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता आया है। सभ्यता के विकास तथा सामाजिक संगठन के साथ-साथ उसने अभिव्यक्ति के विभिन्न साधनों को अपनाया है। ललित कलाओं का सहारा लिया, कभी अपनी अन्तर्दृष्टि से देखे हुए सौंदर्य को उसने मूर्तिकला द्वारा मूर्तिमान् किया, कभी रंगों और तूलिका के माध्यम से एक चित्र बनाकर एक नये संसार की सृष्टि की और कभी संगीत की स्वर-लहरी से अपने सुख, दुख, हर्ष, विषाद की अभिव्यक्ति की। जब भावों का वेग तीव्रतर हो उठा तो हर्षातिरेक में मन ने शरीर को दास बनाकर नचा डाला। इन साधनों के साथ उसने आश्रय लिया शब्द का, संगीत-मिश्रित ध्वनि का।

मानव ने अपने नैसर्गिक, स्वाभाविक, प्राकृतिक भावों को, उद्गारों को ध्वनि रूप दिया, शब्दों का बाना पहनाया, जो पारिभाषिक शब्दावली में हमारा साहित्य बना। जहां सुसंस्कृत मन संस्कृत, परिष्कृत भाषा में अपने उद्गारों को लिपिबद्ध करता रहा, वहां भोले मानव का शाश्वत मन लिपि के बंधन से मुक्त रहा, लिखित साहित्य की परिधि से बाहर, अपने हर्ष, उल्लास, दुख-सुख, संयोग-वियोग, मिलन-विरह, आशा-निराशा को स्वतंत्र रूप से वाणी देता रहा। मनुष्य के शाश्वत मन का स्पष्ट प्रतिबिम्ब इसी वाणी के साहित्य में मिलता है, अतः इसे लोक-साहित्य का नाम दिया गया।

सारे संसार के लोक-साहित्य की यही अवस्था है। चाहे जिस भाषा का

साहित्य हो, जिस समाज की झंकार हों, आत्मा एक है, मूल एक है, शरीर और परिधान भले ही विभिन्न हों। एक सूत्र है, एक ही शृंखला है, साधारण मानव की भोली सूझ और कल्पना भी एक ही है। स्थान-विशेष के कारण कुछ वैविध्य भले आ गया हो। यदि पर्वतीय मानव, विशाल और उच्च हिमधवल शृंखलाओं, गहन वनों, वृक्ष पंक्तियों, रंग-बिरंगे पुष्पों, फलों से प्रभावित है तो मरु प्रदेश का हृदय एक निर्जनता, एक अतृप्त तृष्णा लिये चला है। उधर समुद्र तट का वासी, जलधि की विशालता और असीमता को हृदय में छिपा उसकी सहृदयता अथवा उग्र रूप का गीत गाता है। शस्य से हरे-भरे खेतों के बीच का प्राणी, भूमि की सुगंध, खेतों के गीत और अपने जीवन के उनसे निकट संबंध के विषयों को लेकर गा उठता है।

'सुसंस्कृत मनुष्य का साहित्य अनेक रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। कविता पिंगल शास्त्र की नपी-तुली नालियों से प्रवाहित होती है, अलंकार के भार से शिल्प विधान (टेक्नीक) को ध्यान में रखना पड़ता है तथा नाटकों की रचना में अनेक नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ता है। इसके विपरीत लोक-साहित्य का महान् और प्रधान गुण है स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता तथा सरलता। यह साहित्य उतना ही स्वाभाविक है जितना आकाश में उड़ने वाला पक्षी। सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना लोक-साहित्य में प्राप्त होती है। इस प्रकार लोक-साहित्य वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिये रचा गया हो।'[1] हमारी मातृभूमि के विविध मोहक आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य का परा-दर्शन लोक-साहित्य में ही मिलता है।[2]

लोक-साहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य जन-जीवन का दर्पण है, यह जनता के हृदय का उद्गार है। सर्व-साधारण जनता जो कुछ सोचती है, जिन भावों की अनुभूति करती है, उसी का प्रकाशन उसके साहित्य में उपलब्ध होता है। यह स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों सभी के लिये है। इस साहित्य की एक श्रेणी केवल स्त्रियों की है, दूसरी पुरुषों की और तीसरी बच्चों की। परन्तु कुछ ऐसा भी साहित्य है जो स्त्री-पुरुष दोनों का है। हमारे कुल्लुई साहित्य में 'लामण' आदि लोकगीत तो हैं ही केवलमात्र स्त्री-पुरुष के। इन्हें यद्यपि स्त्रियां और पुरुष पृथक्-पृथक्

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना पृ० १५।

२. गोविन्द चातक : गढ़वाली लोकगीत, आमुख।

भी गा लेते हैं परन्तु वास्तव में ये दोनों के संवादात्मक रूप में गाने के हैं। एक ओर से 'लामण' द्वारा प्रश्न होता है, तो दूसरी ओर से उसी के अन्य पद द्वारा उत्तर दिया जाता है। युवक युवतियों का 'लाहलड़ी' नृत्य-गीत ऐसा है जिसमें वे सम्मिलित रूप से भाग लेते हैं।

स्त्रियों के पास सुनाने का भी लोक-साहित्य होता है। यह साहित्य प्रायः बच्चों को सुनाने के लिये होता है। इसमें मनोरंजन का भाव प्रमुख रहता है। बच्चों की कहानियां तथा शिशुओं के मनोरंजन के गीत इसमें सम्मिलित हैं। यथार्थ में यह सुनाने का साहित्य जितना स्त्रियों का है उतना ही पुरुषों का भी। दोनों ही इसे समान रूप से काम में लाते हैं। इस प्रकार समस्त लोक-साहित्य का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है :

लोक-साहित्य

स्त्रियों का साहित्य	पुरुषों का साहित्य	स्त्रियों और पुरुषों का साहित्य	बच्चों का साहित्य

समस्त लोक-साहित्य को डा० सत्येन्द्र ने पहले दो बड़े भागों में बांटा है :—(१) परम्परित और (२) रचित।[1] परम्परित साहित्य वह है जो परम्परा से चला आया है, जिसके रचयिता का पता नहीं। रचित साहित्य वह है जिसके रचयिता का नाम ज्ञात है। कुल्लुई साहित्य में 'नाटी' आदि कुछ ऐसे गीत भी हैं जो नवीन हैं और जिनका निर्माण आये दिन होता रहता है। पर जिनके रचयिताओं का नाम ज्ञात नहीं अथवा जो अपना नाम स्वयं अपनी रचना में नहीं देते हैं। इस प्रकार के गीतों को हम परम्परित में ही रख सकते हैं। वैसे भी सारे लोकगीतों की यह एक प्रधान विशेषता है कि उनमें रचयिता का नाम नहीं होता है। कतिपय उन 'घरमाड़', 'घरमाड़ी', 'ब्रह्मखाडा' के पदों को तथा 'भ्यांदडा' और 'नटावक' के भजनों को छोड़कर जिनमें कबीर, नामदेव, तुलसीदास और सूरदास के नाम हैं, ऐसी रचनाएं कुल्लुई में नहीं जिनमें रचयिता का नाम दिया हो। किसी सीमा तक 'होली' गीत को हम रचित मान सकते हैं।

परम्परित के डा० सत्येन्द्र ने दो प्रकार किये हैं :—गद्य तथा पद्य। इन्हें भी दो-दो भागों में बांटा है—(१) स्त्री समाज प्रचलित, (२) पुरुष समाज

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ७२-७३।

प्रचलित। गद्य साहित्य में मुख्यत: कहानियों को लिया गया है और पद्य साहित्य को दो भागों में बांटा है :—एक गीत और दूसरा प्रगीत। प्रगीत साहित्य बहुधा कहानियों के कहने के ढंग को ही ग्रहण कर लेता है। कुछ 'पहेलियां', कुछ 'क्रमानुबद्ध पद्य कहानियां', 'खुसि', 'अनमिल्ले', 'गहगेड्ड' इस विभाग में मुख्यत: मिलते हैं।[१]

कुल्लुई में कतिपय ऐसी कहानियां भी मिलती हैं जो गद्य और पद्य दोनों में हैं, कहानीकार किसी पद्य से कथा आरम्भ करता है और छोटे-छोटे वाक्यों में उसे आगे बढ़ाता चलता है, जहां कोई मार्मिक स्थल आये वहां पद्य का प्रयोग करता है। 'मियां रांझा' आदि कहानियां इसके उदाहरण हैं। इन्हें हम लोकगाथा भी कह सकते हैं।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-साहित्य को इन २८ वर्गों में बांटा है :— १. संस्कारों के गीत, २. व्रतों और त्यौहारों के गीत, ३. ग्राम-गाथाएं, ४. ग्राम कथाएं, ५. मन्दिरों में गाये जानेवाले पद, ६. राह के गीत, ७. खेत के गीत, ८. भिखमंगों के गीत, ९. कोल्हू के गीत, १०. भिन्न-भिन्न जातियों के गीत, ११. चक्की के गीत, १२. ऋतुओं के गीत, १३. बच्चों के गीत, १४. गांव में मनोरंजन के साधन—मेले और तमाशे, १५. गांव के खेल, १६. गुड़ियों के गीत, १७. ग्राम संगीत (नाच और गीत), १८. नाच और उसके तरीके, १९. बाजे और उनके उपयोग, २०. नीति की कहावतें, २१. स्वास्थ्य की कहावतें, २२. खेती की कहावतें, २३. बुझौवल और ढकोसले, २४. बारहमासे, २५. नये-नये शब्द और मुहावरे, २६. मनुष्य और पशुओं के रोगों के नुस्खे, २७. पेशेवर शब्द और २८. जड़ी-बूटियों की पहचान और उनके उपयोग।[२]

उपर्युक्त विभाजन पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। कई वर्ग केवल संख्या बढ़ाने के लिए हैं। कहावतों के तीन भेद कर दिये गये हैं जबकि एक ही वर्ग में रखी जा सकती हैं। इसी प्रकार चक्की और कोल्हू के गीत श्रम गीत के अन्तर्गत आ सकते हैं। धर्मगीत और संस्कार गीत के दो पृथक् वर्ग बनाना उचित नहीं है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने वैज्ञानिक ढंग से लोक-साहित्य को इन पांच प्रधान भागों में विभक्त किया है :—१. लोक-गीत, २. लोक-गाथा, ३. लोक-कथा, ४. लोक-नाट्य और ५. लोक सुभाषित।[३]

१. डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ८०।

२. ग्राम साहित्य, पहला भाग, पृ० ३८-३९।

३. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना।

लोक सुभाषितों के अन्तर्गत लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां आदि विषयों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। इन सुभाषितों का प्रयोग गांव में रहने वाले लोग अपने दैनिक व्यवहार में करते हैं। डा० उपाध्याय ने लोक-सुभाषित को प्रकीर्ण साहित्य की संज्ञा भी दी है।

१. लोक-गीत

लोक-गीत अशिक्षित ग्रामीण जनता के भावुक तथा संवेदनशील हृदय के वे स्वाभाविक उद्गार हैं, जो संगीत की बलवती धारा के रूप में प्रवाहित हो उठते हैं। संगीत इनमें प्राण प्रतिष्ठा करता है, इसीलिये कहा जाता है कि हृदय के उद्रेक से युक्त कलापूर्ण संगीत ही लोक-गीत है।[1] अथवा गीत बद्ध भावनायें ही लोक-गीत हैं।

लोक-गीतों में जनजीवन की सच्ची झांकी निहित है तथा भारतीय संस्कृति एवं हमारे परंपरागत जीवन का सुन्दर और सच्चा इतिहास गुंथित है। लोक-गीतों पर विचार करते हुए एक बार महात्मा गांधी ने कहा था :—

'लोक-गीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियां गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएं और परंपराएं गाती हैं।[2]

लोक-गीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, पंडितों की बंधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य धारा के साथ-साथ सामान्य अनपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है।[3] ये गीत जीवन्त काव्य है, यह कभी मिटता नहीं, पर जैसे-जैसे सामान्य जनभाषा में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे ही इन गीतों की भाषा भी बदलती जाती है। पर भाव वही बने रहते हैं। इससे कहा जा सकता है कि वस्तुतः लोक-गीत न तो पुराना ही होता है और न नया ही। यह उस जंगली पेड़ के समान है, जिसकी जड़ें भूत की गहराई में हैं और जो नित्य नवीन शाखाओं, पत्तियों और फलों को उत्पन्न करता है।[4] काल का प्रभाव इन पर पड़ता अवश्य है, परन्तु इससे बाह्य रूप में ही परिवर्तन होता है। भाषा का आवरण धीरे-धीरे बदल जाता है, पर भीतरी प्राण तत्त्व में कोई अन्तर नहीं आता।[5]

'कांगड़ा के लोक-गीत' की भूमिका में लिखते हुए श्रीमती अमृता प्रीतम

१. सन्तराम अनिलः कनउजी लोकगीत, पृ० ४२।
२. धूलि-धूसरित मणियां, भूमिका (ग)
३. पं० रामचन्द्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२४।
४. ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका।
५. सूर्य करण पाखरीः राजस्थानी लोकगीत, पृ० २।

का कहना है कि लोक-गीतों का पवित्र मोती चाहे सागर की अतुल गहराइयों में पड़ा रहे, किन्तु जब भी उसे निकालो, वह पूर्वावस्था के समान ही पवित्र तथा आभायुक्त होता है। सुधारवादी आन्दोलनों की चक्की कई बार बड़े मासूम गीतों को तथा उनकी निर्दोष परम्परा को पीसने के लिये उद्यत हो जाती है, किन्तु नदियों को तो कोई बांध सकता है, आकाश की बौछारों को कौन-सी हथेली रोक सकती है ? जनता ऐसी चक्की पर भी गीत रच देती है तथा भावी संतानें पिछली पीढ़ी की धरोहर को अपने हृदय में संजोये रखती हैं। लोक संध्याकालीन झुटपुटों तथा फूटती किरणों में बैठ-बैठकर हृदयों की इस सम्पत्ति का आनन्द लूटते हैं। इन गीतों में छन्द जीवन के संयुक्त मंचों पर भी गूंजते हैं तथा प्रेमियों की एकाकी-निशाओं में भी सिसकते हैं।

अल्हड़ स्वभाव लोकगीत 'पिंगल' का आश्रित नहीं होता। उसके नैसर्गिक सौंदर्य को अलंकारों तथा शृंगारिक आवरणों की आवश्यकता नहीं होती, उनके अक्षय आनन्द और उद्दाम यौवन को मात्राओं की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। उसे तो उसका आन्तरिक भाव मार्ग दिखाता है और उसकी उदात्त भावना संगीत का रूप धारण कर लेती है।[1]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, लोकगीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएं, खंडिताएं और धीराएं न्यौछावर की जा सकती हैं। क्योंकि यह निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। यह अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और अपने आप में परिपूर्ण है।[2]

जीवन की आवश्यकताएं, अभाव तथा 'रेशमी थीपू' और 'गरी का गोला' जैसी छोटी-छोटी लालसाएं ही दैनिक जीवन के गीत बन जाती हैं।

परी के कथनानुसार लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में पनपते हुए मानव में जब थोड़ी बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिए उसने विकृत अलाप लेना आरंभ किया और यही आदि संगीत लोकगीत है।

जन-जीवन के भाव अभिव्यक्त तो होते हैं, किन्तु अंकित नहीं। जहां वे अंकित हो जाते हैं, देश, काल और परिस्थिति की छाया उनमें बोलती है। उनके अंकन में बनना और बिगड़ना एक प्रकार से जाति की सूचना का वाहक है। खेतों में, नदियों, पहाड़ों, मैदानों या रास्तों में अथवा घरों में आपसी बातों में, विरह में, वेदना में, हल चलाते हुए, खेलकूद या हंसी मज़ाक में, जहां भी

१. कांगड़ा के लोक गीत, पृ० ३[illegible]
२. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १२० ।

हो, अलग-अलग अवसरों पर गीत बनकर कंठों से फूटते हुए और फूटकर उछल-मचलते, नये शब्दों और छन्दों की जोड़-तोड़ के साथ कुछ समय तक टिकते अवश्य हैं। नये गीतों के साथ पिछले गीत भूलते जाते हैं। नई पीढ़ी, नये भाव, यही गीतों की परम्परा है। गीतों में विज्ञान की अपेक्षा नहीं, उनमें अनुभूति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार होता है। गीतों की यह परम्परा तब तक जीवित है, जब तक मानव का अस्तित्व विद्यमान है। आदि मानव के कंठ से विकृत भाव कभी निकले थे, कालान्तर में वे गीत बन गये। गीतों के प्रारंभ के प्रति एक संभावना हमारे पास है, पर उसके अन्त की कोई कल्पना नहीं। यह वह बड़ी धारा है जिसमें अनेक छोटी-मोटी धाराओं ने मिलकर इसे सागर की तरह गंभीर बना दिया है। सदियों के घात-प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है। मानव-मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने-बाने बुने हैं। स्त्री-पुरुषों ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेश-पान कराया है। विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने खेत जोते हैं।[1]

लोकगीत प्रकृति के उद्गार हैं। तड़क-भड़क से दूर, जंगली फूलों की तरह स्वच्छन्द हैं। सरलता, रस-माधुर्य और लय इनके गुण हैं। प्रकृति के इन उद्गारों को सजाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक हाथ बंटाया है। करुण, हास्य, शृंगार आदि रसों से भरे हुए ये गीत कंठों से फूटकर कुंज-कुंजों से स्वच्छन्द समीर की तरह वायुमंडल में व्याप्त हैं।

महत्त्व : समय ने इन गीतों को कुचलने का प्रयत्न किया, वे कुचले भी गये, पर कई अभी तक भग्नावशेषों की भांति मौजूद हैं। देश की तत्कालीन रीति-नीति की जानकारी इन गीतों में मिलती है। मानव जाति की विराट भाव-व्यंजना इनकी हर कड़ी पर जागृत होती है। नारी हृदय की कोमलता, माता की ममता, प्रियतम के विरह में तड़पने वाली नववधू की तड़पन, कन्या का हास्य, पति-पत्नी के मिलन-विरह की कथा, उलाहने सब हमें इन गीतों में मिलते हैं।

इन लोकगीतों के महत्त्व के संबंध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है :—

'ग्राम-गीतों का समस्त महत्त्व उनके काव्य-सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन, जो

१. डा० श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ० ५२-५३।

अब तक या तो विस्मृति के गर्भ में डूबी हुई है, या गलत समझी गई है। आर्य आगमन से पूर्व ही समृद्ध आर्येतर सभ्यता भारतवर्ष में फैली हुई थी, उसके साथ ही और भी छोटी-मोटी सभ्यताएं इस विशाल भू-भाग में फैली हुई थीं। आर्यों ने राजनीतिक क्षेत्र में तो भारत को जीत लिया था, पर सांस्कृतिक क्षेत्र में वे पूर्णरूप से यहां के मूल-निवासियों से प्रभावित हो गये थे। यहां की मूल सभ्यता वैदिक सभ्यता से एकदम भिन्न थी। आज भी लोकाचार, स्त्री-आचार, पौराणिक परम्परा आदि के रूप में वह विद्यमान है। ग्रामगीत इस सभ्यता के वेद हैं। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग में श्रुति कहलाते थे और ग्राम गीतों की भांति ही सुन-सुन कर याद किये जाते थे। सौभाग्यवश वेदों ने श्रुति से हटकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्रामगीत अब भी श्रुति ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्यों की सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार लोकगीतों द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान हो सकता है। ईंट-पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें, तो जोर देकर कहा जा सकता है कि लोकगीतों का महत्त्व मोहनजोदड़ो से कहीं अधिक है, मोहनजोदड़ो सरीखे भग्न-स्तूप ग्राम गीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं।'

लोकगीत साहित्य की अमूल्य एवं अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक-एक रेखा, सामयिक बोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक विजय, पराजय, प्रकृति के गीत, विधि, वृक्ष, पशु, पक्षी, मानव के पारस्परिक संबंध, बलि-पूजा, टोना-टोटका, मानव और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है, अतः इन लोकगीतों का बहुत अधिक महत्त्व है। यह महत्त्व साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा पौराणिक, नैतिक, भौगोलिक, आर्थिक, भाषा तथा भाषा-विज्ञान संबंधी सभी क्षेत्रों में है।[१]

विशेषताएं : लोकगीत में छंद का आग्रह नहीं होता और छंद के स्थान पर लय ही उसमें माधुर्य और रमणीयता की सृष्टि करती है, अतः संगीत लोकगीत की अपरिहार्य आवश्यकता है। इन लोकगीतों के पढ़ने में वह आनंद नहीं आता जो सुनने में आता है। जब हम खेतों में काम करने वाली किसी ग्राम-बाला, पशु चराने वाली किसी युवती के कोमल एवं मधुर कंठ से निःसृत संगीतमय भावों को सुनते हैं, तो क्षण भर के लिए हमारा हृदय भी साधारणी-करण की अवस्था में उसी के साथ झूमने लगता है। लोकगीत कंठ से गाने के लिए और हृदय से आनंद लेने के लिए हैं। आकाश में भरा हुआ शब्द जब गीत के रूप में प्रकट होता है, तब मानव के चिरंजीवी भाव साकार हो उठते हैं।[२]

१. कनउजी लोक साहित्य।
२. देवेन्द्र सत्यार्थी : धीरे बहो गंगा।

जहां तक कुल्लुई लोकगीतों का संबंध है, हम महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा किन्नर गीतों के संबंध में कहे गये शब्दों को उन पर भी अक्षरश: लागू हुआ पाते हैं। उन्होंने लिखा है :—

'किन्नर कंठ मधुर है, गीत मधुर है, साथ ही यह अत्यन्त सरल और अकृत्रिम भी। वसंत-श्री अबोध पक्षियों को मुखरित कर देती है, जान पड़ता है प्राकृत्रिक सुषमा, मधुर संगीत तथा मधुर कंठ का कोई नैसर्गिक संबंध है, तभी तो पहाड़िनें कोकिल कंठ होती हैं। किन्नर देश की नारी कोई भी काम बिना गीत के नहीं कर सकती। हृदय सिहराने वाली पहाड़ी जगह में खड़ी घास काट रही है और उसकी गीत ध्वनि नदी की कलकल के साथ मिश्रित हो रही है। हरे खेतों की निराई कर रही है, और मधुर कंठ दिगंत को मुखरित कर रहा है। यहां तो संगीत नारी का स्वांस बन गया है।'[1]

जहां संगीत इतना प्रिय हो, वहां गीत की मांग होनी ही चाहिए। गीत हमारे प्रदेश में बनते भी बहुत हैं, किन्तु अधिकांश की आयु पांच-दस साल से अधिक नहीं होती। नाटी गीतों की विशेषकर यह अवस्था है।

लोकगीतों के रचयिता का नाम तो सभी जगह प्राय: अज्ञात रहता है, इसलिए यहाँ भी वही बात हो तो आश्चर्य नहीं। ये जन-गीत माधुर्य में उत्तम संगीत होते हैं और रस परिपाक में सुन्दर काव्य। मानव जीवन का वास्तविक चित्रण जितना इन गीतों में मिलता है, उतना और जगह मिलना कठिन है। यथार्थवाद तो उनकी अपनी विशेषता है, इसीलिए प्रत्येक 'जन-गीत' अपने पीछे जीवन इतिहास रखता है।

कुल्लुई लोकगीत उस पर्वतीय भू-भाग की आकांक्षाओं, भावनाओं, आशाओं, निराशाओं, हर्ष और दुखों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात है। हिमाच्छादित पर्वत शृंगों का सौंदर्य, हरी-भरी उपत्यकाएं, तीव्र गति से बहने वाली सरितायें सभी यहां के लोतगीतों में अभिव्यक्ति पाते हैं।

पर यही सब कुछ नहीं। लोकगीत समूचे जीवन का दर्पण होते हैं, अत: जीवन का कटु पक्ष अछूता कैसे रह जाये ? अपनी कठोरता के लिये हमारे इस प्रदेश का जीवन प्रसिद्ध है। सुबह से शाम तक निरन्तर परिश्रम के पश्चात् दो जून रोटी प्राप्त होती है। कपड़े के लिए रात को श्रम से जूझना पड़ता है। जीवन श्रम और अभावों की कहानी है, अत: निरंतर संघर्ष, प्रकृति से दो-चार हाथ कर लेना, यहां के लोकगीतों का एक प्रिय कथानक है। कैसा भी मानव

१. किन्नर देश, पृ० ३१७।

हो, सदा तो वह जूझ नहीं पाता, किन्तु उसे संघर्ष निरंतर करना पड़ता है। यदि ऐसी परिस्थिति में हृदय विद्रोह कर जाए और सामाजिक अनुशासन की दीवार तोड़कर उन्मुक्त वायुमंडल में सांस लेने का प्रयत्न करें तो कोई आश्चर्य नहीं। कई लोकगीतों में समाज के प्रति एक प्रकार का विद्रोह अभिव्यक्त हुआ है, और कभी यह विद्रोह स्वयं जीवन के प्रति भी लक्षित होता है।

लोकगीतों का वर्गीकरण : लोकगीतों की सीमा अनन्त है। ये मन के पुत्र हैं, मन बांधे नहीं बंधता, उसकी संतान भला कब बंधेगी? विद्वानों में लोक-गीतों के वर्गीकरण के संबंध में मतैक्य नहीं है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने इन्हें ग्यारह भागों में बांटा है[1] और श्री सूर्यकरण पारीख ने इन गीतों को उनतीस वर्गों में विभक्त किया है।[2] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' में इन्हें पांच प्रमुख भागों में विभक्त किया है :—१. संस्कारों की दृष्टि से, २. रसानुभूति की प्रणाली से, ३. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, ४. विभिन्न जातियों के प्रकार से तथा ५. क्रिया गीत के आधार पर।

'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' षोडश भाग की प्रस्तावना में उन्होंने 'लोकगीतों का श्रेणी विभाजन' उपर्युक्त आधार पर ही किया है, केवल 'क्रिया-गीत के आधार पर' के स्थान पर 'श्रम के आधार पर' पाठान्तर है।[3]

सरसरी दृष्टि से देखने से ही यह ज्ञात हो जाता है कि उपर्युक्त पांच भाग लोकगीतों के वर्ग नहीं बन सकते। संस्कार गीत एक वर्ग माना जा सकता है, किन्तु 'रसानुभूति की प्रणाली से' जैसा प्रणाली शब्द से स्वयं अंकित है, वर्गीकरण का सिद्धान्त अंकित होता है। वर्गीकरण का एक सिद्धान्त और वर्गीकृत भाग एक नहीं हो सकते। दूसरे रस तो सभी गीतों में होता है, यदि रस नहीं तो गीत भी नहीं। अतः 'रसानुभूति की प्रणाली से' कोई पृथक श्रेणी नहीं बनायी जा सकती। यदि हम इसे एक पृथक भाग मान लें तो वर्गीकरण की वैज्ञानिकता ही समाप्त हो जाती है और उसमें अतिछादन का दोष आ जाता है। यदि इन पांचों प्रकारों को श्रेणी विभाजन की पद्धति माना जाए तब भी यह अवैज्ञानिक क्रम ही होगा। सभी गीत संस्कार की दृष्टि से नहीं बांटे जा सकते और न ही इन गीतों का 'ऋतुओं और व्रतों के क्रम से' और 'श्रम के आधार पर' श्रेणी विभाजन किया जा सकता है। सब गीत ऋतु, व्रत अथवा श्रम गीत नहीं होते हैं। अतः वर्गीकरण की यह पद्धति किसी भी रूप में उपयुक्त नहीं।

१. कविता कौमुदी, ग्रामगीत, पृ० ६९।
२. राजस्थानी लोकगीत, पृ० २२-२५।
३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० ५१-५२।

लोकगीतों का विशेषकर कुल्लुई लोक गीतों का वर्गीकरण हम निम्नांकित चार दृष्टियों से कर सकते हैं :—

१. उद्देश्य की दृष्टि से, २. शैली की दृष्टि से, ३. रसानुभूति की दृष्टि से, और ४. अवसरानुकूलता की दृष्टि से ।

१. उद्देश्य की दृष्टि से

उद्देश्यों के आधार पर कुल्लुई लोकगीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—एक अनुष्ठान-आचार सम्बन्धी, दूसरे मनोरंजन सम्बन्धी। पहले वर्ग में सभी संस्कार गीत, छाड़ी गीत, बड़माड़, बरमाड़ी, त्यौहार, व्रत, पर्व तथा देवी-देवता के गीत और मेले सम्बन्धी कुछ विशेष गीत रखे जा सकते हैं । दूसरे वर्ग के अन्तर्गत समस्त नाटी गीत, खेल गीत, फ़लालू, मेला-गीत, छींजा, लामड़, दशी, कुफ्फू, झझोटी आदि का समावेश होता है ।

२. शैली की दृष्टि से

गीत दो प्रकार के होते हैं, प्रबन्ध तथा मुक्तक । यह तो साहित्यिक रूप से मोटा वर्गीकरण है । प्रबन्ध गीत किसी न किसी कहानी को लेकर चलता है । मूलतः वह कहानी ही है, पर गेय है, अतः इसमें गीत का आनन्द भर जाता है, जिससे कहानी और भी रोचक हो जाती है । मुक्तक में कथा अत्यन्त क्षीण और लघु होती है और उसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है । कुछ ऐसे गीत भी हैं जिनमें वर्णन की प्रधानता भी होती है और मुक्तक का-सा काव्य आनन्द भी । इस प्रकार शैली के आधार पर हम लोकगीतों के तीन भाग कर सकते हैं :—

(क) **प्रबन्धात्मक गीत**: प्रबंध गीतों में कथात्मक अथवा प्रबन्धात्मक शैली के दर्शन होते हैं । काव, ब्रलाज, भारत, छाड़ी के कई गीत और कतिपय नाटी गीतों को भी हम प्रबन्धात्मक गीतों की श्रेणी में रख सकते हैं । काब, ब्रलाज और छाड़ी गीतों का आरम्भ प्रायः मंगलाचरण के साथ होता है और उनमें अनेक छन्दों का प्रयोग होता है । काब, भारत और ब्रलाज का कथानक महाभारत और रामायण पर आधारित है । छाड़ी गीत पौराणिक देवी-देवताओं, विशेषकर विष्णु नरैण से सम्बन्धित हैं । कई छाड़ी गीत स्थानीय देवी-देवताओं के चरित को लेकर भी चलते हैं । काब में महाभारत और रामायण से वे आख्यान चुने गए हैं जिनमें वीर रस का प्राचुर्य है । कीचक बध, और लंका-युद्ध काब के दो प्रमुख कथानक हैं । इन प्रबन्धात्मक गीतों की विशेष चर्चा हम लोकगाथाओं के संदर्भ में करेंगे ।

(ख) वर्णनात्मक गीत: कुल्लुई गीतों की बहुत बड़ी संख्या वर्णनात्मक शैली के गीतों की है । सामयिक घटनाओं तथा अनुष्ठान सम्बन्धी इन गीतों में विवरण और वर्णन की ही प्रधानता है । नाटी गीत इस शैली के हैं ।

घटनात्मक होने के कारण इन गीतों में आख्यायिका शैली का प्रयोग भी दिखाई देता है। 'लज्जाराम', 'भोड़ाराम', 'कनावरी', 'हेसण', 'बैनेग्रो भूंडो' आदि गीत इसके अच्छे उदाहरण हैं।

(ग) **भावात्मक गीत :** ये भावात्मक गीत मुक्तक गीतों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। लामण, दशी, कुफ्फू, झूरी, छींजा तथा अनेक नाटी गीतों का इस वर्ग में समावेश हो सकता है। दशी, कुफ्फू और झूरी तो मुख्यत: प्रेम के संवाद गीत हैं। लामण गीतों के बहुत बड़े भाग का भी प्रेम-परित संवादात्मक रूप है। छींजा पूर्णरूप से भावात्मक गीत है।

पुनरावृत्ति, संवाद, प्रश्नोत्तर तथा असम्बद्धता प्राय: इन प्रेम गीतों में किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं। वहुत-सी बातों और अभिप्रायों की कल्पना और पूर्वापर सम्बन्ध का ज्ञान पाठकों अथवा श्रोताओं को स्वयं करना पड़ता है।

३. **रसानुभूति की दृष्टि से :** सभी लोकगीतों की एक प्रमुख विशेषता उनकी रसात्मकता है। उनमें रस की एक अविरल धारा प्रवाहित होती है जो कभी सूख नहीं सकती। जहां तक कुल्लुई लोक-साहित्य का सम्बन्ध है, वहां का मानव कई स्वरों में गाता है। उसके छाड़ी, लामण और छींजे, भक्ति, शृंगार और करुण रस की परम्पराओं को भी मात करते हैं। काब वीर रस का खंड काव्य सुगमता से बन सकता है। यों तो कुल्लुई गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है, परन्तु शृंगार, करुण और शांत रस की प्रधानता पाई जाती है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मनोहारी चित्रण लामण, झूरी, दशी, नाटी गीत तथा कुछ छींजा गीतों में मिलता है।

पुत्री की विदाई के गीत, सती गीत और छींजा गीतों में करुण रस की मंदाकिनी प्रवाहित होती दिखाई देती है। नारी हमारे इस प्रदेश में विलास का साधन नहीं है, खेती-बाड़ी और घर-गृहस्थी का काम भी लगभग संपूर्ण रूप से उसके कंधों पर ही है। इन परिस्थितियों ने उसके जीवन में अनेक विषमताओं और कुंठाओं को उत्पन्न किया है जो लोकगीतों में स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। छींजा गीतों में तो नारी-हृदय की सारी कसक सिमटी पड़ी प्रतीत होती है। अनेक नाटी गीतों में भी उसकी बेबसी की झलक मिलती है।

'काव' जैसे प्रबन्ध काव्य, 'मानसिंह री फौजा' जैसी लोकगाथाओं और करयाड़ा के गीतों में वीर रस की प्रचुरता है। दियाउड़ी मेले के अवसर पर जब फकीरी[1] जोश में आकर काव गाते हैं और ठाकुर खांडे फर्श के साथ

१. ब्राह्मणों का राजास्थानी चारणों जैसा एक वर्ग।

'गढ़ियों' और 'दानुओं' के साथ युद्ध करता है तो सभी नर्तकों की भुजायें फड़क उठती हैं।

भजन, नटावक, ब्रह्मखाडा, घरमाड़, घरमाड़ी, तुलसी की आंचड़ी आदि गीतों में शांत रस पाया जाता है।

लोकगीतों में अन्य रसों की अपेक्षा हास्य रस की कमी पाई जाती है। लाहुणे[1] के गीतों में हास्य रस की व्यंजना हुई है। कतिपय नाटी गीत भी ऐसे हैं जिनमें ऐसी असम्बद्ध और असंगत बातें कही गयीं हैं कि जिन्हें सुनकर हंसी आये बिना नहीं रहती। एक नाटी गीत का छन्द उदाहरण के लिए दिया जाता है :—

'गावी सुई पौन्द्रह सोड़ा बाठू हुए तैरा,
दूधा घीउए घोरटा रींगे, छाई लै लागी लेरा।'

(गाय तो १५-१६ सुई हैं, किन्तु बछड़े केवल १३ पैदा हुए। दूध और घी इतना अधिक है कि घराट तक चल सकते हैं, परन्तु छाछ के लिए चीख-पुकार हो रही है!)

४. अवसरानुकूलता की दृष्टि से

सभी गीत सभी अवसरों पर नहीं गाए जाते। जब कोई संस्कार होता है तो उस अवसर पर केवल संस्कार गीत गाये जाते हैं, किसी त्यौहार पर उसी पर्व अथवा त्यौहार सम्बन्धी गीत गाए जाते हैं। नृत्य के साथ नृत्य-गीत ही गाया जाता है। मेले पर जाने के समय तत्सम्बन्धी गीत ही। कामकाज के समय उसके अनुरूप ही गीत गाया जाता है। अवसर की अनुकूलता के आधार पर हम कुल्लुई लोकगीतों को ६ वर्गों में बांट सकते हैं :—

१. संस्कार गीत, २. त्यौहार, पर्व, व्रत, देवी-देवता आदि के गीत, ३. नृत्य गीत, ४. मेला गीत, ५. ऋतु गीत और ६. विविध गीत।

१. संस्कार गीत: भारतीय जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान है। हमारा समस्त जीवन धर्म के ताने-बाने से बना है। कुल्लुई प्रदेश धर्म की दृष्टि से अपना पृथक स्थान रखता है। आर्य धर्म का यहां अधिक प्रभाव नहीं, स्थानीय देवी-देवता ही काफी सीमा तक पौराणिक देवी-देवताओं का स्थान लिये हैं। आचार के क्षेत्र में भी यही स्थिति है। संस्कारों से लोग नितांत अनभिज्ञ तो नहीं हैं, किन्तु जनता का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा भी है जिसमें संस्कारों के अवसर पर गीत गाने का प्रचलन नहीं है। समूचे प्रदेश में थोड़े बहुत ऐसे ग्राम या केन्द्र हैं जहां पौराणिक देवी-देवताओं के मन्दिर हैं,

१. वैवाहिक परिहास।

आश्रमों में शास्त्रीय ढंग से संस्कार प्रतिपादित होते हैं और गीत उस संस्कार या आचार के अभिन्न अंग हैं। हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है, जिनमें १. जन्म, २. विवाह, तथा ३. मृत्यु सबसे प्रमुख हैं। कुल्लुई क्षेत्र में जन्म का कोई संस्कार नहीं। नामकरण से संस्कार आरम्भ होते हैं, जिसे 'द्वारा बाहरे काडणा' कहा जाता है अर्थात् 'द्वार से बाहर निकालना'। जडोलण (मुंडन), बडारण (यज्ञोपवीत) और ब्याह, तीन अन्य संस्कारों का प्रचलन है।

मृत्यु पर गीत नहीं गाया जाता। जब अर्थी को श्मशान में ले जाते हैं तो साथ में 'धौंउसी', 'धोंस'[1] पर 'उल्टा' बाजा बजाता है, हेसी[2] अपनी 'सरनै'[3] पर शोकपूर्ण गीत की धुन बजाता है। इस शोकपूर्ण गीत को 'कारण' कहते हैं। इस प्रकार के एक कारण गीत की एक कड़ी यह है:—

बागै ता फूलुई माड़ती मेरे साइआ, तैंआ नहीं उचदौ कोए
म्हारे जाणों मौरवी।'

(मेरे साईं, बाग में मालती फूली है, पर पुष्पों को तोड़ने वाला कोई नहीं है, हम मर जाएंगे।)

२. **त्यौहार, पर्व, व्रत, देवी-देवता आदि के गीत :** इस प्रकार के गीत त्यौहारों, पर्वों और व्रतों पर गाये जाते हैं। ये गीत कन्याओं, स्त्रियों और पुरुषों के भिन्न-भिन्न हैं। कुछ व्रत केवल कन्याओं के हैं, कुछ स्त्रियों के। कतिपय ऐसे पर्व और व्रत हैं जिनमें स्त्रियां और पुरुष दोनों भाग लेते हैं। देवी-देवताओं के गीत मुख्यत: पुरुषों के हैं। 'भेंटें' आदि थोड़े से गीत ऐसे हैं, जिन्हें केवल स्त्रियां ही गाती हैं। त्यौहार, व्रत और पर्व पर कुल्लुई लोक-गीतों का व्यौरा नीचे दिया जा रहा है:—

मास	व्रत-त्यौहार	गीत
१. बैशाख	बैशाखी	बूढ़ा-बूढ़ी का गीत।
२. ज्येष्ठ	विरशी (संक्रांति)	स्त्री और पुरुष व्रत रखते हैं और मन्दिर में जाकर नये अन्न की कचौड़ियां, बड़े आदि चढ़ाते हैं। पुरुष भजन गाते हैं और स्त्रियां 'भेंटें'।
	बीमा	ज्येष्ठ की संक्रांति के पखवाड़े में स्त्रियां 'बीमा (विधिमाता) की पूजा करती हैं

१. ढोलकी जैसा वाद्य यंत्र।
२. शहनाई वादक
३. शहनाई।

		और पन्द्रहवें दिन 'बीमा' के विसर्जन के समय गीत गाती हैं।
३. असाढ़	...	...
४. सावन	रिहाई (हरितालिका)	स्त्रियां व्रत रखती हैं और पूजा के अवसर पर गीत गाती हैं।
५. भादों	जन्माष्टमी	स्त्री-पुरुष सब व्रत रखते हैं। 'रवैंइश' (हरिवंश) के आधार पर कृष्ण संबंधी गीत गाये जाते हैं। इनमें प्रमुख गीत हैं—कृष्ण-जन्म, जन्माष्टमी, कृष्ण लीला, कानावाड़ौ राउड़ी।
६. असौज	नवरात्रे	अष्टमी और नवमी को व्रत रखा जाता है और स्त्री-पुरुष मन्दिर में जाकर पूजा करते हैं। स्त्रियाँ भेंटें गाती हैं।
	मौंणुआ	दशमी के दिन मन्दिर से करो (कलश) बाहर निकाला जाता है, सब सुहागिनें उसकी पूजा करती हैं। मन्दिर से कलश बाहर निकालने पर गीत गाए जाते हैं जिनमें उल्लेखनीय है अम्बिका और ज्वालामाई की भेंट। मन्दिर में नये अन्न की कचौड़ियों का प्रसाद चढ़ाया जाता है।
७. कातिक	करवा चौथ	स्त्रियाँ संध्या समय करवा चौथ की पूजा करती हैं और रात्रि में चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन किया जाता है। उससे पूर्व कथा सुनी जाती है और गीत गाये जाते हैं।
८. मघर	—	—
९. पौष	—	—
१०. माघ	मकर संक्रांति "माघा साजा"	प्रातः काल बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष स्नान कर, आयु में बड़े सम्बन्धियों को प्रणाम करते हैं। पुरुष मन्दिर में जाकर गीत गाते हैं जिन्हें 'घरमाड़ी' कहते हैं।
	वसन्त पंचमी	घरमाड़ नामक गीत गाये जाते हैं।

११. फाल्गुन	शिवरात्रि	शिवरात्रि का इस प्रदेश में बड़ा महत्व है। इस दिन व्रत रखा जाता है और 'महादेउ' महादेव की पूजा की जाती है जो कि पत्तियों, कमैंटू (गलगल) के फल और पुष्पों के हार पिरोये जाते हैं और उसे महादेउ कह कर पूजा जाता है। शिव महिमा सम्बन्धी अनेक 'शवात्र' गीत गाये जाते हैं।
	होली	फाग और होली गीत।
१२. चैत्र	रली	कन्याएं एक महीने तक व्रत रखती हैं और रली की पूजा करती हैं। पूजा करते समय तथा रली के विसर्जन के समय गीत गाये जाते हैं।
	नवरात्रे	व्रत रखा जाता है और नवमी के दिन मन्दिर में गीत गाए जाते हैं।

३. **नृत्य-गीत :** नृत्य और गीत का चोली-दामन का साथ है। हमारे ऐसे अगणित गीत हैं जो नृत्य के साथ गाए जाते हैं। कोई भी अवसर हो, पर्व हो, त्यौहार हो, मेला हो, नृत्य एक अभिन्न अंग है और गीत उसका सहचर। मेले में जब बड़ी-बड़ी नाटी लगती हैं तब नाटी के अनुरूप विविध प्रकार के गीत गाए जाते हैं। यदि नाटी की गति धीमी है तो गीत का संगीत भी ढीला-ढाला-सा होगा, यदि गति में तीव्रता है तो गीत भी तीव्रता लिये होगा। यद्यपि इन गीतों का वर्ग की दृष्टि से कोई नाम नहीं और गीत के नायक या कथानक से ही गीत का नाम जाना जाता है फिर भी हम सुविधा के लिए इन्हें नाटी गीत कह सकते हैं। कुछ अन्य प्रकार के ऐसे गीत हैं जो बांठणा और नाटारंभ के अवसर पर गाये जाते हैं। नाटारंभ पर गाये जाने वाले गीत मुख्यतः भजन होते हैं। इन्हें ब्रह्मखाड़ा भी कहा जाता है। देवी-देवता रथ में मन्दिर से बाहर आये हैं तो उनकी पूजा-अर्चना तो होती ही है, उनकी स्तुति में गीत भी गाए जाते हैं, जिन्हें छाड़ी गीत कहते हैं, इन्हें वार्ता का नाम भी दिया गया है। युवक-युवतियां, खलिहान या गांव की खुली जगह पर एकत्रित होकर नृत्य करते हैं और गीत गाते हैं। लाहलड़ी गीत के नाम पर हम इन्हें लाहलड़ी गीत कह सकते हैं। फाल्गुन में हेसी (शहनाई बजाने वाले) द्वार-द्वार पर जाकर नृत्य करते हैं और फलालू गीत गाते हैं। इस प्रकार कुल्लुई नृत्य-गीतों को हम यों बांट सकते हैं :—

नृत्य-गीत

नाटी गीत | नाटारंभ गीत | छाड़ी गीत | लाहलड़ी गीत | फलालू गीत

४. **मेला-गीत :** व्रतों और पर्वों की अपेक्षा मेलों की यहां संख्या कहीं अधिक है। वर्ष का कोई भी महीना हो, कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी गांव में मेला हो रहा है। मेले में सम्मिलित होने के लिए ग्रामवासी बड़ी चाह से तैयार होते हैं। और कई दिन पहले से ही इस अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं। नये-नये कपड़े पहने जाते हैं और नारी के लिये तो आभूषणों के प्रदर्शन का यह उपयुक्त अवसर होता है। कुल्लू की विजयदशमी पर जाने वाली एक रमणी यदि कहती है :—

'मू जाणा दैसमी बोला लाणा रेशमी थीपू।'

तो उधर कोटखाई की युवती पूरी सज-धज के साथ मेला देखने जा रही है :—

'बांठणा चाली जातरे, लोगो
घोड़आ मूंठू हारशू आगे
भरवी छाती दी बटणों लागे
हाथों दी नाको दी कानड़ू ताओं
जेवरे गौणे लागो ली भाओं।'

कतिपय ऐसे भी मेले हैं जिनमें अनुष्ठान के रूप में भी गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार के मेले हैं :—

भूंडा, भडोजी, जागरा, दियाउड़ी, निर्शू, विर्शू आदि।

५. **ऋतु-गीत :** गीतों का एक ऐसा भाग भी है जो ऋतु विशेष में ही गाया जाता है। चैत्र के महीने में छींजा गीत का बोलबाला होता है, बैशाख के आरंभ से ज्येष्ठ तक कुफ्फू गाया जाता है। चैत्र से आषाढ़ तक दशी, झंझोटी, झूरी गीत गाये जाते हैं। पौष में जब चारों ओर बर्फ होती है, नाथ द्वार-द्वार पर जाकर भरथरी हरि, गोपीचंद और विरमाराणी के गीत गाते हैं। माघ मास को भजनों का महीना कह सकते हैं। फाल्गुन के आते-आते फाग आरम्भ हो जाती है। इसी महीने हेसी फलालू गीत गाते हैं। वसंत ऋतु और शरद् ऋतु सम्बन्धी कुछ गीत भी पाए जाते हैं।

कुल्लुई प्रदेश के मानव का जीवन श्रम की एक लम्बी कहानी है। विश्राम का तो शायद वह नाम ही नहीं जानता। अतः परिश्रम-जन्य क्लान्ति को दूर करने के लिये वह गुनगुनाता और गाता रहता है। आषाढ़ में खेतों में धान रोपते समय स्त्रियां दो भागों में बंट जाती हैं। एक ओर से दशी का एक पद

गाया जाता है तो दूसरी ओर उसके प्रत्युत्तर में दूसरा पद। घराट जाते हुए, लकड़ी लाने जंगल में जाते हुए, घास के लिये वनों में जाते हुए, नाटी गीत, लामण, झुल्पिया आदि जो गीत भी मुंह में आ जाए, गाया जाता है। इस प्रकार केवल श्रम के आधार पर 'रोपनी के गीत' और 'चरखे के गीत' जैसे गीतों का अभाव है।

६. विविध गीत : कतिपय ऐसे गीत भी हैं जिन्हें उपर्युक्त वर्गों में नहीं रखा जा सकता। ऐसे गीतों में प्रधानता है बालगीतों तथा खेलगीतों की। लोरी, छोड़ बुढा, पोराडू सरीखे गीत इसी के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण पृष्ठ ३९ पर दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

२. लोक-गाथा

लोक-साहित्य के अन्तर्गत ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जो बहुत लम्बे होते हैं तथा जिनमें कथा-वस्तु की ही प्रधानता होती है। अंग्रेजी में इन गीतों को 'बैलेड्स' का नाम दिया गया है। हिन्दी में डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन्हें लोकगाथा के नाम से अभिहित किया है।[1] डा० सत्येन्द्र इन्हें केवल वीर गाथाएं मानते हैं।[2] उन्होंने लोकगाथा शब्द का प्रयोग 'लीजेंड्स' के लिए किया है। बैलेड्स को उन्होंने ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का हवाला देते हुए लोक-कथाओं के अन्तर्गत रखा है।[3] डा० सत्येन्द्र का कथन है कि 'ऐसी समस्त गाथाएं जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खड़ी हों, अथवा जिनको किसी समय में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गई हो, उन पर बनी हों; वे लोक-कथाएं (अवदान) कही जाएंगी।'[4] श्रीमती सोफिया बर्न को आधार मानकर उन्होंने इस प्रकार की लोक-कथाओं को दो भागों में बांटा है :—वीर कथा तथा साके। जो अवदान किसी पुराण पुरुष के शौर्य की कहानी कहते हैं, वे वीर कथा (हीरो टेल्स) कही जाती हैं। इन पुराण पुरुषों के अस्तित्व को निर्विवाद मान लिया जाता है। जिन अवदानों में ऐसे पात्रों के शौर्य तथा जीवन का विस्तृत वर्णन होता है, जो ऐतिहासिक होते हैं, वे अवदान साके कहलाते हैं।[5]

कथानक की दृष्टि से यद्यपि लोक-गाथाएं लोक-कथा का अंग मानी जा

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग।
२. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ३८१।
३. 'लोक-कथाओं के तीन बड़े विभेद माने गये हैं :—धर्म-गाथा (मिथ्स), लोकगाथा (अवदान), लीजेंड्स तथा लोक कहानी (स्टोरीज), ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० २१।
४. वही, पृ० २३।
५. वही, पृ० २५।

- लोकगीत
  - १. संस्कार गीत
    - नामकरण
    - मुंडन
    - यज्ञोपवीत
    - ब्याह
    - मृत्यु
  - २. त्यौहार, पर्व, व्रत, देवी-देवता आदि के गीत
    - बुढ़ा-बुढ़ी के गीत
    - बीमा के गीत
    - रियाही के गीत
    - जन्माष्टमी के गीत
    - भेंट
    - करवा चौथ
    - धरमाड़ धरमाड़ी
    - होली
    - रली
  - ३. नृत्य गीत
    - नाटी गीत
    - नाटारंभ
    - छाड़ी
    - लाहलड़ी
    - फलालू
  - ४. मेला गीत
    - मेला जाने के गीत
    - मेला सम्बन्धी गीत
  - ५. ऋतु गीत
    - छींज
    - बारहमासा
    - लामण, दसी, कुपफू, झझोटी
    - नाथ गीत
    - भजन
    - फाग
    - बसन्त, शरद् आदि के गीत
  - ६. विविध गीत
    - खेल गीत
    - लोरी गीत
    - पोराड़ू
    - छोड़ बुढ़ा

सकती हैं, किन्तु उनकी गेयता को ध्यान में रखते हुए उनको लोक-कथा तथा लोक-गीत की श्रेणी के बीच रखना होगा। लोक-साहित्य के अन्तर्गत उनका पृथक् वर्ग मानना ही उचित होगा।[१]

संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पद (लिरिक) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। गाथा का अर्थ है पद्य या गीत और इस अर्थ में इसका व्यवहार ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। गाथा शब्द में गेयता और कथात्मकता इन दोनों के तत्त्व विद्यमान हैं। इसलिए ऐसे प्रबंधात्मक गीतों के लिए, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी उपलब्ध हो, लोक-गाथा शब्द का ही प्रयोग नितांत समीचीन है।[२]

लोक-गाथा और लोक-गीत : लोकगाथा और लोकगीत में दो भेद हैं[३] : (१) स्वरूपगत भेद, (२) विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद इनके आकार से संबंध रखता है। लोकगीत में आकार छोटा होता है। पर लोक-गाथा बहुत बड़ी। यदि नाटी गीत अथवा मुंडन आदि संस्कार गीत दस-बारह पंक्तियों में ही समाप्त हो जाता है तो लोक-गाथाओं का विस्तार कई सौ पंक्तियों में भी हो सकता है। कुल्लुई में दशू राजा आदि गाथाएं इस प्रकार की हैं।

दूसरा भेद विषयगत है। 'घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है, उन्हीं की झांकी हमें इन गीतों (लोकगीतों) में देखने को मिलती है। परन्तु लोक-गाथाओं का वर्ण्य विषय लोक-गीतों से भिन्न रहता है। इनमें युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांस का पुट अधिक पाया जाता है।'[४] कुल्लुई लोक-साहित्य में 'मानसिंह री फौजा' में यदि वीरता और युद्ध का वर्णन है तो देवा कन्या में रोमांस अधिक है।

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति : लोक-गाथाओं का मूल बहुत प्राचीन है। 'ये संभवत: उस समय अपनी धुंधली रूपरेखा तैयार कर चुकी थीं, जबकि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्यगण विभाजन से पूर्व शान्तिपूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे। धर्म-गाथाओं का उदय जिन उपादानों और व्यापारों से हुआ, उन्हीं से साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोक-कथाओं का भी हुआ।'[५] धर्म-गाथा का विवेचन करते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है कि आदिम मानव ने सूर्य और अंधकार के संघर्ष को, अथवा सूर्य और ऊषा के प्रेम को या साहचर्य को ही विविध रूपों द्वारा जब साहित्य का रूप प्रदान किया, तो

१. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन।
२. डा० कृष्ण उपाध्याय : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० ७६।
३. वही, पृ० ७४।
४. डा० उपाध्याय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० ७५।
५. डा० सत्येन्द्र, ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० १३।

उसका यह रूप धर्म-गाथा का रूप ग्रहण कर लेता है।[१] धर्म-गाथा के मूल के संबंध में उन्होंने तीन मतों का उल्लेख किया है। मैक्समूलर मानता है कि धर्म-गाथाएं सूर्य और अंधकार के संघर्ष की प्राकृतिक घटनाओं के रूपक पर बनी हैं। फ्रेज़र और मेयर का मत है कि ये मनुष्य की असभ्य अवस्था में उत्पन्न हुई हैं और इनका संबंध उस काल के मनुष्यों के कृषिकर्म तथा प्रजनन कर्म से है। लायल का कथन है कि इन धर्म-गाथाओं के मूल में ऐतिहासिक तथ्य अवश्य विद्यमान होता है।

कुल्लुई लोक-गाथाओं में हमें इन तीनों मतों को पुष्ट करने की सामग्री मिल जाती है। जहां एक ओर विष्णु नरैण की गड़ाई[२] में सूर्य और अंधकार के संघर्ष की प्रतिध्वनि सुनाई देती है, वहां नातड़ी नाग की गड़ाई में ऐतिहासिक तथ्य की झलक मिलती है। इसमें नाग पहले ब्रह्मांड में शून्य मानता है, फिर पवन और जल की उत्पत्ति के बारे में कहता है, कालोपरान्त अपने जन्म तथा जीवन की विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख करते हुए एक अन्य स्थानीय देवता के साथ शत्रुता और युद्ध की बात कर अपनी जीत की कहानी बताता है। इस नाग के ऐतिहासिक पुरुष होने के समर्थन में प्रमाण भी मिल जाते हैं। ब्रलाज के मंगलाचरण में कृषि कर्म तथा प्रजनन कर्म की बात ज्ञात हो जाती है।[३]

लोक-गाथाओं के निर्माण सिद्धान्त : लोक-गाथाओं के निर्माण के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों में बड़ा मतभेद है। किसी विद्वान् के अनुसार इनकी उत्पत्ति एक समुदाय द्वारा हुई तो कोई इन्हें किसी व्यक्ति विशेष की रचना स्वीकार करता है। कुछ विद्वान् इन्हें चारणों की रचना स्वीकार करते हैं तो एक अन्य वर्ग इन्हें जाति-विशेष द्वारा निर्मित कहते हैं। लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न सिद्धान्तों का हम इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं :—

१. ग्रिम का समुदायवाद।
२. श्लेगल का व्यक्तिवाद।
३. स्टेथल का जातिवाद।
४. बिशप पर्सी का चारणवाद, और

१. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ६।
२. किसी व्यक्ति पर देवता आने के पश्चात् उस देवता की प्रशस्ति संबंधी प्रवचन को गड़ाई कहते हैं।
३. देखिये चतुर्थ अध्याय।

५. चाइल्ड का व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद ।[1]

इन सब सिद्धान्तों में आंशिक सत्य विद्यमान है, पर पृथक्-पृथक् यह प्रमाणित नहीं माने जा सकते। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन सब सिद्धान्तों को समन्वित कर एक नये सिद्धान्त समन्वयवाद की स्थापना की है। समन्वयवाद के अनुसार ये पांचों सिद्धांत एक साथ मिलकर लोक-गाथाओं के निर्माण के कारण हैं।[2]

लोक-गाथाओं की विशेषताएं : जैसा हम पहले देख चुके हैं लोक-साहित्य में उपलब्ध गीतों को दो श्रेणियों में विभाजित किया किया जा सकता है। यह हैं प्रगीति मुक्तक और प्रबन्ध काव्य। पहले लघु आकार के और दूसरे बृहत् आकार के। लघु आकार गीतों में कथानक का अभाव और गीतात्मकता की प्रधानता रहती है। दूसरे प्रकार के गीतों में कथावस्तु की प्रधानता होती है। प्रबंध काव्य को ही लोकगाथा कहा जाता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगाथाओं में इन दस प्रधान विशेषताओं की गणना की है[3] :—

१. रचयिता का अज्ञात होना,
२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव,
३. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य,
४. स्थानीयता का प्रचुर पुट,
५. मौखिक परम्परा,
६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव,
७. अलंकृत शैली की अविद्यमानता,
८. कवि के व्यक्तित्व की अप्रधानता,
९. लम्बे कथानक की मुख्यता,
१०. टेक पदों की पुनरावृत्ति।

कुल्लुई लोकगाथाओं में पद्य से गद्य में परिणत होने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। गायक कथानक को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच में गद्य का भी प्रयोग करता है। शनैः-शनैः वह पद्य को भूलता जाता है और गद्य में ही उस कथा को आगे बढ़ाता जाता है। इस प्रवृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण मियां रांझा है। सुना जाता है कि अपने मूल रूप में यह गाथा पूर्ण रूप से पद्यात्मक थी, किन्तु आज स्थिति यह है कि यदि पूर्ण रूप से नहीं तो आंशिक रूप में यह गद्यात्मक बन गई है। अब आरम्भ के ही कुछ पद्य मिलते

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, पृ० ७७।
२. वही, पृ० ८४-८५।
३. वही, पृ० ८७।

हैं। इसी कारण हमने इसे लोककथा के वर्ग में सम्मिलित किया है। राजा भरथरी, गोपीचंद, देवा कन्या आदि लोकगाथाओं में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। कुल्लुई लोक गाथाओं में डा० उपाध्याय द्वारा परिगणित सब विशेषताएं पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रमुख विशेषता लम्बी गाथाओं में विभिन्न छंदों का प्रयोग है। इस प्रकार की गाथाओं के उदाहरण भरथरी और देवा कन्या हैं। प्रत्येक गाथा में दो-दो तीन तीन छन्दों का प्रयोग किया गया है। रचयिता का इन गीतों से कोई पता नहीं चलता। परम्परा से हम इन्हें गाते ही आये हैं। जहां तक प्रामाणिक मूल पाठ का संबंध है, यह कहना कि अमुक पाठ प्रामाणिक है, असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन है। एक ही गाथा के विभिन्न प्रांतों या राज्यों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय कवि अपनी भाषा का पुट उसमें देते जाते हैं। कथानक में भी अन्तर आ जाता है। जैसा हम भरथरी की गाथा में देखेंगे। कांगड़ा गाथा में राजा भरथरी की सात रानियों का उल्लेख है, हिरण उसे कहता है कि यदि तुम्हें मांस खाना हो तो पांच-सात मृगियों को मार देना। पिंगला को राजा के अनिष्ट का ज्ञान स्वप्न द्वारा होता है और उसकी बांदी उसे आश्वासन देती है कि राजा स्वस्थ है और कल घर लौट आएगा। कुल्लुई गीत में केवल एक रानी पिंगला का वर्णन है और वही राजा को मृग और गेंडे का शिकार न करने का सुझाव देती है। उसका कहना है कि यदि मांस खाना हो तो दो-चार तीतर मार डालना। इस गाथा में भरथरी पिंगला के सतीत्व की परीक्षा लेता है जिसके फलस्वरूप रानी की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार इन दोनों पाठों में स्थानीयता के पुट का भी अभाव नहीं है।

लोक-गाथाओं का वर्गीकरण—लोक गाथायें आकार और विषय की दृष्टि से दो भागों में बांटी जा सकती हैं। आकार की दृष्टि से हमें इनके दो उपभाग उपलब्ध होते हैं:—लघु और बृहत्। लघु गाथाओं का आकार छोटा होता है, जैसे कुन्ती नन्ती, भीमसैण, चंदाराउड़ी आदि। बृहत् कथायें प्रबन्धात्मक काव्यों के समान बड़ी होती हैं। कुल्लुई लोक साहित्य में इसके उदाहरण दशू राजा, श्रीगुल, महासू, देवा कन्या, ब्लाज और रमैण हैं। प्रो० कीटीज ने लोकगाथाओं को दो भागों में बांटा है:—(क) चारण गाथाएं, (मिस्ट्रेल बैलेड्स) और (ख) परम्परागत गाथाएं (ट्रेडिशनल बैलेड्स)।[1]

विषय की दृष्टि से प्रो० गूमर ने लोकगाथाओं को छः भागों में बांटा है[2]:—

१. इंगलिश एण्ड स्कॉटिश पाप्युलर बैलेड्स, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग में उद्धृत।

२. दी पाप्युलर बैलेड्स, 'हिन्दी का लोक साहित्य में' उद्धृत।

१. प्राचीनतम गाथाएं (श्रोल्डेस्ट बैलेड्स),
२. कौटुम्बिक गाथाएं (बैलैड्स श्राफ किनशिप),
३. शोकपूर्ण एवं अलौकिक गाथाएं (कोरोनेच एन्ड बैलेड्स श्राफ दी सुपरनेचुरल),
४. निजंधरी गाथाएं (लीजेंडरी बैलेड्स);
५. सीमांत गाथाएं (बार्डर बैलेड्स) और
६. आरण्यक गाथाएं (ग्रीनउड बैलेड्स)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने विषय की दृष्टि से लोक-गाथाओं के तीन भाग किये हैं[1] :—१. प्रेमकथात्मक गाथाएं (लव बैलेड्स), २. वीरकथात्मक गाथाएं (हिरोइक बैलेड्स) और ३. रोमांचकथात्मक गाथाएं (रोमैंटिक बैलेड्स)।

डा० उपाध्याय कृत वर्गीकरण अधूरा-सा प्रतीत होता है, इसके अन्तर्गत धार्मिक अथवा पौराणिक कथाओं का समावेश नहीं हो पाता। कुल्लुई में धार्मिक अथवा पौराणिक गाथाओं की ही प्रचुरता है। श्री गोविन्द चातक ने जागर, वार्ता, पवाड़ा, चैती आदि गढ़वाली लोक गाथाओं के तीन वर्ग बनाये हैं :—(१) धार्मिक लोकगाथाएं, (२) वीर गाथाएं, और (३) प्रेमाख्यान।

प्रेमाख्यान के अन्तर्गत श्री चातक ने चैती गीतों का समावेश किया है। 'गढ़वाल में चैत्र के महीने में महीना भर बाजगी (वादक) या 'औंजी' लोग सवर्णों के द्वार पर नाचते हुए 'चैतोली' या 'चैती पतारा' मांगते हुए गाते हैं। ये गीत कथात्मक होते हैं और इनमें बसंत की शोभा के साथ-साथ मायके की स्मृति सम्बन्धी विषय हुआ करता है। चैती गीतों में लड़कियों की मायके के प्रति अगाध आत्मीयता का वर्णन मिलता है। उनमें ससुराल की कटुता, सास के अत्याचारों और पति के ईर्ष्यालु प्रेम के एकाधिकार की विडम्बना अंकित होती है।'[2]

कुल्लुई साहित्य में इस प्रकार के गीत फलालू हैं। इन गीतों में कथातत्व की अपेक्षा भावतत्व की प्रधानता रहती है। वस्तुत: यह गाथाएं न होकर लोक गीत ही अधिक हैं। यद्यपि इनकी कथात्मकता को लेकर इन्हें गाथाओं के अन्तर्गत रखा जाता है, इस तरह अनेक नाटी गीत भी इस श्रेणी में आ सकते हैं। उनमें भी थोड़ी-बहुत कथा रहती है। प्रेमाख्यान का रूप मियां रांझा आदि गाथाओं में प्राप्त होता है।

कुल्लुई लोकगाथाओं का हम इन चार भागों में विभाजन कर सकते हैं :—

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रस्तावना, पृ० १०३
२. गढ़वाली लोकगाथाएं।

(१) धार्मिक लोकगाथाएं, (२) पौराणिक एवं ऐतिहासिक लोकगाथाएं, (३) वीर गाथाएं, और (४) प्रेमात्मक गाथाएं।

(१) धार्मिक लोकगाथाएं : कुल्लुई जागरा, वार्ता और अधिकांश छाड़ी गीत धार्मिक गाथाएं हैं। इन गाथाओं में विष्णु नरैण, श्रीगुल, महासू, अन्य स्थानीय देवी-देवताओं के गीत तथा गड़ाई सम्मिलित है। देवी-देवताओं को रिझाने के लिए उन्हें नचाया जाता है। उन्हें नचाने के पश्चात् लोग देवता के सामने बैठ जाते हैं और जागरा अथवा छाड़ी गीत गाते और नाचते हैं। जागरा शब्द की व्युत्पत्ति जागरण शब्द से हुई है। ये गीत रात में जागरण कर देवता के सामने ढैंकुली-वैंसी, थाली-डमरू के साथ गाए जाते हैं। वार्ता लम्बी कथाओं को भी कह देते हैं।

छाड़ी गीत भी जागरा गीतों के अंग बन गये हैं। इन गीतों के गाने का एक सुनिश्चित क्रम होता है। पहला गीत विष्णु नरैण या स्थानीय देवता के जीवन से संबंधित होता है। दूसरा गीत पौराणिक-ऐतिहासिक कथानक पर आधारित होता है, तीसरा गीत किसी सती की जीवन कथा को लेकर चलता है, या चंदाराउड़ी, कानावाड़ौ देउतौ आदि का रूप होता है। चौथा गीत प्रायः नाटी गीत होता है।

(२) पौराणिक एवं ऐतिहासिक लोकगाथाएं : रामायण, महाभारत तथा पुराणों के कथानकों पर आधारित अनेक लोक गाथाएं कुल्लुई साहित्य में प्राप्त होती हैं। इन गाथाओं की एक प्रमुख विशेषता यह हैं कि इनमें लोक कवि ने अपनी धारणा के अनुसार आख्यान बनाया है जो जनपदीय धारणाओं के विपरीत भी हो जाता है। 'कुन्ती नन्ती' में कौरव पुत्रों को शालीन दिखाया गया है और पांडवों को उद्दंड। कुन्ती पांडवों की माता है पर कौरवों की माता का नाम नन्ती बताया गया है। ये दोनों कृष्ण की बहनें हैं। भीम और अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पांडव बंधुओं का कोई उल्लेख इन गाथाओं में नहीं है। एक दूसरी विशेषता जो ध्यान आकर्षित करती है, यह है कि इन गाथाओं में से अधिकांश में रावण और कंस की चर्चा की गई है। इन पौराणिक गाथाओं की सरसता अद्वितीय है। काव्यमयी कल्पना का कौशल दर्शनीय है। 'टुली बांठण' की गाथा ऐतिहासिक है, टुली बांठण को नहर में पानी आने के लिए बलि वेदी पर चढ़ाया गया था।

(३) वीर गाथाएं : वीर गाथाओं में किसी वीर का साहसपूर्ण और शौर्य-सम्पन्न कार्य करने का वर्णन मिलता है। 'आल्हा' जैसी वीर गाथाओं का कुल्लुई में नितांत अभाव-सा है। स्थानीय राजाओं से संबंधित कुछ वीर गाथायें मिलती हैं, परन्तु उनमें भी किसी युद्ध का हल्का-सा वर्णन ही मिलता है। इन गाथाओं को भारत भी कहा जाता है। मानसिंह री फौजा इस प्रकार की

गाथाओं का उदाहरण है।

(४) प्रेम-कथात्मक गाथाएं : इन गाथाओं में कृष्ण की प्रणय संबंधी कथाएं, कानावाड़ी देउती एवं चंदाराउड़ी और सती कथाओं का समावेश हो सकता है। प्रेम कुल्लुई गीतों का प्राण है। समस्त गीत-साहित्य का बहुत बड़ा भाग प्रेम कथात्मक है। हमने अधिकांश गीतों की गणना लोकगीतों के अन्तर्गत की है, यहां केवल उन्हीं गीतों को लिया जा रहा है जिनका कथानक बड़ा है। नाटी गीतों में भी बहुत से ऐसे हैं जिनकी कथावस्तु जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती है। इन गीतों को भी प्रेम कथात्मक गीतों या गाथाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सती गीतों का तो हमारे यहां भंडार भरा पड़ा है। लगभग प्रत्येक गांव में कोई न कोई सती आख्यान प्रचलित है।

३. लोक-कथा

मानव मन की सनातन थाती हमें लोककथाओं के रूप में ही मिलती है। 'लोक साहित्य का जो सुदीर्घ कालीन पट इस देश में बुना गया है, उसमें लोक-कथाएं ताने के समान और लोक गीत बाने के समान हैं। इसी ताने-बाने में लोक मानस का बहुरंगी चित्र व्यंजित है। यह पट अत्यन्त प्राचीन किंवा सनातन है।'[1] लोककथाओं में मानव का प्रकृति के साथ एकाकार का अनुपम चित्रण हमें मिलता है।

'कहानी सृष्टि के आरंभ से है। सूर्य, चांद, पृथ्वी, आकाश, समुद्र, नदी, पर्वत, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी सब कहानी के पात्र हैं। इनके जीवन में सृष्टि विज्ञान का वही सत्य पिरोया हुआ है जो मानव के जीवन में। अतएव कहानी की दृष्टि से इन सबका व्यवहार पंचेन्द्रिय-संयुक्त प्राणी के समतुल्य ही रहता है। इसी विश्वात्मक चेतना से प्राचीनतम कहानियों का जन्म हुआ था और इसी चेतना की पृष्ठभूमि में वे कहानियां सृष्टि-विद्या के नवीनतम प्रतीकों के रूप में हमारे मध्य अभी तक विद्यमान हैं।'[2]

लोककथाओं के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए मैक्सिम गोर्की ने लिखा है :—'इसमें संदेह नहीं कि आप बहुत-सी प्राचीन कथाएं जानते हैं, लेकिन मैं चाहता हूं कि सारतत्त्व और गहराई को समझ लिया जाए। उनमें आदि पुरुष के अपने श्रम को हल्का करने की कामना, उत्पादन बढ़ाने की लालसा, अपने चार पांव वाले और दो पांव वाले पशु को हराने की इच्छा और शब्दशक्ति से भूत-प्रेत को अपसरण करने, जादू-टोनों और मंत्र द्वारा प्रकृति के अन्य प्रकोपों

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : भारत की लोक कथाएं, भूमिका।

२. वही।

पर प्रभाव डालने की चेष्टा हमें मिलती है।'[1]

लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए लोककथाओं का अत्यधिक महत्त्व है। लोक संस्कृति के अनुसन्धान के लिये यह अन्यतम साधन है क्योंकि इनमें जन-साधारण के सुख-दुख, आशा-निराशा, तथा हर्ष-विषाद का सम्यक् चित्रण उपलब्ध है। जहां तक कुल्लुई भाषा क्षेत्र का प्रश्न है, लोक कथाएं, अन्य उपकरणों के अभाव में, इतिहास के अनुशीलन के लिए केवलमात्र सामग्री प्रस्तुत करती हैं।

"शृंगार और वीर रस ये दो ही कहानी के मूलबीज हैं। शृंगार आकर्षण और वीर रस विकर्षण का रूप है। शृंगार सम्मिलन और वीर रस संघर्ष का नाम है। सृष्टि की महती शक्तियां देव हैं। प्रत्येक देव की चरितार्थता, शृंगार रस और वीर रस में है। प्रत्येक इन्द्र के लिए उसकी शक्ति इन्द्राणी चाहिए और उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए उसका प्रतिपक्षी वृत्रासुर चाहिए। इन्द्र आदर्श वीर है, महान् उपाख्यानों का जन्म वीर की माया या शक्ति के उपबृंहण के लिए ही होता है। लोक में जो उनका स्थूल पल्लवित रूप है वह आख्यान कहलाता है। वेद में उसे ही अध्यात्म या सृष्टि विज्ञान कहते हैं। भारतीय उपाख्यानों का यह मौलिक दृष्टिकोण है। इन्द्र और वृत्र, सुपर्ण और सोम, रुद्र और त्रिपुर, कुमार और तारक, शुनःशेप और वरुण आदि अनेक उपाख्यानों के मूल में परिभाषाओं और व्याख्या का यह दोहरा ठाठ फैला हुआ था।'[2]

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि वेद विश्व साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। उसके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में हैं। यहां कहानियां भी हैं और कहानी के बीज भी।[3] वेदों की बीज कहानियां पुराणों की कथाओं में पल्लवित-पुष्पित हुई हैं। इस प्रक्रिया में बहुत कुछ फेर-बदल हुई। वेदों में जो देवता प्रमुख थे वे गौण हो गये और उनका स्थान नये देवताओं ने ले लिया। इस क्रम से लोक कथाओं में वैदिक देवताओं का कहीं-कहीं अपमानजनक चित्रण भी हुआ है। जहां तक पौराणिक कथाओं का संबंध है, इन सबके मूल प्रायः वेदों में देखे जा सकते हैं, विशेषकर उन लोकवार्त्ताओं के मूल, जिनका संबंध सौर परिवार से है।

वैदिक बीजः वरुण : कथाओं के वैदिक मूल अथवा बीज के पुराणों तथा लोक साहित्य में पल्लवित होने के क्रम की रूपरेखा के उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद

१. 'धूमिल फूल' की प्रस्तावना से उद्धृत।

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : 'धूमिल फूल' की भूमिका।

३. देखिये, हिन्दी में प्रकाशित वैदिक कहानियां।

में 'वरुण' की वह प्रार्थना ली जा सकती है, जो शुनःशेप ने की है। ऋग्वेद में इसका कोई वृत्त नहीं मिलता। आगे उपनिषदों तक पहुंचते-पहुंचते इसका एक अच्छा कथानक बन गया है। इसमें वरुण ने हरिश्चन्द्र को रोहित इस शर्त पर दिया कि वह अपना पुत्र उसे प्रदान कर देगा। रोहित उत्पन्न हुआ, हरिश्चन्द्र ने 'वरुण' को कई बार टाला, अन्त में रोहित बन में चला गया। वहां अजीगर्त को कुछ गौएं देकर शुनःशेप को उसने रोहित के स्थान पर बलि देने के लिए क्रय कर लिया। कुछ और गायों के लोभ में अजीगर्त स्वयं ही शुनःशेप की बलि चढ़ाने के लिए तत्पर हो गया। विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र बनाया और वरुण से प्रार्थना कर मुक्त कर दिया। ऋग्वेद के कुछ मंत्रों से शुनःशेप के बलिदान की कहानी तो वैदिक साहित्य में ही प्रस्तुत हो गई। लोककथा में इसने और भी रूप बदला। यही कहानी 'सत्य हरिश्चन्द्र' की प्रसिद्ध गाथा बन गई। प्रायः नाम सभी वैदिक हैं। हरिश्चन्द्र है ही, रोहित रोहिताश्व हो गया है। विश्वामित्र नहीं बदल सके। वैदिक कहानी के मूल में दो तत्त्व थे। विश्वामित्र द्वारा शुनःशेप के पक्ष में होना और हरिश्चन्द्र के यज्ञ का विरोध करना। इससे लोकवार्ता को यह सूत्र मिला कि विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के विरोधी थे। रोहित मारा-मारा बन-बन में फिरा, वरुण जब तब आकर अपनी बलि मांगने लगा। इस तत्त्व में बहुत परिवर्तन हुआ। आगे वैदिक देवताओं का जो विकास हुआ उसमें वरुण का कोई स्थान ही नहीं रहा, कहानी में वह स्थान कैसे रहता ? वरुण हरिश्चन्द्र से बलि मांगता था। उसका स्थान विश्वामित्र को दिया गया। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र से बार-बार दक्षिणा मांगने आते हैं। रोहित का बन-बन डोलना, हरिश्चन्द्र के सकुटुम्ब काशी जाने में बदला।

दूसरा प्रधान तत्त्व है रोहित के स्थान पर शुनःशेप की बलि की तैयारी, कुछ ही क्षण शेष हैं कि उसकी बलि दे दी जाएगी तभी विश्वामित्र आदि की प्रार्थना से वरुण द्वारा उसकी मुक्ति। लोक-कथा में रोहित ही शुनःशेप बना है, उसे सर्प ने काटा है, वह मर गया है। अजीगर्त और बलि का काम लोक-साहित्य में ब्राह्मण और सर्प के रूप में हो गया है। यहां भी देवताओं ने उसे प्राणदान दिया है।

आगे के विकास में मूलतः यही वरुण-कथा सत्यनारायण की कथा में बदली है। देवताओं के विकास में वरुण विशेषतः जल के ही देवता रह गये। सेठ की कहानी में अधिकांशतः सत्यनारायण की कृपा की अभिव्यक्ति जल में ही हुई। लोककथा की सृष्टि करने वाला सत्यनारायण हमें उसी वरुण के

१. वैदिक साहित्य में वेद ही नहीं, आरण्यक, ब्राह्मण और उपनिषद् सभी सम्मिलित हैं।

दर्शन कराने का प्रयास करता दिखाई देता है।

इससे और आगे वरुण की इस कथा के पुत्रदान वाले अंश ने तो अनेकानेक रूप ग्रहण किए हैं। वरुण का स्थान कहीं किसी देवता ने ले लिया है और कहीं किसी सिद्ध पुरुष ने। जिस सम्प्रदाय ने इस कथावस्तु को ग्रहण किया उसने अपने अनुकूल ही वरुण के स्थान पर किसी अपने ही इष्ट को स्थानापन्न कर लिया। गोरख पंथियों के प्रभाव से प्रभावित कहानियों में यह कार्य सिद्ध ही करते मिलते हैं, बहुधा स्वयं गोरखनाथ या उनके कोई पहुंचे हुए शिष्य। हिन्दी लोक-गाथाओं में वरुण कभी-कभी दानव का रूप भी धारण कर लेता है। 'दाना' बाबाजी बनकर आता है, पुत्र का वरदान देता है, पर कहता है कि पुत्र मुझे देना पड़ेगा। आखिर बाबाजी पुत्र का करेगा क्या? वरुण को तो उसकी बलि दी जाती है, बाबाजी वरुण तो हो नहीं सकता। तब वह उसे खाएगा, मनुष्य को खाने वाला दानव या 'दाना'। लोक-मानस में कहानी की रूप-रेखा ठीक हो गई और वरुण को यहां दाना बनना ही पड़ा। अतः वह तेल के कड़ाह में पकाकर उस बालक को खाएगा, उस बालक से सात परिक्रमाएं भी कराएगा। दाना तो बना पर लोक-मानस ने उसे भी धार्मिक कर्मकांडी बना गया। यह दाना वह दाना नहीं है जो अन्य कहानियों में मनुष्य को ही मार-मारकर बिना किसी अनुष्ठान के खा जाता है। तेल का कड़ाह यज्ञ का प्रतीक है, सात परिक्रमाएं उसे और भी धार्मिक रंग दे देती हैं। इस कहानी में कहीं तो वह बालक मारा जाता है, और बाद में उसका बड़ा या छोटा भाई आकर उसे पुनः जीवित करता है, दाने को मारता है। कहीं बालक ही अपने स्थान पर दाने को तेल के कड़ाह में डाल देता है और यहां वरुणत्व के द्योतक मणि-मूंगा, हमें मिलते हैं। वह दाना कड़ाह में पड़ते ही मणि-मूंगा में परिणत हो जाता है। बालक हर दशा में शुनःशेप की भांति ही मुक्त हुआ है।

किसी-किसी उदार लोक-मानस ने उस बाबाजी को दाना न बनाकर जादूगर ही बना दिया है, वह बालक वहां विद्या सीखता है और अन्त में अपनी विद्या से अपने गुरु बाबाजी से झपटें लेकर और उसे मारकर अपने माता-पिता के पास जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद में हमें वे बीज और बिन्दु और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है जो संसार की लोक-संस्कृति और लोककहानी के एक विशद भाग का मूलाधार है।

ऋग्वेद में ही हमें अपाला आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र का चित्रण मिलता है। च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी सुन्दर रीति से इसी वेद में वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण में पुरुरवा और उर्वशी की प्रसिद्ध कथा

है जिसको लेकर महाकवि कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की है। इसी ब्राह्मण में दध्यङ् आथर्वण की कथा का उल्लेख है जिसका लोकप्रिय पौराणिक नाम दधीचि है। दधीचि ने लोकोपकार के लिए अपनी हड्डियों से वज्र का निर्माण कर इन्द्र द्वारा वृत्र का वध कराया था।

गार्गी और याज्ञवल्क्य संवाद, सत्यकाम जाबाल, प्रवाहण तथा अश्वमति की कहानियां उपनिषद् युग में मिलती हैं। नचिकेता की प्रसिद्ध कथा कठोपनिषद् का प्रधान वर्ण्य विषय है। अग्नि और यज्ञ की कथा का केनोपनिषद् में वर्णन पाया जाता है। उपनिषद् युग प्रबल चिन्तन का युग था, फलतः कहानी के निर्माण की प्रेरणा इस युग में दुर्बल हो गई थी।

उपनिषद् युग के पश्चात् जो युग आता है उसने कहानी को इतना महत्त्व दिया कि वही सब प्रकार के भावों का माध्यम बन गई। यह युग रामायण और महाभारत का युग कहा जा सकता है। रामायण और महाभारत पौराणिक युग के पूर्वगामी महाकाव्य हैं। रामायण प्रायः एक ही सुसम्बद्ध कथानक है। महाभारत तो कहानियों का बृहत् कोष ही है। महाभारत में एक नहीं, लोक-साहित्य के अनेकों ही रोचक तत्त्व मिलते हैं जो आज भी विविध रूपों में लोक-गाथाओं और लोक-कथाओं में मिल जाते हैं। कर्ण का नदी में बहाया जाना, उसका सूत द्वारा पालन होना, वे सूत्र हैं जो भारत की अनेक कहानियों में मिलते हैं। कुल्लुई लोक-साहित्य की सात राणियां नामक कथा में राजा की कनिष्ठतम रानी के पुत्र को उसकी सपत्नियां खूड अथवा ओबरे में फिकवा देती हैं, जहाँ से उसे एक कुम्हार उठाता है और पालता है। इसी कहानी के एक अन्य पाठ में नवजात शिशु नदी में फेंका जाता है। महाभारत के एक प्रसिद्ध नायक भीम की कहानी तो लोक-साहित्य की सार्वभौम सम्पत्ति है। कुल्लुई लोक-गाथाओं में महाभारत के अन्य पांडव पात्रों की अपेक्षा भीम का ही अधिक उल्लेख होता है। ताँडी के साथ भीम का ही युद्ध हुआ था। द्रुपद के घर अज्ञातवास में भी भीम की ही चर्चा होती है। काब में महाभारत से कीचक वध का ही प्रसंग लिया गया है। इसका नायक भी भीम ही था। कुन्ती-नन्ती की लोक-गाथा में भी भीम के मद को ही मामा विष्णु नरैण तोड़ना चाहते हैं और उसके द्वारा दुर्योधन को जुआ का आह्वान दिया जाता है। एक अन्य छाड़ी में भीम की भूख का मनोहारी वर्णन है। जितना सब पांडव, माता कुन्ती और द्रौपदी सारे दिन में भोजन करते थे, भीम उतना कुछ कलौरी (कलेवा) में ही खा जाता था।

भीम से विकल होकर कौरवों ने उसे विष खिलाकर गंगा में पटक दिया। भीम पाताल में नागों के लोक में जा पहुंचा। जल में गिरकर पाताललोक या नागलोक में पहुंचने की बात एक नहीं अनेक कहानियों में मिलती है। देव्रा

कन्या गाथा में बसु बावली से होता हुआ ही तासकी के साथ पाताल जाता है। दशू राजा भी तालाब में कमल फूल पकड़ता हुआ नागलोक पहुंच जाता है। राजकुमार शालबाग नदी में छलांग लगाकर दैत्यलोक में जाता है। एक अन्य कुल्लुई लोक-गाथा में पाताल से नाग मृत्युलोक आता है और वहां से एक सुन्दर स्त्री को जल में डुबकी लगाकर अपने साथ ले जाता है। कई आख्यानों में नाग भाई बन जाते हैं। तासकी नाग बसु का धर्म भाई बना था।

बृहत्कथा : कथा साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोक-कहानियों का बृहत् संग्रह संस्कृत में लोककथाओं का सबसे प्राचीन और विशाल ग्रन्थ गुणाढ्य की पैशाची में लिखी 'बुड्डकहा' है। यह आज अप्राप्य है, किन्तु इसका अनुवाद 'कथा सरित्सागर', 'बृहत्कथा मंजरी' और 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' के रूप में आज भी मिलता है। डा० ब्यूलर के अनुसार, 'बुड्डकहा' की रचना ईसा की दूसरी शताब्दी में हुई थी। इसका सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध अनुवाद महाकवि सोमदेव का 'कथासरित्सागर' है। कथासरित्सागर में १८ खंड हैं, जिनमें एक सौ चौबीस अध्याय हैं। अट्ठाइसवें अध्याय में राजा गुहसेन के राजकुमार और व्यापारी ब्रह्मदत्त के पुत्र की मित्रता की कहानी का मूल अंश देश की कई कहानियों में मिलता है। कुल्लुई कहानी में ब्रह्मदत्त व्यापारी के पुत्र के स्थान पर वजीर के पुत्र का उल्लेख है। कथासरित्सागर में 'हार' और 'आम' का उल्लेख है। कुल्लुई राजा और वजीर के लड़के में पूल और द्वार गिरने का। 'सागर' की कथा में मंत्री-पुत्र ने राजकुमार पर आने वाले संकटों को विद्याधरों से सुना है, उन्होंने ही क्रुद्ध होकर अभिशाप के रूप में यह संकट डाले हैं। हमारी इस कथा में इन संकटों की भविष्यवाणी कौए ने की है। मंत्री पुत्र को राजकुमार की रक्षा के लिए अन्तिम बार राजकुमार के अन्तरंग में भी जाना पड़ता है। सोमदेव के ग्रन्थ में तो प्रत्येक छींक पर ईश्वर की कृपा याचना करने के लिए मित्र को राजकुमार की खाट के नीचे छिपना पड़ा, उसे वहां से निकलते ही वह राजकुमार देख सका। कुल्लुई कहानी में लटकने वाले दैत्य नाग से राजकुमार की रक्षा करने वह वहां गया। सांप के विषैले लहू की बूंद राजकुमार के होंठों पर पड़ी। उसे पोंछने के उपक्रम से जगकर राजकुमार ने मंत्री पुत्र को संदेह में पकड़ा। मंत्री पुत्र ने कथा सुनाकर राजकुमार से तो प्राण रक्षा कर ली, किन्तु कौए के कथनानुसार शैल बन गया। राजकुमार ने अपने नवजात शिशु के लहू से उसे पुनः जीवित किया।

पंचतंत्र : आचार्य विष्णुशर्मा कृत पंचतंत्र ऐसी कहानियों का संग्रह है, जो राजकुमारों को राजनीति की शिक्षा देने के लिए उपयोग में लाई गई थीं। पंचतंत्र संस्कृत साहित्य का सबसे मौलिक और प्राचीन कथाग्रन्थ है। यूरोप

की अधिकांश कथाओं का मूल उद्गम पंचतंत्र ही है। यही कहानियां विभिन्न देशों में विभिन्न रूपों में कुछ परिवर्तन के साथ उपलब्ध होती हैं। इन कहानियों की विश्व-यात्रा एक मनोरंजक विषय है।

हितोपदेश, वैतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका आदि कथाओं के अनेक अन्य ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में प्राप्त होते हैं।

बौद्ध तथा जैन साहित्य : बौद्ध साहित्य में जातक कहानियों का संग्रह मिलता है। जातक कहानियां भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं हैं। इनमें राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, पशु-पक्षी सभी आ जाते हैं। इन जातकों में कुछ विद्वानों की सम्मति में तो रामायण से भी प्राचीन कहानियां मिलती हैं। विनय पिटक के छुलवग्ग में कितने ही प्रशंसनीय घटनाचक्र हैं। इनमें बौद्ध-धर्म में मत परिवर्तन द्वारा सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के विवरण हैं तथा कुछ स्वयं भगवान् बुद्ध के जीवन से संबंध रखते हैं। सारिपुत्त, मोग्गल्लान, महाप्रजापति, जीवक आदि की कहानियां इसी में हैं। सुत्तपिटक के दीघनिकाय, और मज्झिमनिकाय में बुद्ध-जीवन संबंधी कितनी ही स्फुट कहानियां हैं।

जैन साहित्य में तो बौद्ध साहित्य से भी अधिक कहानियों का भंडार मिलता है। ये कहानियां कुछ तो धर्म के सिद्धांत ग्रन्थों में आई हैं, पर बहुधा तीर्थंकरों तथा उनके श्रमण अनुयायियों और शलाका पुरुषों की जीवन-झांकियों में जहां-तहां मिलती हैं।

हिन्दी में कहानी : हिन्दी में ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिन्हें कहानी ग्रन्थ कहा जा सकता है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हम उन्हें निम्नांकित विभागों में बांट सकते हैं :—

(१) **लोक-कहानी :** इस वर्ग में वे पुस्तकें आती हैं जिन्हें कहानी ग्रन्थ कहा जा सकता है अर्थात् जो लोक प्रचलित कहानियों को ही कहानियां मानती हैं, जैसे सिंहासनबत्तीसी, वैतालपच्चीसी, माधवानल, कामकंदला, कथा चार दरवेश, हितोपदेश, माधव विनोद और शुकबहत्तरी।

(२) **धर्म माहात्म्य कथा :** इस खंड में ऐसी कहानियां आती हैं जो किसी व्रत से घनिष्ठ संबंध रखती हैं। जब तक यह कहानी सुन न ली जाये तब तक व्रत पूर्ण नहीं होता, जैसे गणेश चौथ की कथा, सत्यनारायण की कथा और बीमा की कथा। या फिर ऐसी कथाएं जो किसी व्रत के महात्म्य को प्रकट करती हैं। और तीसरी ऐसी कथाएं जो साधारणतया ऊपर के प्रकारों में नहीं पर जिनका धार्मिक महत्त्व हो, उनसे कोई पुण्य लाभ हो।

(३) **दन्त कथा :** दन्त कथा के लिए 'लीजेंड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'लीजेंड' शब्द का मूल अर्थ उस वस्तु से था जो पूजा-पाठ के धार्मिक

अवसर पर पढ़ी जाती थी। परन्तु कालक्रम के पश्चात् 'लीजेंड' उन कथाओं को कहा जाने लगा है जो किसी ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर आश्रित हुआ करती थीं। किसी व्यक्ति या स्थान के विषय में कही गई इन कहानियों में परम्परागत मौखिक सामग्री का भी मिश्रण होने लगा। इस प्रकार 'लीजेंड' लोक कथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य, घटना (फैक्ट) तथा परम्परा (ट्रेडिशन) दोनों का समन्वय पाया जाता है। हरदौल, पन्ना वीरमदे की बात आदि दन्तकथा के अन्तर्गत आते हैं।

(४) **साधु कथा :** इन कथाओं में साधु-सन्तों के जीवन अथवा उनके चमत्कार का वर्णन मिलता है। कबीर की जन्म साखी, राजा भीमा की कथा, यशोधरा चरित्र आदि इस प्रकार की कथाएं हैं।

(५) **पौराणिक कथाएं :** इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरों, देवी-देवताओं, जनता की अलौकिक तथा अद्‌भुत परंपराओं तथा सृष्टि रचना का वर्णन होता है। जी० एल० गोमे ने लिखा है कि मिथ (पौराणिक कथा) के द्वारा विज्ञानपूर्व युग की घटनाओं का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण किया जाता है। इनकी प्रधान विशेषताएं हैं : (१) इनकी पृष्ठभूमि धार्मिक होती है, (२) इनका प्रधान पात्र देवी या देवता होता है, और (३) इनका प्रधान वर्ण्य विषय सृष्टि की रचना तथा प्राकृतिक दृश्यों (सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि) का स्पष्टीकरण होता है।

(६) **संस्कार कथाएं :** कुछ ऐसे ग्रंथ भी हैं जिनमें विविध संस्कारों से संबंधित लोकाचारों का वर्णन है। ठाकुर जी की घोड़ी में विवाह के अवसर पर घोड़ी चढ़ने के समय के आचार का वर्णन है। और गीत भी हैं। 'रामकलेवा' इस प्रकार की अन्य रचनाएं हैं।

(७) **विविध कथाएं :** कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं जैसे ब्रजमान की कथा, विसह कथा, जिनका उल्लेख ऊपर के वर्गों में नहीं हुआ। इन कथाओं में रोगों के उपचार के तांत्रिक तरीके बताए गये हैं, जैसे अन्तरिया की कथा में बुखार को दूर करने के तांत्रिक उपचार वर्णित हैं।

कुल्लुई लोककथाओं का वर्गीकरण : लोककथाएं कितने प्रकार की हो सकती हैं, निश्चित रूप में कहना कठिन है, मानव मन की भावनाओं की न गणना हुई है और न ही हो सकती है। कहानियों का विषय मानव हृदय की गहन अनुभूति ही है। इनके वर्गीकरण के संबंध में पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वान् एकमत नहीं हैं। स्वयं पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय विद्वानों का श्रेणी-विभाजन भी एक दूसरे से भिन्न है। सोफिया बर्न ने कहानियों को दो प्रमुख विभागों में विभक्त किया है—(१) परम्परित, (२) मनोरंजन के लिए। परंपरित कथाओं को पुनः तीन भागों में बांटा है—'मिथ', 'लीजेंड' और

'फोकटेल'। कतिपय अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से लोक कथाओं की चार श्रेणियां की हैं: १. कल्पित कथा (फेबुल), २. परियों की कथा (फेयरी टेल्स), ३. दन्त कथा (लीजेंड) और ४. पौराणिक कथा (मिथ)। पश्चिमी विद्वानों का अनुसरण करते हुए कुछ भारतीय विद्वानों ने 'साधारणत: स्थूल दृष्टि से' कहानियों के आठ बड़े भाग किए हैं :—१. गाथाएं, २. पशु-पक्षी संबंधी अथवा पंचतंत्रीय, ३. परी की कहानी, ४. विक्रम की कहानियां, ५. बुझौवल संबंधी, ६. निरीक्षण गर्भित कहानियां, ७. साधु-पीरों की कहानियां, ८. कारण-निदर्शक कहानियां।

भारत के प्राचीन आचार्यों ने कथा साहित्य के दो भाग किये हैं: (१) कथा और (२) आख्यायिका। कथा उस कहानी को कहा जो कवि की कल्पना से प्रसूत होती है, जैसे बाणभट्ट की कादम्बरी और दंडी का दशकुमार चरित। आख्यायिका उस कहानी को माना जिसका आधार ऐतिहासिक घटना होती है। बाणभट्ट का हर्षचरित आख्यायिका का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आनन्दवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेदों का उल्लेख किया है: १. सकल कथा, २. परिकथा और ३. खंड कथा। सकल कथा में बीज (प्रारंभ) से फल-प्राप्ति पर्यन्त समस्त कथा का सन्निवेश उपलब्ध होता है, परिकथा इतिवृत्त निबद्ध होती है, रस परिपाक के लिए उसमें विशेष स्थान नहीं होता। खंड कथा देश प्रधान होती है।

हरिभद्राचार्य ने कथाओं के चार भेद किये हैं: अर्थ कथा, काम कथा, धर्म कथा और संकीर्ण कथा। अर्थ कथा में वर्ण्य विषय धन की प्राप्ति होता है, काम कथा में प्रेम के वर्णन की प्रधानता होती है, धर्म कथा का अर्थ धार्मिक आख्यानों से होता है और संकीर्ण कथा दोनों लोकों की इच्छा रखने वालों के लिए है।[1]

डा० दिनेश सिंह सेन ने बंगाल की लोक कथाओं को चार भागों में बांटा है :—१. रूप कथा, २. हास्य कथा, ३. व्रत कथा, और ४. गीत कथा। रूप-कथा में उन्होंने भूत-प्रेत, देवता और दानवों की कहानियां सम्मिलित की हैं। बालकों की कथाओं को उन्होंने हास्य कथाओं का नाम दिया है, व्रत कथायें विशेष व्रतों और त्यौहारों से संबंधित हैं तथा गीत कथा बच्चों को पालने में झुलाते समय कही जाने वाली कहानियां अथवा लोरियां हैं।[2]

लोकगाथा के समान ही लोककथा को भी हम रूप की दृष्टि से दो भागों में बांट सकते हैं :—छोटी कथाएं और बड़ी कथाएं। छोटी कथाएं प्रायः बच्चों

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रस्तावना, पृ० ११२-११३।

२. दी फोक लिटरेचर आफ बंगाल, पृ० २३३-२६१।

के मनोरंजन के लिए होती हैं और बड़ी कथाएं वयस्कों के लिए। साहित्य में ढेल और पाच तथा माणू रे हूं लघु आकार लोक कथाओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

ढेल और पाच की कथा में एक ढेल[1] और एक पाच[2] ने आपस में सोंग[3] बनने का निश्चय किया। दोनों ने प्रण किया कि वक्त पड़ने पर एक दूसरे के काम आएंगे। ढेल ने कहा कि जब वर्षा हो तुम मेरे ऊपर आ जाना। वर्षा तुम पर बरस कर बह जाएगी। जब आंधी चले तो मैं तुम्हारे ऊपर आ जाऊंगा, इस तरह तुम उड़ाए नहीं जा सकोगे। एक दिन पौंण[4] और पानी दोनों एक साथ आए। पौंण से पाच उड़ गया और पानी से ढेल गल गया।[5]

माणू रे हूं में मानव के मरणशील होने की कथा है। वस्तु तथा गठन की दृष्टि से कुल्लुई लोक कथाओं को दो प्रमुख भागों में विभक्त कर सकते हैं: स्थानीय और सार्वदेशिक। स्थानीय कहानियों के अन्तर्गत राजा-राणा, ठाकुर संबंधी ऐतिहासिक और अर्द्ध ऐतिहासिक कथाएं तथा नाग और नरैण की कहानियां, जाति संबंधी कथाएं आती हैं। इनका महत्व स्थानीय है। सार्वदेशिक कहानियों का कथानक तथा मूलभाव भारत तथा संसार की अन्य भाषाओं की कहानियों में भी मिलते हैं। इस प्रकार की कथाएं हैं:—राजा और वजीर का लड़का, लड़की और ऊंटनी, रूप बसन्त, जट और उसका नौकर, चिपक महादेव आदि।

विषयानुसार कुल्लुई लोककथाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है—१. ऐतिहासिक तथा अर्द्ध ऐतिहासिक कथा, २. देवी-देवता संबंधी कथा, ३. जाति विषयक कथा, ४. व्रत कथा, ५. नीति कथा, ६. प्रेम कथा, ७. मनोरजंक कथा, ८. सामाजिक कथा, ९. परियों, दैत्यों आदि के चमत्कारों की आश्चर्यजनक, उत्साह और रोमांचपूर्ण कथा, १०. पौराणिक कथा।

(१) **ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक कथा**: कुल्लुई लोक साहित्य में ऐसी कथाएं प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं जो अपने भीतर इतिहास के तत्त्व छिपाए हैं। इस प्रदेश के इतिहास के सूत्र को जोड़ने में इनका महत्त्व अत्यधिक है। यहां के विभिन्न राजाओं-राणाओं की वंश स्थापना, उनकी परम्पराएं, राज्य प्रसार आदि प्रसंग अनेक कथाओं के विषय हैं। यद्यपि इन कथाओं में कल्पना

१. मिट्टी का ढेला।
२. पत्ता।
३. मित्र।
४. पवन।
५. कथा का यही रूप अवधी और भोजपुरी में भी मिलता है।

का भी कुछ न कुछ समावेश है, परन्तु इनकी आधारभूमि इतिहास की ठोस घटनाएं हैं, इसमें संदेह नहीं। बाणासुर, तांडी, भंभूराय, प्रद्युम्न, मावी, राणा, ठाकुर और विष्टों की कथाएं ऐतिहासिक या अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं। बाबा कृष्णदास पयहारी की कथा तथा गाडारे दुर्गा तो पूर्णरूपेण ऐतिहासिक हैं।

(२) **देवी-देवता संबंधी कथा :** यद्यपि पौराणिक तथा वैदिक देवी-देवताओं की भी इस प्रदेश में मान्यता है, परन्तु महत्त्व स्थानीय देवी-देवताओं का है। प्रत्येक गांव का अपना एक देवता है और प्रत्येक देवता के संबंध में एक कथा है। पौराणिक देवता भी यहां स्थानीय देवताओं की कथाओं में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका पृथक् कथानक भी स्थानीयता को लिए हुए है। इन कथाओं में देवताओं के जन्म और चमत्कार का ही विवरण अधिक रहता है। नागों की कथाएं, ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक तथा देवी-देवताओं की कथाओं के बीच की हैं। जहां एक ओर उन कथाओं में ऐतिहासिकता का पुट है, वहां दूसरी और वे केवलमात्र काल्पनिक देवी-देवताओं की कथा ही-सी प्रतीत होती हैं। वासुकी नाग, बशेरू नाग, शरशाही नाग, महासू, बिजली महादेव, कोट-ईश्वर, आदिब्रह्मा, महादेव, मैलण देवता, श्रीगुल या बिजु देवता तथा जमलू देवता की कथाएं इस श्रेणी की हैं।

(३) **जाति विषयक कथा :** कुल्लुई क्षेत्र में निवास करने वाली विभिन्न जातियों के संबंध में एक दूसरे की प्रतिक्रियाओं का इन कथाओं में आकलन हुआ है। राहू तथा कोली जाति के संगठन के विषय में अनेक कथाएं मिलती हैं। एक कथा के आधार पर कोली और राहू पहले एक ही जाति थी, जो बाद में कोली के एक पूर्वज की मूर्खता के कारण दो उपजातियों में विभक्त हो गई।

उपर्युक्त तीनों श्रेणियों की कथाएं दन्त कथा के अन्तर्गत भी रखी जा सकती हैं।

(४) **व्रत कथा :** धार्मिक क्रिया-कलापों में व्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कोई भी व्रत तत्संबंधी कथा सुने बिना पूर्ण नहीं समझा जाता। सत्यनारायण, बीमा, पिपुआ व्रत, जन्माष्टमी, रली, रियाही, ऐसे व्रत हैं। बीमा का व्रत पन्द्रह दिनों तक रखा जाता है। इन दिनों में स्त्रियां तब तक भोजन नहीं करतीं जब तक विधि-विधान सहित बीमा की पूजा न कर लें। इसकी कथा प्रतिदिन पृथक्-पृथक् होती है और स्त्रियां ही एक दूसरे को आपस में सुनाती हैं। पिपुआ व्रत (पीपल वृक्ष व्रत) भी स्त्रियों का ही है। रली व्रत कुमारियों का है।

(५) **नीति कथा :** लोक साहित्य की कथाओं में बहुत बड़ा भाग नीति कथाओं का है। उपदेश देने की प्रवृत्ति इन कथाओं की आत्मा है। पंचतंत्र तथा हितोपदेश पर आधारित सब कथाएं उसी श्रेणी की ही हैं। राजा वाणबट्ट

की कथा में आभूषणों के लोभ का दुष्परिणाम दिखाया गया है। जब तक रानी ने नौलखा हार के लिए दुराग्रह नहीं किया, राजा और प्रजा दोनों ही सुखी थे। रानी के 'नौलखा हार' के कारण राजा की जान गई और रानी को भी अपने प्राण देने पड़े। पंचतन्त्रीय कहानियों से शया और ग्राघ, गीदड़ और शेर की यह लघु कथा उदाहरण स्वरूप दी जाती है :—

एक जंगल में गीदड़ों की जोड़ी रहती थी। एक दिन एक शेर उनकी मांद के निकट आया। शेर को आते देख गीदड़ ने अपनी पत्नी से कहा : 'ओ रे चन-मननी', 'का वोलो जी महाराज ?' 'सातो सिओ रोज खाऊ थी, एकी सिआ आज का करी।' (रे चन-मननी। महाराज क्या कहते हैं ? हर रोज सात शेरों को खाया करता था, एक शेर से आज क्या बनेगा ?) शेर भी बाहर यह सुन रहा था। उसने सात शेर खाने की बात सुनी तो डर के मारे वहां से भाग गया।

(६) **प्रेम कथा :** मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कहानियों में प्रेम तत्व सबसे अधिक है। इन कहानियों में माता-पिता का पुत्र के प्रति स्नेह, बहन का भाई के प्रति अकृत्रिम तथा सच्चा प्रेम, पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम स्पष्ट झलकता है। एक लोक कथा में एक राजकुमारी अपने मृत पति के ऊपर उगे घास को प्रतिदिन निकालकर उसे जीवित करती है। दूसरी कथा में एक कन्या जानबूझकर ऐसे युवक से विवाह करती है जिसकी कुल आयु १२ वर्ष की है। बाद में वह यमराज से भी उसे वापिस लेकर जीवित कर देती है। अपने गद्य रूप में मियाँ राँझा तथा कीड़ा कीड़ी की कथा प्रेम कथा ही है।

(७) **मनोरंजन कथा :** इन कथाओं का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन मात्र ही होता है। इन्हें बालक काफी चाव से सुनते हैं। सिगड़ू वीर शिवजी की चिपक ढेल पाच राजा और ब्राह्मण कूंदड़ू, सात चोर आदि इस प्रकार की कथाओं के उदाहरण हैं।

(८) **सामाजिक कथा :** सामाजिक कथा में समाज का वर्णन पाया जाता है। इन कथाओं में किसी राजा के न्याय की कथा, अर्थाभाव के कारण जनता को कष्ट, बहु विवाह, बाल विवाह, मित्र की दुष्टता और अन्ध न्याय आदि के कथानक होते हैं। पानूविष्ट, फुलदी बेटी और राजा भोज इस प्रकार की कथाएं हैं।

(९) **पौराणिक कथा :** लोक साहित्य में पौराणिक कथाओं का काफी बड़ा अंश है। उदी सपाई, राजा प्रीथमी गोपीचन्द, भरथरी, श्रवणकुमार, कानावाडौ राउड़ौ, सूणू पंडत आदि कथाएं इस वर्ग के अन्तर्गत ली जा सकती हैं।

(१०) **परियों, दैत्यों और चमत्कारों की आश्चर्य, उत्साह और रोमांचपूर्ण कथा :** लोक कहानियों का एक ऐसा भाग भी है जिसमें जादू, टोना, साधु-पीर, राक्षस-दैत्य तथा परियों का उल्लेख हुआ है और जो उस कथा के मूलाधार हैं। कई लम्बी-लम्बी कहानियां इन्हीं राक्षस-परियों आदि से भरी पड़ी हैं। आधी, राजा शाल बाग और रूप बसन्त इस प्रकार की कथाएं हैं।

बालकों के लिए कुल्लुई लोक साहित्य में कुछ ऐसी भी कथाएं हैं, जिनमें कथा का अंश अधिक नहीं होता है। किन्तु संबद्धता और भाषा का प्रवाह होता है। उदाहरण के लिए निम्न कथा लें :—

'हाथ की पाओ, कावा लै दीनों, काव की नाहौ, झाकड़े पेशो, झाकड़ की पाव, आगीए दौंहौ, आग की नाही, नैइए शेउई, नै की नाही, बौउदै झूठी, बौउद की नाहौ, साता धारा पोरु।' ('हाथ कहां डाला, कौवे को दिया। कौआ कहां गया, झाड़ियों में घुस गया। झाड़ी कहां गई, आग ने जला दी। आग कहाँ गई, नदी ने बुझा दी। नदी कहां गई, बैल पी गया। बैल कहाँ गया, सात धारों के उस पार।)

बुझौअल कहानियां : कतिपय कहानियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें बुझौअल का उपयोग होता है। इन्हें हम बुझौअल कहानियाँ कहते हैं। इनको तीन भागों में बांटा जा सकता है—१. समाधान बुझौअल, २. शब्द चातुर्य गर्भित ३. संकेत बुझौअल।

बुझौअल समाधान कहानियों में कुछ बातें दी जाती हैं और प्रत्येक बात के समाधान के लिए एक छोटी कहानी या दृष्टान्त दिया जाता है। कुल्लुई लोक साहित्य में वीर विक्रमजीत एक ऐसी ही कहानी है जिसमें ये चार बातें दी हैं :

१. होते की बहन, २. अनहोते का भाई, ३. पैसा गांठ का और ४. जोरू साथ की।

इसमें वीर विक्रमजीत के दुर्दिनों की दशा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि वह अपना राजपाट गंवा बैठता है। बहन के पास जाता है। पहले बहन उसका खूब आदर-सत्कार करती थी, किन्तु अबकी बार भाई को चोर ठहराती है और घर से निकाल देती है। इसी प्रकार आगे की तीन बातों के समाधान के लिए दृष्टान्त रूप में अन्य कहानियाँ हैं।

'ब्राह्मण और नाई की एक और कहानी है। वीर विक्रमजीत की कथा में बातों का समाधान होता है पर इस कथा में घटनाओं को देखकर प्रश्न उठता है और उनका समाधान किया जाता है। ब्राह्मण तीर्थयात्रा के लिए जाना चाहता है और साथ के लिए नाई को कहता है। नाई के किसी यजमान के घर विवाह है, वह ब्राह्मण के साथ जाना नहीं चाहता। ब्राह्मण के इस आश्वासन पर कि

वे उसे विवाह में मिलने वाला पैसा देकर क्षतिपूर्ति कर देगा, नाई साथ जाने को तैयार हो जाता है, पर साथ में यह शर्त भी रख देता है कि मार्ग में वह जो कुछ पूछे ब्राह्मण को बताना ही पड़ेगा और यदि उत्तर न मिला तो वह वापिस चला आएगा। नाई मार्ग में जो भी अद्भुत घटना देखता है उसी का समाधान चाहता है। एक नगर में एक स्त्री यह कहती मिलती है, 'पति का कहा मानो'। दूसरे नगर में एक युवती वस्त्राभूषणों से सुसज्जित मरी पड़ी है, पर उसके पास शोक करने वाला कोई व्यक्ति नहीं होता। इन घटनाओं का ब्राह्मण को कहानी कहकर समाधान करना पड़ता है।

शब्द चातुर्य गर्भित कहानियों के कुल्लुई लोक-साहित्य में होने की बात तो सुनी जाती है, किन्तु लेखक को ऐसी कहानी अभी तक प्राप्त नहीं हुई।

संकेत बुझौअल की कहानी का एक उत्कृष्ट उदाहरण ओ आई, ओ गई है। राजा और वजीर के पुत्र आपस में गहरे मित्र थे। राजापुत्र सीधा-सादा था, मंत्री पुत्र बुद्धिमान। एक दिन राजकुमार एक नदी पर नहाने गया। वहाँ उसने नदी के दूसरे किनारे पर एक राजकुमारी को देखा। दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गये, किन्तु नाम ग्राम नहीं जानते थे। राजकुमारी ने पास से एक फूल तोड़ा, पहले उसे सिर से छुआ, फिर कान से, फिर दाँत से काटा और बाद में पैरों के नीचे डाल दिया। राजकुमार इस संकेत का अर्थ नहीं समझ सका। घर आने पर उसे ओ आई, ओ गई[1] लगी। राजकुमारी का ध्यान करते-करते वह बीमार हो गया। वैद्य कोई निदान न बता सके। मंत्री-पुत्र ने संकेत का अर्थ बताया कि वह राजकुमारी काली बाग की रहने वाली है, जो कर्नाटक देश में है। उसके पिता का नाम दन्तवक्र है और उसका नाम पद्मावती। इस प्रकार संकेत का अर्थ समझने पर राजकुमार और मंत्री-पुत्र उसकी खोज में कर्नाटक जाते हैं। वहाँ उनकी पद्मावती से भेंट होती है। पद्मा को यह समझते देर नहीं लगती कि मंत्री-पुत्र अधिक बुद्धिमान् है। वह उसी से प्रेम करने लगती है, इसलिए वह राजपुत्र को मरवा देना चाहती है।

पशु-पक्षियों की कथा : पशु-पक्षी कई कहानियों के पात्रों का काम करते हैं। जहाँ पशु-पक्षी यथार्थ कहानी के विषय हों, ऐसी कहानियों की गणना तो नीति कहानियों के अन्तर्गत की जाएगी। किन्तु कुछ ऐसी भी कहानियां हैं जिनमें यह प्रासंगिक या भूमिका के रूप में आते हैं। राजा और वजीर के लड़के कहानी में कौआ आने वाले संकट को बताता है। एक अन्य कथा भाग्य का खाना में गीदड़ राजकुमार का विवाह तक करा देता है। वह एक प्रकार से राजकुमार का अभिभावक बनता है और हर सम्भव-असम्भव उपाय से

१. व्याकुलता।

उसकी मान-मर्यादा की रक्षा करता है। राजकुमार की बरात का ठाठ जमाने के लिए वह हजारों बकरियों के सींगों पर कपड़ा लपेटकर उनकी मशालें बना देता है।

लोककथाओं की विशेषताएं : लोक कथाओं के अनुशीलन पर कुछ ऐसी विशेषतायें सामने आती हैं,जिनकी उन कथाओं में प्रधानता रहती है। डा०कृष्ण-देव उपाध्याय के अनुसार इस प्रकार की आठ मुख्य विशेषताएं हैं :[१]

१. प्रेम का अभिन्न पुट, २. अश्लील शृंगार का अभाव, ३. मानव की मूल वृत्तियों का निरन्तर साहचर्य, ४. मंगल कामना की भावना, ५. रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता, ६. सुखान्तता, ७. उत्सुकता की भावना, ८. वर्णन की स्वाभाविकता।

समस्त कहानियों में किसी न किसी रूप में ये तत्त्व पाये जाते हैं। प्रायः कहानिया सुखान्त ही होती हैं। कहानी के नायक को आरम्भ में चाहे कितने कष्टों और बाधाओं का सामना करना पड़े, अन्त में वह सुखी होता है और उसे उसकी अभीष्ट वस्तु मिल ही जाती है। कुल्लुई में राजा बाणबट्ट की कथा ही ऐसी है जो दुखान्त है। इसका कारण सम्भवतः कहानी का ऐतिहासिक मूलाधार हो, जिसे लोक कहानीकार ने ज्यों का त्यों ही रहने दिया है।

लोककथा में अभिप्राय : ऊपर हम कहानियों की विशेषताओं की गणना कर चुके हैं। यहाँ हम कुल्लुई लोक कथाओं में प्राप्त अभिप्रायः (मोटिफ) पर संक्षिप्त विचार करेंगे।

डा० स्टिथ टामसन के अनुसार 'मोटिफ' वह अंश हैं जिसमें फोकलोर के किसी भाग (आइटम) का विश्लेषण किया जा सके[२]। साधारणतया मोटिफ शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं में किसी तत्त्व के लिए किया जाता है। परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि परम्परा (ट्रेडिशन) का वास्तविक अंग बनने के लिए वह तत्त्व (एलिमेंट) ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि इसे साधारण जनता याद रख सके। अतएव यह तत्त्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए। लोक कथाओं में माता को मोटिफ नहीं कह सकते, परन्तु निर्दयी माता या विमाता मोटिफ की संज्ञा प्राप्त कर सकती है। लोक-गीतों में 'दारुनिया सास' अर्थात कष्ट देने वाली, निर्दयी एवं क्रूर सास मोटिफ का अच्छा उदाहरण है।[३] कुल्लुई लोक कथाओं में एक शरीर में दूसरे शरीर

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० १२२।

२. डिकशनरी आफ फोकलोर, भाग २, पृ० ७५३, प्रस्तावना से उद्धृत

३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० १२१।

के प्राणों का प्रवेश, प्राणों की अन्यत्र स्थिति, रूप परिवर्तन, सत की रक्षा, सत का तोल, आपत्ति की सूचना, पशुओं की अभिभावकता, आकाश में उड़ने के साधन, रस्सी, गोरख डिब्बा आदि २५ अभिप्राय: मिलते हैं।

जाति प्रतिनिधि चरित्र : लोककथाओं के विवेचन में हम देख चुके हैं कि अनेक कहानियों में जाति के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मण, सुनार, धोबी, नाई, बढ़ई, कुम्हार आदि का वर्णन मिलता है। लोकमानस में जाति स्वभाव सम्बन्धी धारणाओं का इनमें स्पष्ट चित्रण मिलता है।

कुल्लुई लोककथाओं में राजा रानी को छोड़ सबसे अधिक वर्णन ब्राह्मण का आता है। ब्राह्मण का उल्लेख अधिकाँशतः आदरपूर्ण ही हुआ है। केवल ब्राह्मण और जाट की कथा में ब्राह्मण को बिना भाव के कृष्ण की पूजा करते हुए दिखाया गया है। अन्यथा निपट गंवार ब्राह्मण ने भी कुछ न कुछ पाया है। ब्राह्मण को साधारणतया निर्धन ही बताया गया है। एक ध्यान देने वाली बात यह है कि कुल्लुई ब्राह्मण जाति-पाति का अधिक विचार नहीं करता है। उसकी पुत्रियाँ राजा से ब्याही जा सकती हैं और अपने पुत्र के लिए वधू प्राप्त करने के लिए वह सीधा राजा के पास जाकर उसकी कन्या की माँग कर सकता है। जाट चतुरता में कुछ कमजोर दिखाया गया है पर अपने निष्कपट स्वभाव के फलस्वरूप तथा भोलेपन में वह भगवान कृष्ण को भी साक्षात करवा पाता है और उनसे अपनी गौएं चराने का काम भी ले सकता है। एक दूसरी कहानी जाट और नौकर में जाट को कपटी और धूर्त दिखाया गया है जिसे अन्त में अपनी धूर्तता के लिए ही अपने परिवार के प्राणों से हाथ धोना पड़ा और साथ ही अपनी नाक कटवानी पड़ती है। बनिये का जहाँ भी प्रसंग आया है उसे डरपोक, लोभी, कंजूस, पर धनी बताया गया है।

नाई गीदड़ के समान चालाक रहा है वह लालची भी है। पंडित के साथ तीर्थयात्रा पर पैसे लेकर तो गया पर ध्यान विवाह में मिलने वाले हिस्से का ही रहा और ब्राह्मण से उल्टे-सीधे प्रश्न पूछकर तुरन्त वापिस हो जाना चाहता है। कुम्हार सदा दयालु और बालकों का पालन-पोषण करने वाला दिखाया गया है। सात रानियों की कथा तथा चाणना बूटी में उसने ही छोटी रानी के बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया है।

लोक-नाट्य

कुल्लुई लोक-साहित्य में रास, रामलीला तथा नौटंकी जैसे लोक-नाट्यों का तो अभाव है किन्तु विशु, विर्शु, निर्शु अथवा ठिरशु ऐसे नृत्य-नाट्य मिलते हैं जिनमें लोक-नाट्य के प्रायः सभी गुण पाए जाते हैं। इनके लिए विशेष मंच की आवश्यकता नहीं होती है। कोई खुला स्थान, स्वाँग बनाने के लिए

थोड़े बहुत उपकरण, स्वांग, बाजगी, नर्तक तथा दर्शक ही काफी हैं। लोक-नाट्य का सर्वप्रमुख उद्देश्य लोकरंजन ही है। यह लोकरंजन का आडम्बरहीन साधन है।

ग्रामीण जनता में लोक-नाट्य की परंपरा युगों से चली आ रही है। यदि ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि परिष्कृत रुचि के लोक के लिए जिन नाटकों का विधान है, उसकी आधार भूमि ये लोक-नाट्य ही हैं। नाटक के आधुनिक विकास का बीज इन्हीं नाट्यों में निहित है। इसमें संदेह नहीं कि अपरिमार्जित अभिनय एवं वाचिक अभिव्यक्ति के साधन ये लोक-नाट्य संस्कृत नाटकों की परम्परा में अपने मूल प्रभावों सहित प्रकट हुए हैं।

जहां तक हमारे निर्शु लोकनाट्य का संबंध है प्रतीत होता है कि यह नाटकों के विकास का प्रथम सोपान है। इसके नाटयों से ही रास, नौटंकी जैसे लोक-नाट्यों का विकास हुआ, जो परिमार्जित और परिष्कृत रूप में सभ्य समाज के नाटक बने। निर्शु में मंच नहीं होता, अभिनेता कुछ चुने हुए व्यक्ति नहीं होते, कोई भी व्यक्ति अभिनय कर सकता है। रास या रामलीला में मंच की वृद्धि हुई, अभिनय करने के लिए कुछ एक अभिनेता छांटे गए।

ये निर्शु अथवा विशु मेले सामान्यतः सारे प्रदेश में थोड़े-बहुत स्थानीय पुट के अन्तर के इलावा एक-सा रूप लिए होते हैं। बैसाख महीने के प्रायः दूसरे सप्ताह से ये नृत्य-नाट्य मेले आरम्भ होते हैं और प्रत्येक स्थान पर दो या तीन दिनों तक रहते हैं। दिन में साधारण मेले लगते हैं जिनमें नाटी का प्रमुख स्थान होता है। सायंकाल में भोजन के पश्चात् लोग किसी मैदान अथवा अन्य खुली जगह में एकत्रित हो जाते हैं, दर्शक मैदान के चारों ओर बैठ जाते हैं, बीच में थोड़ा-सा मार्ग स्वांगों के आने-जाने के लिए रहता है। बाजगी (वाद्यवृन्द) एक और बैठते हैं और नर्तक भी आस-पास ही। दर्शकों में जाति संबंधी कोई भेद-भाव नहीं होता, परन्तु अभिनय प्रायः तथाकथित सवर्ण लोग ही करते हैं। प्रकाश के लिए मशालों का प्रयोग किया जाता है। ये मशालें मैदान के चारों किनारों पर जला दी जाती हैं ताकि सब जगह प्रकाश हो। जहां कहीं गैस बत्ती उपलब्ध हैं, वहां मशालों का स्थान उन्होंने ले लिया है। ये मेले सारी रात होते रहते हैं।

निर्शु में संगीत (गीत) नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी बहती है। एक स्वांग के पश्चात् दूसरे स्वांग के आने में जो समय का अन्तर होता है, उसका उपयोग साधारण जनता वाठणा नृत्य में करती है। गीत नृत्य का अभिन्न अंग है। बाजगी, नृत्य अथवा गीत के अनुरूप कभी ढोल-नगारा बजाते हैं तो कभी धौंउस, ढंकुली, भाणा आदि।

स्वांग के लिए अभिनीत कथावस्तु या प्रसंग के अनुरूप वस्त्रादि हुए तो

बेहतर, नहीं तो किसी शाल को अथवा कपड़े की चीर को सिर पर बांधकर या ओढ़कर काम चल पड़ता है। हां, झांकी जैसे स्वांग के लिए तदनुरूप वस्त्राभूषण होते हैं। ऐतिहासिक पात्रों का अभिनय करने वाले भी यथासंभव पात्रोचित वस्त्र पहनते हैं।

रात्रि का सारा कार्यक्रम सुनियोजित होता है। इस संबंध में निर्मण्ड के निर्शु के आधार पर हम यह विवरण प्रस्तुत करते हैं। आरम्भ में फकीरी मंगलाचरण गाते हैं। तत्पश्चात् डोल बरैकी नाम का स्वांग निकाला जाता है, जो एक असाधारण रूप से लम्बे क़द वाली स्त्री का है। यह स्वांग स्वयं कुछ नहीं बोलता है, साथ में स्वांग को उठाने वाले लोग तथा फकीरी उससे सम्बन्धित आख्यान को गाते हैं। दूसरा स्वांग नौताड़ का होता है। इस स्वांग में नौ फुट ऊंचे पुरुष को दिखाया जाता है। इस स्वांग के साथ राजा ध्रुवदेव का गीत गाया जाता है। दलीपा कोई ऐतिहासिक पुरुष प्रतीत होता है, जो संभवतः कांगड़ा का था। उसका यह गीत गाया जाता है :—

मियां दलीपा मारया
से मिरचा जेहा दाना
धुर्वदेऊ राजा आखदा
तेरा लसगर नमाणा
मियां दलीपा पागुडी रंग पंचरंगी
धुर्वदेऊ राजा आखदा तेरी कलगी रह गई टंगी
मां तेरी रोए दाईं बाईं
जोरू रोन्दी ताने
धुर्वदेऊ राजा आखदा तेरी कलगी रह गई काने

इस स्वांग के बाद चिड़ू, गूजर, हेड़ू आदि के स्वांग निकाले जाते हैं। चिड़ू तथा हेड़ू प्रहसन हैं। पहली रात को 'कंचदराउड़ी', 'अर्धनारी', 'रायभट्ट', 'मियां', 'मल्ल', 'सन्त बैरागी' आदि और स्वांग रहते हैं। दूसरी रात के स्वांगों में साहूकार, ब्याह, बीरीभट्ट, नट, जम्मू का मियां, गुडकू देऊ, झांकी, कूटना, पीसना और हल चलाना प्रमुख हैं। इस प्रकार जिन विषयों पर स्वांग निकाले जाते हैं, उन्हें सात भागों में बांटा जा सकता है :—

१. ऐतिहासिक, २. धार्मिक, ३. पौराणिक, ४. सामाजिक, ५. मांगलिक, ६. साधु-वैरागियों संबंधी, और ७. दैनिक जीवन संबंधी।

अपना अभिनय समाप्त कर चुकने के बाद भी स्वांग नाचते हैं और इसके साथ फकीरी गीत गाते हैं, जो उस स्वांग से ही संबंधित होता है।

इन स्वांगों का भी एक निश्चित क्रम प्रतीत होता है। पहला स्वांग यदि ऐतिहासिक है तो दूसरा प्रहसन, तीसरा धार्मिक तो उसके बाद का सामाजिक।

दैनिक जीवन से संबंधित कूटना, पीसना, हल चलाने का प्रसंग भी साथ-साथ चलता रहता है।

इनका उद्देश्य जन-जीवन का दर्पण उपस्थित करना होता है। समाज के दूषित पहलुओं पर तथा गांव के किसी व्यक्ति के बुरे स्वभाव पर बड़ा तीखा प्रहार किया जाता है। स्वांग के पर्दे में किसी की खिल्ली उड़ाना अनुचित नहीं समझा जाता है। ब्याह के स्वांग में बहू को कैसा वर चाहिए, ससुराल में क्या कष्ट होंगे, सास का व्यवहार कितना कटु होता है, इन विषयों पर वार्तालाप होता है। इस वार्तालाप के अन्तर्गत वर की सास उन लांछनों की गणना कर लेती है जो वर बने हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में या उसके वंश के संबंध में जनता को ज्ञात हों। कुल्लुई कन्या की माता उस वर को अपनी पुत्री नहीं देना चाहती, क्योंकि वह वर स्वयं अच्छे चरित्र का नहीं, कहीं यह न हो कि उसकी पुत्री पर दूसरी सोखण (सौत) ले आए। वर की माता कटु जिह्वा वाली है, वह लड़की को तंग करेगी। बाप कंजूस है, अच्छा कपड़ा पहनने को नहीं देगा। या वर के पास न जमीन है और न कोई जायदाद, भूखे-नंगे को क्यों वह अपनी पुत्री दे। इस प्रकार का वाद-विवाद चलता रहता है, और वर पक्ष वाले, अनेक शर्तें स्वीकार करते हैं। कई बार सास ही विदूषक का अभिनय भी कर लेती हैं। जब वर-पक्ष वाले किसी प्रकार 'न' स्वीकार नहीं करते, तो सास कह देती है, अच्छा भई अच्छा, तुम्हारे वर को पत्नी की आवश्यकता है, तो मेरे साथ ही क्यों नहीं शादी कर लेता, मैं उसके तथा उसके परिवार वालों के सब दुर्गुणों से निपट सकूंगी।

निशु लोकनाट्य भूत और वर्तमान का दर्पण है। साधु-बैरागी, रायभट्ट, सल्ल, जम्मू का मियां, मियां दलीपा आदि जहां भूत की याद दिलाते हैं, वहां ब्याह, कूटना, पीसना, हल चलाना और साहूकार वर्तमान का चित्रण करते हैं।

निशु के अवसर पर खेले जाने वाला ठोडा, जिसमें धनुष-बाण से अभिनय किया जाता है, लोक-नाट्य के अन्तर्गत आ सकता है।

५. लोक सुभाषित

ऊपर हम लोक-साहित्य के बहुत बड़े भाग की विवेचना कर चुके हैं। लोक-साहित्य के इस भाग में विस्तार की भावना रहती है। उसमें दीर्घ चित्र, व्यापक भावना, जटिल वृत्त रहता है। इस अध्ययन से लोक-साहित्य का एक अंग बाहर रह गया है। ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिर संचित अनुभूत ज्ञान-राशि भरी पड़ी है। इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक तथा

धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है। इस साहित्य का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण जनता का नीति शास्त्र है। इस प्रकार के लोक-साहित्य को हम लोक सुभाषित का नाम दे सकते हैं।

संस्कृत साहित्य में सुन्दर तथा काव्यमयी उक्तियों को सुभाषित कहते हैं, अतः जिस उक्ति में कुछ चमत्कार हो वह सुभाषित के अन्तर्गत आ सकती है। कुल्लुई लोक-साहित्य में इस प्रकार की उक्तियों के तीन भाग किए जा सकते हैं :—१. लोकोक्तियां, २. मुहावरे, ३. पहेलियां।

लोकोक्तियां : डा० सत्येन्द्र प्रत्येक प्रकार की उक्ति को लोकोक्ति का नाम देते हैं, परन्तु हिन्दी साहित्य में प्रायः कहावत को ही सर्वसाधारण रूप से लोकोक्ति माना जाता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय, श्री कन्हैयालाल सहल, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि विद्वानों ने लोकोक्ति को कहावत का ही पर्यायवाची शब्द माना है। कुल्लुई में लोकोक्ति के लिए कहावत, दृतरान्त, दृष्टान्त, कहाणी, बखाण, बखेणण, नवाणा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

परिभाषा : लोकोक्ति अथवा कहावत की असंख्य परिभाषाएं हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवी ज्ञान के घनी-भूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।'

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकोक्तियों की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की है। जार्जिया देश की लोकोक्तियों के संबंध में एक विद्वान् का मत है कि लोकोक्तियां वे संक्षिप्त सुभाषित हैं जिनमें नैतिक विचारों तथा लौकिक ज्ञान का ही—जो जनता के चिर-कालीन निरीक्षण तथा अनुभव से प्राप्त होता है —वर्णन नहीं है, बल्कि इसके अतिरिक्त वे संस्कृति के तत्त्व, पौराणिक कथाओं के स्वरूप तथा ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रकाश डालती हैं।[१] जर्मनी की लोकोक्तियों के संबंध में प्रो० ओटो हाफ्लेर ने लिखा है कि लोकोक्तियों में प्रतीकवाद केन्द्रित रूप में उपलब्ध होता है, जिसका अतिक्रमण सुन्दरतम पद्यात्मक पदावली भी नहीं कर सकती। इन लोकोक्तियों में मानव जाति की प्रथाओं, घटनाओं तथा उनके गुण-दोषों का वर्णन दैनिक जीवन के अनुभवों द्वारा किया जाता है।

कहावतें झूठ नहीं बोलतीं।[२] इसका प्रमुख कारण यह है कि वे दैनिक

१. ए० गुगुशविली : रेशल प्रोवर्ब्स, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग में उद्धृत।
२. ए प्रोवर्ब्स डज़ नाट टेल ए लाई—एसटोनियन।

अनुभव की दुहिताएं हैं।[1] अरस्तु के शब्दों में 'कहावतें तत्त्वज्ञान के खण्डहरों में से चुनकर निकाले हुए टुकड़े बचा लिए गए हैं।'[2] एग्रीफोला और जानसन इन्हें जनता के जीवन में प्राचीन काल से निरन्तर व्यवहृत होने वाले लघु कथन कहते हैं।

इस प्रकार कहावतों की कई परिभाषाएं दी जा सकती हैं। पर किसी निर्दोष परिभाषा की ओर संकेत कर देना कोई सरल काम नहीं है। कहावत के स्वरूप को लक्ष्य में रखते हुए हम कह सकते हैं कि 'अपने कथन की पुष्टि में, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से, किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय: से अथवा किसीको उपालम्भ देने या किसी पर व्यंग्य कसने आदि के लिए अपने में स्वतंत्र अर्थ रखने वाली जिस लोक प्रचलित तथा सामान्यत: सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।[3]

महत्व : संसार के सभी देशों तथा जातियों में कहावत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कहावतें मानव स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होती हैं। किसी तथ्य की प्रमाणिकता का कहावत से बड़ा कोई प्रमाण नहीं समझा जाता है। कहावतों का महत्व साहित्य तथा भाषा विज्ञान, दोनों की दृष्टि से है। गोर्की के अनुसार 'जाति विज्ञान और संस्कृति के विद्वानों का कथन है कि जनता की विचारधारा जन-कथाओं, कहावतों-मुहावरों आदि में व्यक्त होती है। यह बात सोलह आने सही है। कहावतें और मुहावरे श्रमिक जनता की सम्पूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक अनुभूति के संक्षिप्त रूप हैं।[4]

विशेषताएं : लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी समास शैली है। अपने लाघवत्व के कारण ये सबके मुंह पर रहती हैं। बड़े वाक्यों को याद करना कठिन होता है। अनुभवों का विस्तार लाघवत्व गुण के कारण हृदय पर एकदम असर करता है। आकार में छोटा होने पर भी इनमें विशाल भाव-राशि सिमटी रहती है। उदाहरणार्थ 'तीन पूरबिये चार चूल्हे' यह कहावत ली जा सकती है। इसमें पूर्वियों के स्पर्श-विचार, भोजन-व्यवस्था तथा सामाजिक परम्परा का ज्ञान होता है।

१. प्रावर्ब्स आर दी डाटरस आफ डेली एक्सपीरियेंस। डच। राजस्थानी कहावतों में उद्धृत।
२. भारतीय लोक-साहित्य, पृ० १८५।
३. श्री कन्हैयालाल सहल, राजस्थानी कहावतें, पृ० २०।
४. श्री कन्हैयालाल, सहल, राजस्थानी कहावतें, पृ० २०।

लोकोक्तियों की दूसरी विशेषता अनुभूति और निरीक्षण है। उनमें मानव जीवन की युग-युग की अनुभूतियों का परिणाम तथा निरीक्षण शक्ति अन्तर्निहित है ! खेती के सम्बन्ध में ऐसी अनेक उक्तियां हैं :—

'बुध बणियांण, शुक्र काणा।
शणीचर बोलो पाणी आणा।'

अपनी पैनी निरीक्षण शक्ति के बल से ही तथा अनुभव से ही बुध और शुक्रवार को वर्षा रहित और शनिवार को वर्षा होने की बात कुल्लुई मानव ने कही होगी।

सरलता कहावत को तीसरी प्रमुख विशेषता है। कहावतें बड़ी सरल भाषा में निबद्ध होती हैं जिससे सुनते ही उनका भावार्थ हृदयंगम हो जाता है। कहावतों में कल्पना और व्यर्थ का आडम्बर नहीं होता। ये यथार्थ की भूमि पर जीवन के लिए नीति वाक्यों की तरह प्रचलित हैं।

उपयोग : कहावतों के उपयोग में पोषण, शिक्षण, आलोचन और सूचन की चार दृष्टियाँ मिलती हैं। किसी व्यक्ति ने कोई बात देखी या सुनी है। उसकी पुष्टि में कोई कहावत दृष्टान्त रूप में देकर वह अपने निरीक्षण पर प्रमाण की छाप लगा देता है। कई ऐसी कहावतें हैं जिनमें कोई न कोई सीख, नीति आदि का उपदेश रहता है, जैसे 'दूरी हाँडनी बुरी न हांडनी।' दूर का सरल मार्ग अच्छा है बनिस्बत ऐसे छोटे मार्ग के जिस पर चलने में खतरा हो। कहावतों में आलोचना का भाव रहता है, जैसे 'मैंही आगै बीन बाजउणी' (भैंस के आगे बीन बजाना)। ऋतु, खेत, व्यवसाय, व्यवहार सम्बन्धी कहावतें 'सूचन' उपयोग की हैं।

वर्गीकरण : जान क्रिश्चियन ने विषयानुसार लोकोक्तियों को निम्नलिखित छः भागो में बांटा है :—

१. मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से सम्बद्ध, २. साँसारिक ज्ञान विषयक, ३. सामाजिक और नैतिक, ४. जातियों की विशेषताओं से सम्बद्ध, ५. कृषि और ऋतुओं सम्बन्धी, ६. पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित।

कन्हैयालाल सहल ने कहावतों के आठ वर्ग बनाए हैं[1] जिनमें स्थान सम्बन्धी और ऐतिहासिक कहावतों को पृथक स्थान दिया गया है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्तियों की ये पांच श्रेणियाँ बनाई हैं :—स्थान सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, जाति सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, पशु पक्षि सम्बन्धी लोकोक्तियाँ और प्रकीर्ण

१. राजस्थानी कहावतें, पृ० ५६

लोकोक्तियाँ[1]। नीति सम्बन्धी कहावतों को उन्होंने प्रकीर्ण के अन्तर्गत माना है।

कहावतों का वर्गीकरण किस आधार पर किया जाए, वास्तव में यह बड़ा जटिल प्रश्न है। इसमें जन-जीवन का चित्रण मिलता है, अतः इनका वर्ण्य विषय भी समूचा मानव जीवन है। श्री कन्हैया लाल सहल ने रूप और वर्ण्य विषय की दृष्टि से कहावतों का वर्गीकरण किया है।[2] डा० श्याम परमार ने कहावतों का चार प्रकार से वर्णन किया है:—विषयानुसार, स्थानानुसार, भाषानुसार और जात्यानुसार[3]। डा० सत्येन्द्र ने कहावतों के दो प्रकार किये हैं:—सामान्य और स्थानीय। सामान्य कहावतें प्रायः सर्वत्र प्रचलित होती हैं और स्थानीय कहावतें ग्राम विशेष में ग्रामीण घटनाओं अथवा आवश्यकताओं के आधार पर बनती हैं।[4] कुल्लुई में स्थानीय कहावत का एक उदाहरण निर्मंड तथा इसके आस पास १५-२० मील के घेरे में प्रचलित 'रंदलुओ शमैंई' कहावत है। यह 'लड़का बगल में ढिंढ़ोरा शहर में' कहावत का एक स्थानीय रूप है। रामपुर से दो मील दूर औटर सराज में रंदल नाम का एक गाँव है। एक बार मक्की बीजने का समय आया और रंदल का एक आदमी अपने बैलों की जोड़ी तथा हल को लेकर खेत पर जा पहुंचा। हल खेत में रखा और बैलों को जोतने के लिए पास ले आया। देखा तो हल में शमैंई (जुआ) नहीं। भागा-भागा वापस घर पहुंचा। लोगों ने उससे वापस आने का कारण पूछा। कहने लगा, जल्दी में शमैंई घर पर ही भूल गया था, उसे लेने आया हूं। वास्तव में शमैंई उसके कंधे पर ही था, किन्तु उसने उसे देखा नहीं। तब से उस व्यक्ति के लिए जिसकी कोई चीज हो तो उसके अपने ही पास, पर ढूंढे चारों ओर 'रदलुओ शमैंई' की कहावत का प्रयोग किया जाता है।

अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनके आकार-प्रकार और रंग-ढंग को देख कर ही पता चल जाता है कि उनमें से प्रत्येक के पीछे कोई न कोई कथा अवश्य है। ऐसी कहावतों को हम कथात्मक कहावतें कह सकते हैं। कुल्लुई लोक-साहित्य में इस प्रकार की अनेक कथात्मक कहावतें हैं। 'कुडूए नेगी री तखती' कहावत उदाहरण के लिए यहाँ दी जाती है।

सिरमौर का एक ठाकुर कांदरु की कोटी में राज्य करता था। यह ठाकुर कुल्लू के राजा के हाथों तंग था। कुल्लू का राजा टिक्कर में एक कोट (गढ़) बना रहा था। कोटी ठाकुर ने अपने देवता नाग से सहायता के लिए प्रार्थना

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० १४०।
२. राजस्थानी कहावतें।
३. भारतीय लोक साहित्य, १८८।
४. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ०, १८८

की। ठाकुर ने नाग के लिए टिक्कर में कुल्लू कोट के समीप एक देउरी (मन्दिर) पहले ही बना रखी थी। कुल्लू के राजा का नेगी (मन्त्री) कोट निर्माण के दिनों टिक्कर में ही रहा करता था। एक दिन वह नेगी लकड़ी के तख्ते पर लेटा हुआ था कि नाग के चमत्कार से वह तख्ता नेगी की पीठ से ही जुड़ गया। कुल्लू के राजा ने भयभीत हो कोट बनवाना छोड़ दिया और नाग को कुछ भेंट दी, जिसके फलस्वरूप नेगी की पीठ से तख्ता नीचे छूट गया। तब से कोई वस्तु किसी व्यक्ति के साथ चिपट जाए तो यह लोकोक्ति प्रयुक्त की जाती है।

मुहावरा : मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है परस्पर बातचीत या सवाल-जवाब करना। हिन्दी में कुछ लोगों ने इसके लिए वाग्-रीति, वाग्धारा या रमणीय प्रयोग आदि शब्दों का व्यवहार किया है। मुहावरा किसी भाषा अथवा बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्यखंड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने लोक-व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा है, समझा है तथा बार-बार उनका अनुभव किया है, उनको उसने शब्दों में बांध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।[1] पं० गयाप्रसाद शुक्ल के अनुसार मुहावरा लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वह वाक्यांश है जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित है और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।[2]

लोकोक्ति और मुहावरा : कहावत का वाक्य प्रायः सर्वत्र ज्यों का त्यों रहता है, किन्तु मुहावरे के वाक्यगत विविध प्रयोग हो सकते हैं। उदाहरणार्थ 'लींडे टूंडै झाकड़ै दाढ़ी भौरे पाकड़ै', कुल्लुई में 'नामी चोर मारयो जाय साहूकार कमा खाय'[2] राजस्थानी कहावत के रूपान्तर को लीजिए। इसका प्रयोग बंधा-बंधाया है और इसी रूप में इसकी आवृत्ति की जाती है। मुहावरे का स्वरूप वाक्य, काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अन्य अपेक्षित नियमों के अनुसार यथासंभव बदलता रहता है। 'गाशी भंई लै नाहणों' (आसमान पर चढ़ना) एक मुहावरे को लीजिये। इसके व्यक्ति अथवा अवसरानुसार विभिन्न रूप बनते हैं।

अर्थ की दृष्टि से कहावत अपने में सम्पूर्ण होती है, किन्तु मुहावरा नहीं। यह कहावत 'भौरी शीरे कुला बनाश, भौरी जीमीं बेजे बनाश' (कुल में अधिक

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी। हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना पृ० १४१ पर उद्धृत।
२. राजस्थानी कहावतें, में उद्धृत।

सदस्य कुल के नाश के कारण, तथा अधिक जमीन बीज के नाश का कारण होती है)। यह कहावत स्वतः पूर्ण है। इसके विपरीत 'जोंदी दी पलुशकी' (जले हुए को और जलाना, जले पर नमक छिड़कना।) केवल क्रिया-मात्र है और जब तक किसी कर्त्ता से इसका सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता, यह मुहावरा कोई सम्बद्ध अर्थ नहीं दे पाता। मुहावरा वस्तुतः एक कार्य व्यापार है, जब कि लोकोक्ति एक प्रकार का नैतिक अथवा व्यावहारिक कथन है। लोकोक्ति एक अप्रस्तुत प्रयोग है जब कि मुहावरा मुख्यतः लाक्षणिकता लिए रहता है।[1]

पहेलियां : कुल्लुई बोलियों में पहेलियों को बुझौणी, बुझणेंए, कौथे अथवा पहेली कहा जाता है। संस्कृत में इनके लिए प्रहेलिका अथवा ब्रह्मोदय का प्रयोग हुआ है। डा० सत्येन्द्र ने पहेली को लोकोक्ति का ही अंग माना है। पहेलियों की परम्परा वैदिक काल से ही चली आई है। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ये अनुष्ठान का एक आवश्यक अंग समझी जाती थीं। पं० रामनरेश त्रिपाठी तो ऋग्वेद को पहेलियों का वेद कहना भी उचित समझते हैं। डा० सत्येन्द्र ने पहेलियों को निम्नलिखित सात भागों में विभक्त किया है।[2]

१. खेती सम्बन्धी २. भोजन सम्बन्धी ३. घरेलू वस्तु सम्बन्धी ४. प्राणी सम्बन्धी ५. प्रकृति सम्बन्धी ६. अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी और ७. अन्य।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी केवल नामों को बदलकर इन्हीं सात वर्गों को स्वीकार किया है।[3] पहेलियाँ केवल बच्चों के मनोरंजन की वस्तुएं नहीं, ये बुद्धि मापक भी हैं और मनोरंजक भी। जिस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान-वेत्ता प्रश्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि का माप करते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में मनुष्यों की बुद्धि परीक्षा के लिए पहेली की रचना की गई होगी। ये सभ्य और असभ्य सभी कोटि के पुरुषों और जातियों में प्रचलित हैं।

कुल्लुई भाषा-क्षेत्रों में पहेलियों का प्रयोग मनोरंजन के साथ-साथ बालकों की निरीक्षण शक्ति की जाँच के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ग्राम के किसी व्यक्ति के घर के सदस्यों को पुरुष स्त्री और बालकों की संख्या में बाँटा जाता है और बालकों से पूछा जाता है कि इस प्रकार का किसका घर है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति के घर में १५ सदस्य हैं, जिनमें पाँच पुरुष, चार स्त्रियाँ और

१. श्री कन्हैयालाल सहल, रा० क०, पृ० २४-२५।
२. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ४६५-४६६।
३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० १४४।

तीन बालक तथा तीन बालिकायें हैं। यदि बालक बहुत छोटे हुए तो उनकी गणना पृथक होती है। यदि बड़े हों तो वे पुरुष तथा स्त्रियाँ ही माने जाते हैं। इस प्रकार की पहेलियों से बच्चों को ग्राम के सब घरों का परिचय मिल जाता है।

३ : लोकगीत

१. संस्कार गीत

जीवन को संस्कृत बनाने के लिए जो विधान किए जाते हैं उन्हें संस्कार कहा जाता है। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में इस प्रकार के १६ संस्कारों का उल्लेख है। ये संस्कार हैं:—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णबेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि।

प्राचीन काल में ये सभी संस्कार विधिवत मनाए जाते थे, पर आधुनिक युग में इनमें से कई संस्कार जैसे गर्भाधान, पुँसवन, सीमन्तोनयन, समावर्तन, वानप्रस्थ आदि लुप्तप्राय हो गये हैं, शिक्षित समाज में तो जो बाकी संस्कार रह गए हैं, उनके मनाने का कुछ उपकरण दीख पड़ता है। पर सामान्य ग्रामीण जनता में तो जातकर्म, नामकर्ण, चूड़ाकर्म, उपनयन और विवाह संस्कार ही मनाए जाते हैं। कुल्लुई प्रदेश में जातकर्म भी लुप्त हो गया है। यहां पर नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन और विवाह ये चार संस्कार ही होते हैं। कहीं-कहीं तो केवल विवाह संस्कार ही होता है।

इन संस्कारों के दो रूप होते हैं:—एक पौरोहित्य सम्बन्धी और दूसरा लौकिक। पौरोहित्य रूप में पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण तथा कर्मकांड होता है। लौकिक रूप का आधार लोकाचार है। इसका उल्लेख किसी स्मृति में नहीं मिलता और न ही इसके कराने के लिए किसी पुरोहित की आवश्यकता होती है। इसे स्त्रियां ही कर लेती हैं। यह लोकाचार ही विशेषतः गीतों के साथ घनिष्ट रूप से सम्बद्ध रहता है।

नामकरण—यह संस्कार जन्म से तीसरे या पांचवें महीने होता है। इसे 'द्वारा बाहरे काढणा'[1] कहा जाता है। इससे पूर्व शिशु को घर के प्रमुख द्वार से बाहर नहीं निकाला जाता है। इस दिन द्वार के बाहर वाले आंगन को लीपा-पोता जाता है और वहां चौक पूरी जाती है। गोबर के साथ द्वार के

1. द्वार से बाहर निकलना।

साथ अर्धगोलाकार रेखा दी जाती है, जिसके मध्य में गोबर का पिंड रखा जाता है और उस पिंड पर दूर्वा रखी जाती है तथा उसे पुष्पों से सजाया जाता है। सगी संबंधी स्त्रियां परिवार में आ जाती हैं, बालक को नहला-धुला कर मामा के घर से आए नए कपड़े पहनाए जाते हैं। गांव के अन्य परिवार सगुन के लिए मेवा अथवा 'मोड़ी रीड़ी' (भुने हुए गेहूं, चने आदि जिसमें गुड़ मिली रहती है) लाते हैं। माता शिशु को गोद में लेकर द्वार की पूजा करती है। इसके उपरान्त पुरोहित बालक का नाम बताता है और माता एकत्रित संबंधियों को उसका नाम सूचित करती है। इसी समय स्त्रियां यह गीत गाती हैं :

आओ पहलाडी[1] पीलड़िये,[2] आपणे आप जगावै ।
आओ दूजेड़ी[3] पीलड़िये, आपणी शासुबी[4] जगावे ।
आओ चीजेड़ी[5] पीलड़िये, आपणे स्वामियां जगावे ।
आओ चौथड़ी पीलड़िये, आपणी दाई[6] सुहाई[7] बदावे ।
थाड़ी लेंदिए बेटड़िए, प्रोउड़ी[8] पूजा रचाये ।
गंगा केरे पांणिए बेटड़िए, पूजा रचाये ।
कूंगूए पाचैउड़े[9] बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये ।
बेला केरी पात्री[10] बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये ।
लाडुए नेउजे बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये ।
धौंड़ियारे धूपे बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये ।
थाडू भोरी बजीउरिए, रोक रुपय्यो बधाई ।

द्वार पूजा के पश्चात् उपस्थित स्त्रियों और बच्चों में मोड़ी और मेवे बांटे जाते हैं तथा उन्हें घर के भीतर ले जाकर रोटियाँ और कड़ाह (हलवा) खिलाया जाता है। बच्चा प्रायः द्वार के बाहर जब सूर्य की किरणें आस-पास के पर्वत शिखरों पर फूट रही हों, तब निकाला जाता है।

चूड़ाकर्म:—चूड़ाकर्म का नाम 'जडोलण' है। बालक के जन्म के तीसरे

१. पहली, २. सुहागन,
३. दूसरी ४. सास,
५, तीसरी, ६. बहन,
७. सहेली, (दाई)
८. मुख्य द्वार,
९. अक्षत, १०. बेलपत्र।

३ : लोकगीत

१. संस्कार गीत

जीवन को संस्कृत बनाने के लिए जो विधान किए जाते हैं उन्हें संस्कार कहा जाता है। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में इस प्रकार के १६ संस्कारों का उल्लेख है। ये संस्कार हैं:—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णबेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि।

प्राचीन काल में ये सभी संस्कार विधिवत मनाए जाते थे, पर आधुनिक युग में इनमें से कई संस्कार जैसे गर्भाधान, पुँसवन, सीमन्तोनयन, समावर्तन, वानप्रस्थ आदि लुप्तप्राय हो गये हैं, शिक्षित समाज में तो जो बाकी संस्कार रह गए हैं, उनके मनाने का कुछ उपकरण दीख पड़ता है। पर सामान्य ग्रामीण जनता में तो जातकर्म, नामकर्ण, चूड़ाकर्म, उपनयन और विवाह संस्कार ही मनाए जाते हैं। कुल्लुई प्रदेश में जातकर्म भी लुप्त हो गया है। यहां पर नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन और विवाह ये चार संस्कार ही होते हैं। कहीं-कहीं तो केवल विवाह संस्कार ही होता है।

इन संस्कारों के दो रूप होते हैं:—एक पौरोहित्य सम्बन्धी और दूसरा लौकिक। पौरोहित्य रूप में पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण तथा कर्मकांड होता है। लौकिक रूप का आधार लोकाचार है। इसका उल्लेख किसी स्मृति में नहीं मिलता और न ही इसके कराने के लिए किसी पुरोहित की आवश्यकता होती है। इसे स्त्रियां ही कर लेती हैं। यह लोकाचार ही विशेषतः गीतों के साथ घनिष्ट रूप से सम्बद्ध रहता है।

नामकरण—यह संस्कार जन्म से तीसरे या पांचवें महीने होता है। इसे 'द्वारा बाहरे काढणा'[1] कहा जाता है। इससे पूर्व शिशु को घर के प्रमुख द्वार से बाहर नहीं निकाला जाता है। इस दिन द्वार के बाहर वाले आंगन को लीपा-पोता जाता है और वहां चौक पूरी जाती है। गोबर के साथ द्वार के

१. द्वार से बाहर निकलना।

साथ अर्धगोलाकार रेखा दी जाती है, जिसके मध्य में गोबर का पिंड रखा जाता है और उस पिंड पर दूर्वा रखी जाती है तथा उसे पुष्पों से सजाया जाता है। सगी संबंधी स्त्रियां परिवार में आ जाती हैं, बालक को नहला-धुला कर मामा के घर से आए नए कपड़े पहनाए जाते हैं। गांव के अन्य परिवार सगुन के लिए मेवा अथवा 'मोड़ी रीड़ी' (भुने हुए गेहूं, चने आदि जिसमें गुड़ मिली रहती है) लाते हैं। माता शिशु को गोद में लेकर द्वार की पूजा करती है। इसके उपरान्त पुरोहित बालक का नाम बताता है और माता एकत्रित संबंधियों को उसका नाम सूचित करती है। इसी समय स्त्रियां यह गीत गाती हैं :

आओ पहलाडी[1] पीलड़िये,[2] आपणे आप जगावै।
आओ दूजेड़ी[3] पीलड़िये, आपणी शाशुवी[4] जगावे।
आओ चीजेड़ी[5] पीलड़िये, आपणे स्वामियां जगावे।
आओ चौथड़ी पीलड़िये, आपणी दाई[6] सुहाई[7] बदावे।
थाड़ी लेंदिए बेटड़िए, प्रोउड़ी[8] पूजा रचाये।
गंगा केरे पांणिए बेटड़िए, पूजा रचाये।
कूंगूए पाचैउड़े[9] बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये।
बेला केरी पात्री[10] बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये।
लाडुए नेउजे बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये।
धौंड़ियारे धूपे बेटड़िए, प्रोउड़ी पूजा रचाये।
थाडू भोरी बजीउरिए, रोक रुपय्यो वधाई।

द्वार पूजा के पश्चात् उपस्थित स्त्रियों और बच्चों में मोड़ी और मेवे बांटे जाते हैं तथा उन्हें घर के भीतर ले जाकर रोटियाँ और कड़ाह (हलवा) खिलाया जाता है। बच्चा प्रायः द्वार के बाहर जब सूर्य की किरणें आस-पास के पर्वत शिखरों पर फूट रही हों, तब निकाला जाता है।

चूड़ाकर्मः—चूड़ाकर्म का नाम 'जडोलण' है। बालक के जन्म के तीसरे

१. पहली, २. सुहागन,
३. दूसरी ४. सास,
५, तीसरी, ६. बहन,
७. सहेली, (दाई)
८. मुख्य द्वार,
९. अक्षत, १०. बेलपत्र।

या पांचवें वर्ष यह संस्कार किया जाता है। जडोलण का दिन पहले ज्योतिषी या पुरोहित से पूछ लिया जाता है। मुहूर्त के अनुसार मुण्डन ग्राम मन्दिर में जाकर किया जाता है। इस अवसर पर बुआ, बहन और मामा का उपस्थित होना आवश्यक समझा जाता है। यह अवसर विशेष उत्सव का होता है। जडोलण से एक दिन पूर्व सारे नाते-रिश्तेदारों में थोड़ा-थोड़ा घी या मक्खन बांटा जाता है, जिसका अभिप्राय: आने वाले दिन संस्कार की सूचना देना और सम्बन्धी स्त्रियों और बालक-बालिकाओं, विशेषकर बालिकाओं, को नहा-धोकर तथा बाल साफ कर तैयार रहने का आग्रह करना है। जडोलण के दिन सब सम्बन्धी जिस घर में जडोलण हो रहा हो, आ जाते हैं। फिर हेसी-बाजगी (शहनाई वादक) को बुलाया जाता है। उसके आने पर आगे-आगे यह हेसी-बाजगी और उसके पीछे जिस बालक का जडोलण हो, वह अपनी माता की पीठ पर मन्दिर की ओर जाता है। साथ में सब सम्बन्धी होते हैं। मार्ग में यह गीत गाया जाता है—

'तीर्था रायो प्रिया गो, पूना कोरे न्हाई आई।
ऐतरे बड़ी संख्या में न्हाई।
एगो मोन्दी सुरो, बरुणें संदूर जो कोई न्हाउणें आवे।
कोटी के जन्म पापा विनाशैं, मोनों को फल पावे।
गंगा जोबना सोरास्वती मिला मंगीणु माये लोको रहे।
असर नहीं रहीये शरीरो, रहीये शरीरो।
मन को बाचा, रूठी गै बड़ी संख्या।
वहुविधै पुरुखा किये ईना धोर्मा।
तैंवे हांमें न्हाउणें आए।
दखणे उत्तरे पूर्वे पछिमें चउकुण पंथ न्हारे।
बहुविधै पुरखा किये ईना धोर्मा।
तैंवे हांमें न्हाउणें आये।
चालो चालो थानें बनाणसी[1]।
बोसे ईशुरा देउआ गुरु।
चालो चालो थाने बनाणसी।
बोसे जै ईशुरा देउआ गुरु मणिकरण कैसे भवानी।
हाथे बरुणा द्रुणी चालो चालो थाने बनाणसी।
कुशल क्षिमा[2] करे जाये पहुंचे नौउए नौउए अर्जण[3] पांछी।

१. वाराणसी स्थान, २. कुशलक्षेम, ३. अनजान,

शिवपुरी रहगो जागरत जागो तैबे हामें न्हाउणे आओ ।
शल क्षिमा करो जाये पहुंचें नौउए नौउए अर्जण पांछी ।
गांभी समुद्रें गुप्ती परगटी, नौउए नौउए पांछी ।
शिवपुरी रहणा जागरती जागरती, तैबे हाँमें न्हाउणे आए ।
गोयल[1] मथरा मंगल गाए, नौउए नौउए अर्जण पांछी ।
गोयल मथरा बोड़ा[2] पीपड़ी छेंई[3] तैबे हामें न्हाउणें आए ।

जब मन्दिर के मुख्य द्वार पर सब लोग पहुंचते हैं तो भीतर प्रवेश करने से पूर्व यह गीत गाया जाता है—

'ओ बीरा भाई भोजगिया[4] ।
देवीए परौउड़ा घुग्राड़े[5] ।
देवी आए हाँमें पोरसणै ।
घृत ज बाड़ाए आ ।
देवी आए हांमें पोरसणें ।
गांगा केरे पाणीयें न्हाइआ ।
देवी आए हाँमें पोरसणे ।
भाई कूंगूए पाचैउड़ै मानाइआ ।

भाई पुजारी, देवी के परौड़ खोल दे, हम देवी की पूजा के लिए आए हैं, घी के दिये जला रहे हैं, गंगा जल से हमने स्नान किया है। कुंकुम और अक्षत हम सब साथ लाए हैं। अन्य सामग्री का नाम भी लिया जाता है।

मन्दिर में पहुंचने तक पुरोहित ने हवन-शान्ति का सारा प्रवन्ध किया होता है। बालक तथा उसके माता-पिता फिर हवन करते हैं। इस कार्य में पुरोहित का ही मुख्य भाग होता है। तत्पश्चात् जड़ू[6] काटने की तैयारी होती है। जड़ूओं को पाँच लटों में विभक्त कर डोरी (मौउली) से बांधा जाता है। कैंची की विधिवत् पूजा की जाती है। तब पिता अपने हाथ से बाल काटता है। बाल काटते समय का यह गीत है—

१. गोकुल,
२. बड़, ३. छाया,
४. पुजारी, ५. खोल।
६. अनकटे लम्बे बाल,

'गोपाले मथुरा जोरसे[1] बालया।
कसु देवै कसु देवै जड़ू बान्हे।
कसु देवीए कसु देवीए जड़ू सींचें।
बसु देवै बसु देवै जड़ू बान्हें।
जसोदा देवकी माईये जड़ू सींचे।
कसु देवै कसु देवै जड़ू बान्हे।
कसु देवीए कसु देवीए जड़ू सींचे।
नोन्दी मोरे नोन्दी मोरे जड़ू बान्हें
जसोदा माईये जसोदा माइये जड़ू सींचे।
देवकी माईए आंचल पगारो[2]।
कसु देवै कसु देवै जड़ू बान्हें
कसु देवीए कसु देवीए आँचड़ा पगारो।
(पिता का नाम) जड़ू बान्हें
(माता का नाम) आँचड़ा पगारो।
कसु देउए कसु देउए देरै जड़ू बान्हें।
माई आम्बिके देहूरै जड़ू बान्हें।
कसु देहूवै कसु देवै कचौरा[3] कियो।
कसु देवीए आंचड़ा पगारो।
वसु देवै बसु देवै कचौरा कियो।
देवकी माइए आंचड़ौ पगारौ।
कसु देवै कसु देवै कचौरा कियौ
कसु देवीए कसु देवीए आंचड़ा पगारो।
नोन्दी मोरे नोन्दी मोरे कचौरा कियो।
दसोदा माईए आंचड़ा पगारो।
कसु देउए देहूरै कचौरा कियो।
माई आम्बिके देहूरै कचौरा कियो।'

बालों को माता अपनी गाची[4] के धूरे[5] में पकड़ती है और उनकी पूजा करती

१. जन्म,
२. आंचल फैलाया.
३. क्षौर।
४. कमर के गिर्द लपेटे जाने वाली चादर,
५. भाग,

है। उसके बाद एक थाली में डालकर उन्हें देवी के अर्पण किया जाता है। बालों के काटने के बाद बालक को नहलाया जाता है, जिसका गीत इस प्रकार है :—

'प्रोउड़ी खड़ो हुग्रो ठठराटू, सौ लागा वीरण मेरो वे।
ग्राणें कनाड़टू वदाणू तेबे मेरो ग्रति लाड़ला नहाएगा।
हे, ग्ररि ग्रो, ग्ररि ग्रो, ग्ररि ग्राग्रो मिलाहे सुहेलियो
लाडला देखणे जाणों वे।
केइसा लाडला देखणे ? जेइसा पूर्णिमो चन्द्रो वे।
तेइसा लाडला देखणें।
प्रोउड़ी खड़ो हुग्रो सोग्राटू, सौ लागा वीरण मेरो वे।
ग्रांणिदे चोड़टू टोपड़ू, तेऊ मेरा ग्रति लाड़ला पहनेगा।
हे, ग्ररि ग्रो- ग्ररि ग्रो, ग्ररि ग्राग्रो मिलुहे सुहेलियो।
लाड़ला देखणे जाणों वे।
केइसा लाड़ला देखणें ?
जेइसा पूर्मिणा चन्द्रो वे, तेइसा लाड़ला देखणें।
प्रोउड़ी खड़ो हुग्रो सनारटू, सौ लागा बीरण मेरो वे।
ग्राणी ले ढागलू केवटू[1] तेऊ मेरा ग्रति लाड़ला पहनेगा।

माता द्वार पर ठठार[2], सुनार, ग्रौर दर्जी को देखकर कहती है, तुम लोग मेरे भाई हो, परात, वस्त्र, कड़े ग्रौर कुंडल बना लाग्रो। मेरा लाड़ला परात में नहाएगा, चोला ग्रौर टोपी पहनेगा ग्रौर हाथों में कड़े ग्रौर कानों में कुंडल पहनेगा। हे मेरी सहेलियो, ग्राग्रो, मेरे लाड़ले को देखो, जो पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा सुन्दर है।

बालक को नहलाने के उपरान्त मामा के दिए वस्त्र पहनाए जाते हैं। इस ग्रवसर पर माता के मायके तथा ग्रन्य सम्बन्धियों के घर से बालक के लिए कपड़े तथा सोने-चांदी के कुंडल ग्रौर हाथों के कड़े दिए जाते हैं। साथ में बधाई ग्रथवा शगुन के रूप में रुपया, ग्रठन्नी भी देते हैं जिसे 'दान' कहा जाता है। कपड़े पहनाने का यह गीत है :—

भौले जोगी कापड़े ग्राणे नानुग्रा।
पहने कृष्ण मुरारी।

१. एक पाठ कुंडलू है,
२. बर्तन बनाने वाला,

भौले जोगी कापड़े आणे मामुआ।
पहने कृष्ण मुरारी।

इसी प्रकार दादा, बाबू, चाचा, बीरण आदि को कपड़े लाने के लिए कहा जाता है और अन्त में यह पंक्ति गाई जाती है :—

'कुंडी भौरे चाउड़ा, पौन्द्रह पाए पकयाना[१]।'

जडोलण के उपलक्ष्य में एक भोज दिया जाता है, जिसमें गांव के सभी लोग निमंत्रित होते हैं। इसे 'धाम' कहा जाता है। यह धाम या तो मन्दिर में दी जाती है, या घर पर। मन्दिर में धाम रात्रि को दी जाती है और तब इसे 'पूजा' कहा जाता है।

उपनयन :—उपनयन को बडारण या जनेऊ कहा जाता है। जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। यज्ञोपवीत धारण करना आर्य जाति की बहुत पुरानी प्रथा है, । प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार होने पर ब्रह्मचारी गुरु के पास विद्याध्ययन के लिए जाता था। इसी कारण इस संस्कार को उपनयन कहा जाता है : 'उपनीयते गुरु समीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्'। मनुष्य को द्विज कहलाने के लिए यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था, क्योंकि मनु के अनुसार जनेऊ धारण करने से पूर्व मनुष्य मात्र शूद्र उत्पन होता है :—

'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विजोच्यते'।

स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय का ११ वर्ष तथा वैश्य का १२ वर्ष की अवस्था में होना चाहिए। यज्ञोपवीत के समय ब्राह्मण के लिए वसन्त, क्षत्रिय के लिए ग्रीष्म तथा वैश्य के लिए शरद् अथवा सब ऋतुएं बताया गया है।

कुल्लुई क्षेत्र में यज्ञोपवीत का रिवाज मुख्यतः ब्राह्मणों में है। क्षत्रियों और अन्य जातियों में प्रायः इसका प्रचलन नहीं है। जहां तक अवस्था का प्रश्न है, शायद ही कोई उपनयन संस्कार आठ और बारह वर्ष के भीतर होता हो। बडारण प्रायः विवाह के साथ ही किसी मन्दिर में या घर पर ही किया जाता है। हां, यदि विवाह के साथ बड़ारण का महूर्त न मिले, तो इसे पृथक् भी किया जाता है। ऐसी अवस्था में यह संस्कार उसी धूमधाम से किया जाता है जैसे

१. पकवान

जडोलण अथवा विवाह । बडारण के महूर्त से लगभग एक सप्ताह पूर्व पुरोहित बालक को कुछ मंत्र याद कराने के लिए दे देता है, जिससे कि बडारण होने के बाद उसे कोई कठिनाई न हो । एक श्लोक यह भी याद कराया जाता है :—

'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुंचशुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।'

वस्तुतः यह श्लोक उन बालकों को याद कराया जाता है जिन्हें हिन्दी अथवा संस्कृत का थोड़ा बहुत ज्ञान हो । अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है, अतः ऐसे श्लोकों को पढ़ना या याद करना उनके लिए कठिन है । ऐसी स्थिति में बाड-रण के समय पुरोहित ही इन मंत्रों को बालक के कान में कह कर अलम् कर लेता है और बडारण की स्मृति केवल मात्र गले में जनेऊ ही रह जाता है ।

यज्ञोपवीत संस्कार से पूर्व मामा तथा उसके अन्य सम्बन्धी यदि उसी गांव में हों तो बालक को भोजन देते हैं जिसमें उसका समस्त परिवार तथा अन्य परिजन भाग लेते हैं । इस भोज को 'कली' कहा जाता है । विवाह से पूर्व भी इसी प्रकार की 'कली' वर और वधू को उनके मामा-नाना देते हैं ।

यज्ञोपवीत संस्कार की पूर्व रात्रि में बालक को व्रत रखना पड़ता है । यदि संस्कार मन्दिर में हो तो सब सगे सम्बन्धी मन्दिर जाते हैं और वहां शास्त्रोक्त विधि से संस्कार किया जाता है । हवन-शान्ति करने के बाद बालक के शरीर में उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है । संस्कार के समय वह लंगोटी, मूंज की मेखला धारण करता है तथा बड़ और पीपल के पेड़ की छोटी-छोटी टह-नियों का गुच्छा हाथ में लिए रहता है । उसके शरीर पर मृगाम्बर या बाघा-म्बर डाला जाता है । इस अवसर पर यह गीत गाया जाता है :—

'डौंडिका मौंडिका कुणी भडुए दीनौ ?
पहलड़ी डौंडिका माई आंबिके दीनौ,
दूजो डौंडिका दादूए दीनौ,
चीओ डौंडिका बाबूए दीनौ,
चौथा डाँडिका नानूए मेरे दीनौ,

इस प्रकार मामू, चाचू आदि सम्बन्धियों का उल्लेख रहता है ।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल में विद्याध्ययन करने

के लिए भिक्षा मांगता है। गीत इस प्रकार है :—

'नोखौ[1]' जोगटू आया हरिकृष्ण, नोखो०।
कांही देशा का आया हरिकृष्ण, कांही०।
अटबड़ा देशा का आया हरिकृष्ण, अटबड़ा०।
भिछिया[2] मांगने आया हरिकृष्ण, भिछिया०।
भिछिया मांगी न जाणा हरिकृष्ण, भिछिया०।
बघंबर ओढ़े हरिकृष्ण, बघंबर ओढ़े०।
पहलाड़ी भिछिया कुणीं भडुए दीनी,
पहलाड़ी भिछिया माई आम्बिके दीनी।
दूजाड़ी भिछिया दादूए मेरेए दीनी।
चीजड़ी भिछिया बाबूए मेरेए दीनी।

इसी प्रकार चौथी भिक्षा नाना ने, पांचवीं मामा ने, छटी चाचा ने और सातवीं वीरण (भाई) ने दी। भिक्षा एकत्रित कर लेने पर ब्रह्मचारी अब काशी चलने के लिए तैयार होता है। माता रोने लगती है। ब्रह्मचारी उसे सान्त्वना देता है, मां, रो मत, विद्या सीख के आऊंगा, काशीपुर के पंडित से विद्या सीखूंगा :—

'बड़ौ चालौ काशी लै, माई लागवी रौन्दी।
रोए न माई ए, विद्या आंदौ शीखी।
काशी पुरे पौंडिता का, विद्या आंदौ शीखी।'

मूंज की मेखला आदि का उल्लेख निम्नांकित गीतों में हुआ है :—

'कीजू केरी ताड़ागी, कीजू केरो जानेऊ।
कीजू केरी ताड़ागी, कीजू केरो जानेऊ।
मूंजी केरी ताड़ागी, कुशा केरो जानेऊ।
कीजू केरी ताड़ागी, कीजू केरो जानेऊ।
पाटा केरी ताड़ागी, रेशमा केरो जानेऊ।

१. अनोखा,
२. भिक्षा।

कीजू केरी ताड़ागी, कीजू केरो जानेऊ।
सूतरा केरी ताड़ागी, बाचा केरो जानेऊ।

विवाह :—वैदिक तथा पौराणिक संस्कृति के अनुसार मनुष्य के तीन ऋणों में से एक पितृ ऋण है। इस ऋण की पूर्ति सन्तानोत्पत्ति से की जाती है। अतः इसका साधन विवाह है। 'विवाह दो विषम लिंगी व्यक्तियों का न्यूनाधिक रूप से स्थायी सम्मिलन है जो जनमत या विधि द्वारा मान्य है।'[1] किसी न किसी रूप में दो विषम लिंगी व्यक्तियों का सम्मिलन प्रत्येक समाज में पाया जाता है। परन्तु विवाह का आदर्श प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। कुछ लोगों में विवाह अब भी जैवकीय स्तर पर है जैसे मुसलमानों में विवाह करीब-करीब जैवकीय (Biological) स्तर पर एक समझौता है।[2]

धर्मग्रन्थों के अनुसार हिन्दुओं के विवाह का आदर्श धार्मिक और सामाजिक है। हिन्दू विवाह के तीन उद्देश्य हैं। पहला स्त्रीधारा को पुरुषधारा में मिला कर उसे मुक्ति की अधिकारणी बनाना तथा दोनों की अनर्गल-अनियन्त्रित पशु-प्रवृत्तियों को नियमित कर दोनों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, इहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करना और दोनों के मधुर समन्वय से दोनों की पूर्णता सिद्ध करना एवं सांसारिक सुख-शान्ति प्राप्त करना है। विवाह का दूसरा उद्देश्य उत्तम धार्मिक सन्तान की उत्पत्ति द्वारा पितृ ऋण से उऋण होना तथा प्रजान्तु की रक्षा करना है। विवाह का तीसरा उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष के मधुर पवित्र समन्वय तथा सामंजस्य द्वारा पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य तथा शान्ति की रक्षा करना है।

भारतीय ग्रंथों में आठ प्रकार के विवाह बताए गये हैं :

'ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः
गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोधमः ॥[3]

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गंधर्व, राक्षस और पैशाच। वसिष्ठ ब्राह्म, दैव, आर्ष, गांधर्व, क्षात्र और मानुष इन छः प्रकारों को ही मानते हैं। उनका क्षात्र और मानुष राक्षस और आसुर के ही रूप हैं।

मनु ने ब्राह्मणों के लिए ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, क्षत्रियों के लिए राक्षस और वैश्यों तथा शूद्रों के लिए आसुर विवाह बताया है। कन्या

१. कैलाशनाथ शर्मा : भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थायें, पृ० १८४।
२. वही।
३. मनुस्मृति, अध्याय ३।

को वस्त्र, अलंकार आदि से सुसज्जित कर के विद्वान्, शीलवान् वर को आमंत्रित करके कन्यादान करने का नाम ब्राह्म विवाह है। 'तुम दोनों मिलकर गृहस्थ धर्म का आचरण करना।' यों कह कर विधिवत वर की पूजा करके कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह कहलाता है। इन दोनों प्रथाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दैव विवाह में वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित कन्या का दान उस यज्ञकर्ता ऋत्विक् को किया जाता है जो किसी यज्ञ क्रिया में किसी पुरोहित के कार्य को उचित ढंग से पूरा करता है। आर्ष विवाह ऋषियों से संबन्धित होता है। आसुर विवाह उसे कहते हैं जब विवाह के लिए इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छा से कन्या के कुटुम्बियों या कन्या को धन देकर विवाह करता है। इसके अनुसार कन्या का कुछ मूल्य होता है। गंधर्व विवाह कन्या और वर के परस्पर प्रेम के फलस्वरूप होता है। 'काम-सूत्र' में इस विवाह को आदर्श विवाह माना गया है। राक्षस विवाह-प्रथा से उस काल का संकेत होता है जब स्त्रियां युद्ध का पारितोषिक समझी जाती थीं। इस विवाह में विजयी विजित पक्ष के लोगों को मारकाट कर, उनका घर तोड़कर, विलाप करती हुई कन्या को उसके घर से उठा लाता है। पैशाच विवाह में निद्रित, मद्यपान से विह्वल अथवा किसी अन्य प्रकार से उन्मत्त स्त्री के साथ एकान्त में सम्बन्ध स्थापित करके ब्याह किया जाता है।[1]

प्रकार : कुल्लुई प्रदेश में ब्राह्म, गंधर्व, आसुर तथा राक्षस प्रकार के विवाहों का रिवाज है। यदाकदा पैशाच प्रकार के उदाहरण मिलते हैं, परन्तु समाज में इसे निन्दनीय ही समझा जाता है। यहां इन सब प्रकार के विवाहों के अपने नाम हैं और ये नाम भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं। हम इन्हें आठ भागों में बांट सकते हैं :—

ब्याह (क) गौरा, (ख) सीआ, बदाणी ब्याह, गाडर, परैणा अथवा झाझरा, रूती मनाई, मदखुइआ, रंडोल, सरीत और हार।

ब्याह, बदाणी, गाडर और रूती मनाई, सर्वमान्य विवाह के प्रकार हैं। ब्याह ब्राह्मण, सम्मानित खश और राजा-राणाओं का होता है। कनैतों तथा खशों के कई वर्गों में प्रचलित ऐसा विवाह जिसमें और सब अनुष्ठान तो ब्याह की तरह हों, केवल-वर (लाड़ा) सेहरा (शीरा) न डाले, उसे बदाणी कहा जाता है। कोलियों तथा अन्य अनुसूचित जातियों के विवाह को गाडर, परैणा, झाझर कहा जाता है। रूती मनाई में वर पक्ष के चार-पांच व्यक्ति वधू के घर जाते हैं और वहां से वधू को हार-श्रृंगार से सुसज्जित कर वर के घर लाते हैं।

१. श्री कैलाशनाथ शर्मा : भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थायें, पृ० १८६-१८८।

मदखुइआ तथा सरीत विवाह अनुलोम विवाह के ही रूप हैं। इन ब्याहों में ऊंची जातियों के पुरुष नीची जातियों की स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं। मदखुइया और सरीत में आनुष्ठानिक विधि-विधान का अधिक काम नहीं। स्त्री पुरुष के घर आती है और द्वार पूजा करके भीतर प्रवेश करती है। ये बहु-विवाह के ही रूप हैं। मदखुइया तथा सरीत से पूर्व एक अन्य विवाह शास्त्रीय पद्धति से हो जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में लोक गीत की यह पंक्ति स्पष्ट है:

'झुपू भाटे गौड़ा दी शोभा धुपधुपो दापीता
ब्याह देगै मूं कोरणें हेरे, तौंए आंणू सारीता।'

(झुपू ब्राह्मण के गले में चमकता हुआ हार शोभा दे रहा है। मुझे ब्याह कर लेने दे, उसके बाद तुझे ही सरीत लाऊंगा।)

सरीत विवाह के नाम पर इस प्रकार से लाई गई वधू को भी सरीत ही कहते हैं। शास्त्रीय विधान के अनुसार ब्याही गई स्त्री को लाड़ी कहा जाता है। इन शादियों से उत्पन्न संतानें अपने पिता की जाति से नीचे मानी जाती हैं और उन्हें 'सरतेरा' कहा जाता है। यह सरतेरा तीसरी या चौथी पुश्त के पश्चात् बहुधा अपने पिता की जात (जाति) को प्राप्त कर लेता है।

रंडोल विवाह विधवा विवाह को ही कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह में द्वार आदि की भी पूजा नहीं होती है। विधवा किसी पुरुष के 'घर बैठ' जाती है।

हार विवाह का ब्राह्मणेतर जातियों में काफी रिवाज है। पुरुष किसी अवि-वाहित कन्या को किसी मेले अथवा धार्मिक स्थान से अपने साथ भगा लाता है। घर पहुंच कर वे द्वार पूजा करते हैं, तत्पश्चात् कन्या चूल्हे की पूजा करती है और अन्द्रेला (वधू प्रवेश) कर वे पति-पत्नी माने जाते हैं। 'हार' विवाह किसी पूर्व विवाहित स्त्री के साथ भी हो जाता है। यदि 'हार' वधू अविवाहित हो तो कुछ समय बीत जाने पर वर और वधू, वधू के पितृगृह जाते हैं और वर कुछ धन कन्या के माता-पिता को देता है, जिसे कई स्थानों पर 'हरजा' अथवा 'वरीणा' कहते हैं। यदि वधू विवाहिता हो तो उसके पूर्वपति को नया पति रुपया-पैसा देता है जिसे 'ढेरी' कहते हैं। वह ढेरी पूर्वपति की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति और नये पति के पैसे देने की क्षमता पर निर्भर करती है, प्रायः ढेरी की रकम एक सौ से लेकर १५ सौ रुपये तक होती है। यदि ढेरी भर कर लाई गई स्त्री के पहले विवाह के बच्चे हों और उन्हें वह अपने साथ नये पति के घर ले जाए तो उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी उस नये पति की हो जाती है, पर वे बच्चे उसकी जायदाद के हिस्सेदार नहीं बन सकते हैं। बहुधा

स्त्रियां बच्चों को पहले घर ही छोड़ देती हैं :—

'शोहरू[1] शैटे नाला न मुसैणिए
शोहरू शैटे नाला न।
फुलता फूलू निन्नि भर फुलला केला
औटे ता मौर खणिए लागा आनी रामेला
उभ्भे ता तेरा शिमला बुहने[2] शेगुलु हाटी,
राज ता आऊ फरंगी रा नहीं ता शेटणो काटी।[3]

'हार' विवाह की कितनी लोकप्रियता है यह निम्नांकित पद से पता चल जाएगा, मनुष्य तो 'हार' से वधू लाते ही हैं, स्थानीय देवता तक दूसरे देवता की पत्नी का अपहरण करते दिखाए गए हैं :—

'हाट रूम्बी रूमणे चामशू नेली क्यारा।
देऊ बड़ा घोंलू, जीणें नीये बणाडो रो हारा।'

(देवता घोंलू ही बड़ा है, जिसने बणाडा देवता की पत्नी को 'हार' में प्राप्त किया।)

'हरजा' और 'वरीणा' का उल्लेख टीकी के इस गीत में भी हुआ है :—

'सात सौ दीना टीकी रा हरजा,
बारह बीआ वरीणा।
करम फुटे म्हारे टीकिए,
सात रोज नी मिलु जीणा।'

गाडर :—गाड़र में वर सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद चोगा पहनकर तथा कंधे पर अंगवस्त्र की तरह दोशाला डाल और हाथ में फरशा ले कर अपने संबंधियों के साथ वधू-गृह जाता है वहां पर पहुंच कर द्वार पर उसकी पूजा की जाती है और भीतर जाकर वह तथा वधू चूल्हे की पूजा करते हैं। वापिसी पर वर के द्वार पर पहुंचने के पश्चात् उनका स्वागत किया जाता है। एक टोंकरी में चावल या गेहूं, पानी का लोटा तथा दीपक रखा जाता है। वधू पहले इनकी पूजा करती है फिर द्वार की। फिर वर गृह में प्रवेश करती है। उसके बाद अन्दर जाकर चूल्हे और गणेश की पूजा करती है।

झाझर विवाह में गणेश की पूजा अनिवार्य है। यदि गणेश की पूजा न की जाए तो उस विवाह का नाम गाडर अथवा परैणा है।

रीत :—विवाह संबंध प्रायः अविच्छेद्य है, किन्तु 'हार' में विवाहित पत्नी

१. बालक,
२. नीचे,
३. काट कर रख देता।

ी प्रथा झाझरा, गाडर,
भी दूसरा पति चुन लेती है । साधारणतया तला ही प्रचलित है । तलाक
रूठी मनाई और बदाणी विधि से हुए विवाह संबंध और आभूषणों का मूल्य
को 'रीत' कहा जाता है। वस्तुत: रीत उन वस्त्रों ी दिये होते हैं। रीत में
होता है जो पति ने विवाह के अवसर पर पत्नी ा है। यह राशि स्त्री का
विवाह पर हुये अन्य खर्चे को भी जोड़ दिया जा
दूसरा पति पहले पति को देता है । ा चाहे और तलाक लेना

ऐसी अवस्था में, जहां स्त्री तुरन्त ब्याह न क ाथ-साथ एक रुपया भी
चाहे, वहां वह रीत की वस्तुओं को लौटाने के पति पत्नी के हाथ में एक
अपने पति को देती है, जिसे छेदकराई कहते हैं । । उसके टूटने पर तलाक
बारीक टहनी 'डिंगी' दे देता है, जिसे स्त्री तोड़ती
पूर्ण माना जाता है । दृष्टि से दो तरह के होते

ब्याह :—धर्मग्रंथों के अनुसार ब्याह अनुष्ठान ब्याह में शैव सम्प्रदाय की
हैं : गौरा ब्याह तथा सीआ (सीता) ब्याह । गौर य की । व्यवहार रूप में
अधिक छाप है और सिआ विवाह में वैष्णव सम्प्र है, जबकि सिआ ब्याह में
गौरा ब्याह में नौग्रहो (नव ग्रह) की पूजा की जा ा विवाह में केले के पौधे
केवल हवन-शान्ति । लग्न-फेरों के अवसर पर थि मंडप ही बनता है । इन
का तोरण बनाया जाता है । गौरा ब्याह में केव कोई अन्तर नहीं होता ।
छोटे-छोटे भेदों को छोड़कर दोनों ब्याहपद्धतियों ब्याहों में गीत नहीं गाए
गीत केवल ब्याह में ही गाए जाते हैं । अन्य प्रकार ी होती हैं, सर्वसाधारण
जाते । गीत गाने वालीं बहुधा स्थानीय स्त्रियां । ऐसी स्त्रियों को 'गीता
स्त्रियां इन्हें नहीं जानतीं, केवल गाने में साथ देती वधू को जो पैसा आता है,
गांदी' (गीत गाने वाली) कहा जाता है । दान में को मिलता है । यदि
उसका लगभग दसवां भाग 'दशांश' इन गीतागांदि हों तो उन्हें साथ में कुछ
ये गीत गाने वाली किसी दूसरे गांव से बुलाई ग ह्मण स्त्रियां ही होती हैं ।
और भेंट भी दी जाती है । गीत गाने वाली प्राय: ब्रा
इन ब्याह गीतों को 'लाहणे' भी कहा जाता है । है । कुछ समय पूर्व से

ब्याह संस्कार का बीजारोपण 'गुड़ देने' से होत शुभ मुहूर्त देखकर वर पक्ष
चली हुई रिश्ते की बात जब पक्की हो जाती है तो ी, लाल लुआन के कपड़े
वाले अपने पुरोहित और 'माहतो'[1] को गुड़ की व पक्ष वालों के घर भेज देते
में बांध कर तथा उसमें एक रुपया डालकर, वधू जाती है। यह गुड़ देना
हैं । इस गुड़ को स्वीकार करने पर ही सगाई समभ वधू पक्ष वाले वर पक्ष से
वाग्दान का रूप है । उसके पश्चात् ब्याह के निक

१. जो व्यक्ति नाई का कार्य करता है ।

आई गुड़ और कुछ और गुड़ खरीद गांव तथा नाते-रिश्तेदारी में माहतो के हाथ से बंटवाते हैं। इस 'गुड़ बांडने' का उद्देश्य लोगों को संबंध की सूचना देना है।

ब्याह से सप्ताह-दस दिन पूर्व विधिपूर्वक ब्याह का लग्न-मूहूर्त देखा जाता है, जिसे 'ध्याड़ा देखना' (दिन देखना) कहते हैं। ध्याड़ा देखने पर ही निमंत्रण (छांदा अथवा निउंदणा) भेजा जाता है। वर तथा वधू के मामा और वर की विवाहिता बहन को यह छांदा अवश्य जाना चाहिए। ब्याह के दिन से पहली रात 'जौगारात' (रतजगा) कहलाती है। इस दिन वर और वधू का तो व्रत होता है, पर अन्य सगे सम्बन्धी जिस घर में ब्याह हो रहा हो, वहां पर कचौड़ी हलवा आदि खाते हैं। गीत गाने वाली स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं। दिन को द्वार पर बेलें खैंची जाती हैं। 'जौगारात' तक मामा और बहन का आना अनिवार्य होता है। मामा गाजा-बाजा के साथ आता है और साथ में कई तरह की भेंट भी लाता है। उसका द्वार तक पहुंचने पर घर वाले स्वागत करते हैं। बुआ तथा बहन के आने पर भी स्वागत किया जाता है। वधू अथवा वर की माता उनकी आरती उतारती है। इस अवसर पर यह गीत गाया जाता है :—

'कसरे घर नाचणा बाजणा, कसा घरै सोड़ा बधाए।
भाई रे घरै नाचणा बाजणा, बापू रे घरै सोड़ा बधाए।
कुनियें बेदया कुनियें शादिआ, कस केरे निउदाणें आए।
बाबुए बेदेया, आंमा शादेया, भाईए निउन्दे आए।'

यह नाचना-बजाना किसके घर में हो रहा है ? किसके घर में मंगलाचार हो रहा है ? मेरे भाई के घर नाचना-बजाना हो रहा है और मेरे पिता के घर मंगलाचार हो रहा है। किसने तुम्हें बुलावा भेजा है ? मेरे माता-पिता ने बुलावा भेजा है और भाई ने निमंत्रण दिया है।

शयान स्थापना :—ब्याह के अनुष्ठान का सबसे पहला महत्त्वपूर्ण कार्य पुरोहित द्वारा शयान (कलश) स्थापना का है। शयान के पास पुरोहित आटा, चावल तथा रंगों का चक्र बनाता है। जब चक्र (चौंका) बनकर तैयार हो जाता है और पुरोहित मंत्रोच्चारण द्वारा विधिपूर्वक शयान की स्थापना करता है और दीपक जलाता है तो स्त्रियां यह गीत गाती हैं :—

बौड़े बौड़े दीआ सोगरी रात्रौ
तोंए विना घौडिए न होए।
तूता कौरे म्हारड़ै काजा।
कीजू केरौ दीएड़ा, कीजू केरी बोड़ांदी बाती ?
कीजू केरी लागांदी धारौ ?

सूने केरी दीग्राड़ेग्रा,
पाटा केरी बोड़ादी बातौ
धीऊ केरी लागांदी धारो।
कीजू केरी दिग्राड़ो ? किजू केरी बोड़ादी बाती ?
कीजू केरी लागां दी धारो ?
रूपै केरो दिग्राड़ेग्रा, रेशमा केरी बोड़ादी बाती,
दूधा केरी लागांदी धारो।
कीजू केरो दिग्राड़ो ? कीजू केरी बोड़ादी बाती ?
कीजू केरी लागांदी धारो ?
माटै केरो दिग्राड़ो, बाचा केरी बोड़ादी बाती,
तेलू केरी लागांदी धारो।'

दीपक तुम जलते रहना, तुम्हारे बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं होगा, हमारा काम कर देना। किस वस्तु का दीपक, कैसी वत्ती ग्रौर किससे वह जलता है ? सोने-चांदी तथा मिट्टी का दीपक, रेशम तथा सूत की वत्ती ग्रौर घी, दूध तथा तेल से वह जलता है।

ग्रब गीत गाने वाली पुरोहित को संबोधित करती हैं ग्रौर पुरोहित उन्हें :

'नौगरे बोसोतें पारोहिता, तूए कौरे म्हाराड़ो काजौ,
तौंए बिना घोड़िए न होए।
नौगरे बोसन्ती ग्राईयो, तोंमा ग्राजो मोंगड़ गाग्रो,
तोंमा विना घोड़िए न होए।
नौगरे बोसन्ती कौंग्रारियो, तोंमे ग्राजो कलशो ढालाइग्रौ,
तोंमा बिना घोड़िए न होए।
नौगरे बोसोते ढोलियो, तोंमे ग्राजो शोब्द बजाग्रो,
तोंमा बिना घोड़िए न होए'

नगर में बसने वाले पुरोहित, तू हमारा काम कर, तेरे बिना एक घड़ी भी काम नहीं चलता है। नगर की गाने वाली स्त्रियो, तुम मंगल गान गाग्रो। नगर की कुमारियो, तुम कलश ढलाग्रो ग्रौर बाजा बजाने वाले ढोलियो, तुम ग्रपने वाद्य यंत्रों पर 'शब्द' बजाग्रो।

विनायक पूजा :—

'पहले बेशो बानायिका देवा, सोभी देउग्रा केरो राउग्रा।
बर पुत्रा बोले, सुणो री माता, मेरे तीरथा जाणों।
गौरा पूछा रें स्वामी सदाशिव, पुत्रे तीरथा जाणों।
तू तो तीरथा ना जाए रे पुत्रा, रहे होरी के विलासै।

हरि कमलोस न रहूं रे माता, रहूं सोधा के साथे ।
गौड़े शोभा रे रुंड माला, सिरे पुष्प माला ।
पवन सुता विनायिका देउआ, सोभी देउआ केरो राउआ ।
पांजे स्थड़ी हांमें परसे आए, परसै पांजे स्थाना ।
बड़ विनायक स्थापौ देउआ, सोभी देउआ केरो राउआ ।

पहले विनायक देवता की स्थापना होगी, वह सभी देवताओं से बड़ा है । विनायक माता से कहते हैं, मां, मुझे आज्ञा दो, मैं तीर्थ स्नान कर आता हूं । माता गौरी ने सदाशिव से कहा । शिव ने उत्तर दिया, बेटा तीर्थ न जाओ, तुम वहां कुसंगति में फंस जाओगे । नहीं मां ! मैं साधु-संतों के साथ ही रहूंगा । विनायक तीर्थ यात्रा कर आया, वह पांचों स्थली और पांचों स्थानों को परस आया ।

स्यांदड़ा :—शयान के पास जब तक विवाह समाप्त नहीं होता, प्रातः सांय दोनों समय गीत गाए जाते हैं । प्रातःकाल गाए जाने वाले गीतों को "स्यांदड़ा" कहते हैं । एक स्यांदड़ा देखिए :—

'कृष्ण सुदामा बालो साथी, पढ़ो एक चितचारी
कांचन के तो महल बंड़ाए, जड़े हीरे लाल ।
सब सुत तुम भजो नन्द लाल, तुम भजो नंदलाल ।
आंउदे को पल लाँउदै वोर्षे, डौरे गोपी गुआल
बांउई किरपर धरी कै गिरीधर, तुम भजो नंदलाल ।
सब सुत तुम भजो नंदलाल, तुम भजो नंदलाल ।
विक्षण[1] को राज दीआं, अटल ध्रुर्व को राज,
प्रहलाद की प्रतीज्ञा राखी, तुम भजो नंदलाल ।'

नहलाने के गीत—शयान स्थापना के बाद वर अथवा वधू को उबटन लगाया जाता है । उबटन लगाने के बाद लाड़ा या लाड़ी को नहलाया जाता है । इस अवसर पर गाते हैं :—

'उठे देउआ ईशरा रैंणा भियांणी,
भौलै धीरै वौरौ लोड़ी,
सुहागो लोड़ी पांणी ।'

(हे ईश्वर देवता, उठ, रात खुल रही है । भले घर का वर चाहिए और सुहाग का पानी ।) नहलाने के बाद लाड़ा अथवा लाड़ी के द्वार के पास पहुंचने पर बालकों के हाथ में चावल दिये जाते हैं, वे उन्हें लाड़े या लाड़ी पर

१. विभीषण,

फेंकते हैं :—

ओड़ो मोडो भूमड़ी बोड़ो[1]
ऐसी लाड़ी पूजिया ।
माई अंबिके[2] बराड़े

भिछिया चींउरों ढुलांऊंदीओ
पहले कलशा भराऊंदी ओ ।
ओड़ो मोड़ो भूमड़ो बोड़ो
ऐऊ लाड़ैपूजिओ ।

लाड़े या लाड़ी की अक्षत द्वारा पूजा हो जाने पर वे स्वयं द्वार की पूजा करते हैं :—

'देउड़ी देउड़ी पूजेआ
गंगा के पांणी में न्हाएआ
घृते जै दीओड़े वड़ाएरा
कूंगूए पाचैउड़े मां पूजेआ,
बेला की पात्री में पूजेआ ।'
धोणिया री धूपे में पूजेआ,

देउड़ी की पूजा कर वह शयान के पास आता है और वहां उसकी पूजा करता है :—

'आओ लाड़ेआ[3], गणपात्रो पूजेआ,
आओ घृते जै दियाड़ो वड़ाएआ ।'

चलड़ेउंणा—पूजा के उपरांत विवाह के वस्त्र लाड़ा को पहनाए जाते हैं । इन्हें 'लाड़ा चलड़ेउंणा' कहा जाता है :—

'कीजू केरी सींउणा, कीजू केरो धागो ।
सूने केरी सींउणा, रेशमों केरो धागो ।
रुपेए सींउणा पाटौ धागो ।
लोहे सींउणा सूत्रों धागो ।
चैएला दसोधा न केरी ए माए
राम चैएला दसोधै ने केरी ए माए ।'

१. सेहरा ।
२. अंबिके के स्थान पर किसी अन्य देवी का नाम भी लिया जाता है ।
३. वधू के घर 'लाड़ेआ' के स्थान पर 'लाड़िए' गाया जाता है ।

वस्त्र पहनने से पूर्व लाड़ा को सुहागिन स्त्रियां तेल डालती हैं। तेल कटोरे में रखा जाता है, पहले पुरोहित वस्त्रों के समान ही उस तेल की भी पूजा करता है, फिर उसमें दूर्वा डाली जाती है। इस हरी दूब से ही तेल चढ़ाया जाता है। इस अवसर का एक गीत है :—

'मोराए मोराए मोरु गाइए, कुंणी सुहागणी तेलो पाइए ?
दादी सुहागणी तेलो पाइए, तेल का लग्न गड़ोए आ।'

माता, चाची, ताई, नानी, मामी, बहनें, और भाभियां सभी तेल चढ़ाती हैं।

तेल चढ़ाने और चलड़ेणे के साथ-साथ वर को मामा-नाना के घर से आए उपहार भेंट किये जाते हैं। इसे 'टीका' कहते हैं।

बहन भाई को पीला तिलक लगाती है। भाई अत्यन्त प्रसन्न है, बहन उसके घर विवाह में सम्मिलित होने आई है। उसकी बहन गोकुल-मथुरा में रहती है और वहां से तिलक लगाने आई है, इस भाव का प्रदर्शन इस गीत में है :—

'गोयला मथुरै भिक्षुणी ए
ते तो मेरी बैनणी आई रे
सो मूंजो पियाणा लाई रे।'
'पियाणा लाए बैनणी मेरी,
सात धोर्मा भाईआ
चौऊ ताँबू भीतरी बैनणी मेरी,
सात धोर्मा भाईआ।'

मेरी बहन, मुझे पियणा (पीला तिलक) लगा, मैं तेरा सात धर्मों का भाई हूं। चार तम्बुओं के भीतर रहने वाली मेरी बहन, मैं तेरा सात धर्मों का भाई हूं।

लाड़ा सुसज्जित होकर वधू-गृह की ओर जाने के लिए अपने घर से बाहर की ओर निकल रहा है, द्वार पर जब वह पहुंचेगा तो यह गीत गाया जाएगा :—

'आ रे कान्हा, ऊंची पारौउड़ी, सुवर्ण छोत्रो फिरे।
माउड़े रहणा खड्ग, सुवर्ण छोत्रो फिरे॥'

घरगना—द्वार से बाहर निकल कर प्रस्थान से पूर्व माता उसकी आरती उतारती है। वह द्वार की पूजा करता है, फिर सभी देवी-देवताओं को प्रणाम करता है। माता उसकी आरती आटे के बने दीपक, चावल के लड्डू और

पुष्पों के हार से उतारती है :—

'आदो[1] सुमराऊं गउरीए, नंदो ऐ तो धोरे गणपतो बेशे।
ऐतो धोरे गणपतो बेंशि कोरे, मोतिए चउको फराए।
मोतिए चउको फराई कोरे, क्वारिए कलशो ढुलाए कोरे।
क्वारिए कलशो ढुलाए कोरे, ब्राह्मण वेदो बड़ाए।
ब्राह्मण वेदो बड़ाए कोरे, आइए मांगड़ो गाए।
आइए मांगड़ो गाए कोरे, प्रोउड़ी तूरण लाए।
प्रोउड़ी तूरण लाए कोरे, पांजे शब्दो बजाए।
पांचे शब्दो बजाए कोरे, श्रीखंड आंगणो लिपाए।
श्रीखंडे आंगणे लिपाए कोरे, श्रो भाई चितरे विचित्रे।
ब्राह्मा विष्णु मेहेश्वरा देवा, श्रीखंडे आंगणो लिपाए।'

द्वार पर उतारी जाने वाली आरती को 'अरगना' कहते हैं। अरगने का यही गीत वधू के द्वार पर, विदाई पर, तथा पुनरागमन के समय वर के द्वार पर वर-वधू के स्वागत में गाया जाता है। अरगने के साथ आरती होती है और द्वार पर यह गीत गाया जाता है :—

'लग्न साँदूरोजी, लोगना गाणाए'

माता वर के पालकी पर बैठने अथवा घोड़े पर चढ़ने के पश्चात् उसके मुंह में थोड़ा-सा गुड़ डाल देती है :—

'बौड़ो बोड़ेरो तू लाड़ौ होए, माई आपणी पाए पोड़े।
बौडो बोडेरो तू लाड़ौ होए, माई अंबके पाए पोड़े।

इसी प्रकार वर को माता तथा देवी-देवताओं के पांव पड़ने को कहा जाता है और वह भी सिर झुका कर प्रणाम करता है। पुनः लाड़ा पालकी अथवा घोड़ी की ओर बढ़ता है, उस अवसर पर पालकी या घोड़े का गीत गाया जाता है। वस्तुतः यह गीत ब्याह के उपरांत वर वधू के स्वागत का है :—

'रातीए पींउड़ी ए घोड़ीए, पीउणों जै पाश्रो पाखारा।
तेथा ऊपर चढ़ी जांदो कृष्णा जी, कृष्ण मुरारी री नीली घोड़ी गाड़ाइए।
नीलो जै पाश्रो परकाल, तैथा ऊपर चढ़ी जांदो कृष्णा जी।'

बारात जब चलने लगती है, उस अवसर पर यह गीत कई स्थानों पर गाया जाता है :—

1. कहीं-कही 'हरौ हर' गाया जाता है।

'रघुपती नारायण हास्ती[१] चढ़िया, सीआ बिहाउण चलिया
आपू ते चाला सिआ बिहाउणे, पीछे रही जोधिया[२] रानी
शूने जो रहे रामा रंग तेरे महिला, शूनी रही जोधिया सारी।
आपू ते चाले रामा हाथी री शुआरी, भाई लच्छमण घोड़ा री शुआरी।

राम और लक्ष्मण हाथी और घोड़े की सवारी कर सीता ब्याहने चल पड़े। पीछे माता कौशल्या तथा सूनी अयोध्या नगरी रह गई।

वर के वधू-गृह में प्रवेश पर वधू अपने 'सोये हुए' पिता को जगाती है कि तुम्हारा जामाता द्वार पर आया है। पिता उत्तर देता है कि इतने थोड़े समय में, मेरी बेटी, मैं उसके स्वागत में अपने द्वार कैसे सजा पाऊंगा :—

सूतऔ बाबूआ ब्रिउंदड़ो होए,
जुआँई तेरो बोडो बडेरो।
खौड़ा चौढ़िए मैं कैसी परौउड़ा चढ़ाऊं मेरी बेटीए।
बाबू तेरो करिये संता आगे सोभना
सिरे नावी नावी आएगा सोभना।'

बाप अपने जामाता का द्वार पर स्वागत करता है। इस अवसर पर गाते हैं :—

'पाए केरी पदिमा गौड़े जनेऊ
सिरे केरी पागुड़ी लापाई,
सिरे केरी पागुड़ी लापाई।'

छडियर—वर वधू-गृह में प्रवेश कर लेता है। उसके उपरांत लग्न महूर्त के अनुसार गोत्राचार और लग्न-फेरे होते हैं। लग्न-फेरों को 'छडियर' भी कहते हैं। छडियर गीत इस प्रकार है :—

छापो पोत्रे पोत्रे दादूआ, दादीए, नौगरी म्हारी भरी आंणों चौउड़ौ।
किआ कौरे किआं कौरे लाड़ैआ लाड़ोए, नौगरी म्हारी भरी आंणों चौउड़ौ।'

छडियर हो जाने के बाद वधू की सिर गुंदाई होती है और उसे वर की ओर से आए सुहाग आभूषण पहनाए जाते हैं। आभूषण पहनाने का यह गीत है :—

१. हाथी,
२. कौशल्या से तात्पर्य है।

'ढीले गड़ी लाडूआ वेला समबे लूका,
माई जोगी प्रिय तैं बिछया न आंणेया।
मैं जाणें तेरो दादूए दया सी,
धर्म करावा सी, तैं न मैं आणी आं।'

इसी प्रकार वह 'प्रिय जोगी' को पूछती है, तू मेरे लिए अमुक-अमुक आभूषण क्यों नहीं लाया ? 'प्रिय जोगी' वही उत्तर देता है कि मेरा विचार था कि तुम्हारे बाबुल, दादा, भाई इत्यादि धर्म-कर्म करायेंगे और तुझे ये सारे आभूषण देते होंगे। इसी कारण मैं उन्हें नहीं लाया।

कन्यादान—इसी प्रकार धर्म की बात कन्यादान के समय के गीत में भी उठाई गई है, यहां पर वधू अपने पिता से कहती है :—

'बाहर जो निकले सकर्मा रे बापुआ, हो रही धर्मा री वेला।
कर्मा जै मेरे बापूआ, धर्मा जै तेरे, हो रही धर्मा री वेला।'

इसी प्रकार वह माता से यही कहती है कि बाहर आकर अपना सत्कर्म कीजिए, यह धर्म की बेला है। आप अपना सुकर्म करें, आपका धर्म होगा, यह तो कर्म मेरा है। पर उसे यह चिन्ता हो रही है कि आज तक मां-बाप का आश्रय था, आज उन्होंने छोड़ दिया। 'मेरे राम' अब मैं तुम्हारे हाथ में हूं :—

'शंख बजाया कुलजै पुरोहिते, इन्द्राला खबर शुनाई।
आजा तैंई बापुआ कन्या कुंआरी, आज हुई धौराई बाहरी।
आमेंबी शोटे, बापूए शोटे, आज रामा मुठड़ुए तेरे।'

वेदी गीत—वेदी घर से बाहर आंगन में होती है। सात भांवरे होती हैं और वधू के लिए दान दिया जाता है। वेदी-गीत इस प्रकार है :—

'हिमा कन्ता[1] ऋषिए घौरे बेटड़ी जरमी।
केऊ जरमी नकक्षत्रे केऊ जरमी बारे ?
दीखे जरमी नकक्षत्रे बिखे जरमी वारे।
केऊ जरमी नकक्षत्रे केऊ जरमी बारे ?
आच्छे[2] जरमी नकक्षत्रे बुधे जरमी बारे।
पारा ओरु आएगो ताता राउडौ जामाता।
छारा पोकी राउड़ै ले बेटी न देऊं।

१. हिमकूट,
२. एक अन्य पाठान्तर है 'ओधे'।

जोटाधारी राउड़ा लै बेटी न देऊं ।
डैंणी डुएलाड़ी मूं बी न लोड़ी ।
तेरी बेटी लैही जांऊ गिरी कोंबिलासे[1] ।
चोन्द्रो न बरीगो ताता नेही बोडौ काजौ ।
नितो नितो शूकांदी माउड़ी मेरी ।
सूरजा न बरीगो ताता, नहीं बोड़ौ काजौ ।
नितो निता तोपांदी माउड़ी मेरी ।
पोउंणा न बरीगो ताता, नहीं बोड़ौ काजौ ।
नितो नितो उड़ादी माउड़ी मेरी ।
पाणी न बरीगो ताता, नहीं बोड़ौ काजौ ।
नितो नितो भिभांदी माउड़ी मेरी ।
कौरे कौरे पड़मेसुरा[2] आपणो रूपा ।
तों हे देंऊ औरिगों[3] तों ही देऊँ धूपा ।
कौरे कौरे पड़मेसुरा आपणो रुपा ।
सिरा केरी अभिरंगा पाए देह लाए ।
पाये केरी पौदिमा सिरे दी लाए ।
सिरा केरे अभिरंगा सिरा दी लाए ।
पाये केरी पौदिमा पाये दी लाए ।'

(हिमालय के घर बेटी ने जन्म लिया। किस नक्षत्र में और किस वार में ? अच्छे नक्षत्र और बुधवार। मैं अपनी बेटी का विवाह इस राख खाने वाले जटाधारी के साथ नहीं कराऊंगी। मैं भी तेरी इस पुत्री के साथ विवाह नहीं करूंगा। मैं तेरी पुत्री को कैलाश पर्वत पर ले जाऊंगा। चन्द्रमा को नहीं वरते, न सूर्य को, न पवन को और न ही जल को वरते हैं। मेरी माता दुखी होगी। हे परमेश्वर, अपना वास्तविक रूप धारण कर, पांव के पद्म पांव में और सिर का अभिरंग सिर पर धारण कर।)

विदाई गीत—विदाई गीत उस समय गाए जाते हैं जब वधू अनजाने साथी के साथ अपने माता-पिता को छोड़ कर हमेशा के लिए जा रही हो। वधू की विदाई के गीत पाषाण हृदय को पिघला देते हैं। अपने चिरपरिचित आवास को छोड़कर कन्या एक अनजाने देश, अनजाने वातावरण में जा रही है। यदि वह अपने भविष्य के प्रति आशंकित है, तो माता-पिता, जिन्होंने

१. कैलाश पर्वत,
२. परमेश्वर,
३. अर्घ्य।

पाल-पोस कर उसे इतना बड़ा किया, सूनापन अनुभव करते हैं। आज उनकी बेटी उनके लिए पराई हो गई, परन्तु फिर भी धैर्य धारण कर वे कहते हैं :—

'सातू हूये सूतका, आज हूए देली का दूर, आज हूए देली का दूर।
रोए न बेटिआ, खोए न टीको सांदूर, खोए न टीको सांदूर।

बेटी, आज तक तू हमारे सुख-दुख, खुशी-गमी की सांझीदार थी, आज अब तू हमारे सूतक से भी दूर हो गई है। किन्तु बेटी, रो मत, अपने आंसुओं से अपने माथे के सिंदूर, सुहाग चिह्न, को न मिटा।

कह तो दिया, बेटी रो मत, पर अपना मन कब मानने लगा। आंखों में अश्रु भर केवल यही कहा गया, हमारे घर से रूठ कर ससुराल जाने वाली गौरी, मायके के घर को आशीष तो देती जा :—

'रूठी घौरे साउरे जाऊंदीए, मैठी घौरे आसीसा देंदीए गोउरीए।'

और बेटी सुन, जाते-जाते दरवाजे पर धान बो देना। आज से तुम्हारा अपनी सहेलियों का साथ छूटा, गुड़ियों का खेल तुमसे छूटा और छूटा प्यारे पिता का घर :—

'धानों बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटो सौंगणी केरो साथा।
धानों बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटो बेटीए गुडी केरो साथा।
धानों बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटो बेटी का बाबू केरो घौरा।

बेटी को कैसे विदा करें। वह हर काम याद आता है जिसे वह किया करती थी। विनायक को वह पूजती थी, अब उसकी पूजा कौन करेगा? पर बेटी तू विनायक से यही वरदान मांगना कि तेरा कान्त युग-युग तक जीता रहे :-

'देउड़ी पूजौ बानायिका, तेऊ नही पूजदो कोए,
तेऊ बोरा मांगे तू बेटीए, जुगे-जुगे जीवा तेरो कोन्ता।
सूने जेही ती पोतली, तेहा नहीं हंडीबांदौ कोए,
तेऊ बोरा मांगे तू बेंटिए, जुगे-जुगे जीवा तेरा कोन्ता।
मांझी सासुंद्रे कैमाटी, तेआ नहीं उचदौ कोए,
तेऊ बोरा मांगे तू बेटीए, जुगे-जुगे जीवा तेरा कोन्ता।
'ऐ बदाउंणे आ, ओ बदाउंणे आ।
घिरी फिरी ऐतो घौरे आए।

माता से तो विदाई ले ली, पर अभी पिता से भी तो विदाई लेनी है। अन्य संबंधी भी तो हैं। पति कहता है, शीघ्र विदाई लो :—

'उड़ उड़ कूंजरिए देश बेगानिए'

पर कैसे उड़ जाऊं साइंया, स्वामी, अभी न दादा मिले हैं, न बापू, न चाचा और न ही मेरा बीरण ।

किश्रा कोरी मैं उड़ू मेरे साइंया, मेरे दादू भी न मीलए ।
उड़े उड़े कूंजरिए देश बेगानिए ।'

कन्या पिता से आज्ञा लेने आती है :-

हुकमा दे मेरेआ बापूआ, दूर मेरे शाउरीए[1] जाना ।
दस जे महीने बहारी उदरे, आज किआ हुकम तू मांगे ।
जाणा ले ता ब्जाए मेरी धीउड़िए[2] झींणा न म्हारे दर्दा छाड़े ।
झींणा न छाड़दी बापूआ दर्दा, बेणा लागा शुणन बगैंना ।'

पिता आज्ञा दो, मुझे दूर ससुराल जाना है । बेटी कैसी आज्ञा मांगती है, देख तेरी माता ने तुझे दस महीने तक उदर में उठाए रखा । अच्छा, जाना है तो जाओ, पर बेटी, हमारी स्मृति न भूल जाना । पिता, आपकी स्मृति कैसे भूल सकती हूं, आपका दर्द नहीं छोड़ सकती, पर अभी मजबूरी है, बेगानों का कहना अब मुझे मानना पड़ेगा ।

मार्ग में पति पूछता है, तेरे पिता ने तुझे दान में क्या दिया ? उत्तर मिला, पिता ने दान में फटी थाली दी, जिसमें भोजन भी नहीं किया जा सकता ।

'लाड़ौ पूछा लाड़ी का, का देणों बापू तेरे दाना ।
फूटो देंणों थालटू, तेथा भीता खाइआ न खाणा ।'

वधू का यह उत्तर अत्यन्त आश्चर्यजनक है । अभी-अभी वह पिता को झींण का आश्वासन दे कर आई है, पर मुख मोड़ते ही उसे अपने नये घर की चिन्ता हो जाती है । वह चाहती है कि उसका बाप उसे इतना कुछ देता जिससे घर भर जाता । जो कुछ पिता ने उसे दिया वह उससे संतुष्ट नहीं है, अतः कहती है कि केवल फटी थाली ही दी ।

जब वे वर-गृह में आते हैं तो माता पुत्र से पूछती है :-

'धूमादौं वामादौ आओ आजा, शाशुईए तेरी ए क्या माना कीओ ।
शाशुईए मेरीए आनणीं झींझणी दीनी, सोए माना कीओ आजा ।
वूमादौ वामादौ आओ आजा, शेउरे तेरे क्या माना कीओ ।
शेउरे मेरेए खाडू काटे वाकरे, सोए माना कीओ आजा ।

१. ससुराल
२. बेटी

घूमादी धामदी आओ आजा, साड़ तेरेए क्या माना कीओ ।
साड़ मेरेए जूंए खेले पाशे, सोए माना कीओ आजा ।

(तुम्हारी सास ने तुम्हारा कितना आदर किया ? मेरी सास ने मेरे लिए 'झींझणी' चावल का भात पकाया । तुम्हारे ससुर ने कैसा सत्कार किया ? उन्होंने मेरे लिए खाडू बकरे (मेंढा और बकरा) काटा । तुम्हारे साला ने तुम्हें कितना मान दिया ? वह मेरे साथ जूआ-पाशा खेलता रहा ।)

सीठणी : जब विवाह में बारात को भोजन खिलाया जाता है, तब कतिपय गाने गाए जाते हैं, ये अधिकतर गालियां ही होती हैं । इन्हें सीठणीं कहा जाता है । सीठणियां व्यंग्यपूर्ण तो होती ही हैं, कभी-कभी अश्लील भी होती हैं ।

(२) त्यौहार, पर्व, व्रत और देवी-देवताओं के गीत

माँगलिक गीतों के उपरांत त्यौहारों, पर्व, व्रत और देवी-देवताओं से संबंधित धार्मिक गीतों का स्थान है । कुल्लुई प्रदेश में हिन्दू धर्म के प्रमुख त्यौहार और पर्व ही मनाए जाते हैं । इन पर गाए जाने वाले गीत स्त्री-पुरुष दोनों के हैं । इस प्रदेश का सबसे बड़ा त्यौहार 'शवात्र' (शिवरात्रि) है ।

शिवरात्रि—शिवरात्रि के दिन प्रायः सब नर-नारी व्रत रखते हैं । दिन में शिव मन्दिर जाकर पूजा करते हैं और संध्या को घर पर ही बनाए 'महादेउ' की । यह महादेउ जौ के पौधों, बेलपत्र, 'उजरजोटी'[1] और पाजा[2] की पत्तियों का बनाया जाता है । ऊपर से इसमें केमटू[3] का फल अथवा पत्तियां गूंथी जाती हैं । इस दिन नाना प्रकार के व्यंजन पकाए जाते हैं जिनमें कचौड़ियां, बड़े, चावल के पापड़ अनिवार्य हैं । अनेक स्थानों पर खाडू-बकरे काटे जाते हैं । महादेउ के लिये तेल में बने आटे के हाथी, बकरे, मेढे आदि पकाए जाते हैं । इस त्यौहार का सबसे आवश्यक अंग, बहनों, बेटियों और उनके बच्चों के लिए पके हुये बड़े, पोल्डू (कचौरियां), और शाकुई (चावल के पापड़) भेजना है । दूसरे दिन ये चीजें किल्टे[4], छाबड़ी में भर कर दूर-दूर इन जाइयों[5] को भेजी जाती हैं ।

महादेउ की पूजा के बाद सारी रात नृत्य और संगीत चलता है । इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को 'महादेउ की आंचड़ी' कहा जाता है ।

१. नीले रंग के फूल का नाम,
२. एक वृक्ष का नाम,
३. खट्टा,
४. पीठ पर उठाई जाने वाली बाल्टी की तरह एक टोकरी,
५. बहनें तथा पुत्रियां ।

उदाहरण के लिये :-

'महादेऊ नौगरी चालौ मांगदी,
हाथै पाश्रो गोरखा शोटू ।
पैरा दी लाए खड़ाश्रों ।
पीठी पाई मांगणें ए झोड़ी ।
मूंहा लाश्रौ छारू[1] श्रारो टीको ।
घौरे घौरे श्रलख जगाउश्रो ।
महादेऊ श्रौजौबी न श्राश्रो ।
घौरे घौरे पाकी रासोई ।
श्रोड़ो ध्याड़ो छेंई डेउई पारे ।
लोगूए हुड़े द्वारा ला ।
गोर्जा लाड़ी तोंगे हाँडा तोडुए,
महादेऊ श्रौजौवी न श्राश्रो ।

(महादेव नगरी में भिक्षा मांगने चल पड़े, हाथ में गोरख लाठी, पैर में खड़ाश्रों, पीठ में भिक्षा मांगने का थैला श्रौर मुंह पर राख लपेटे हुए । घर-घर जाकर श्रलख जगाई, सूर्यास्त हो गया, महादेव लौटे नहीं, श्रन्य लोगों के घरों पर रसोई पक कर तैयार भी हो गई । गिरिजा-महादेव के घर तो तभी रसोई बन पाएगी, जब शिव भिक्षा की वस्तुएं लाएंगे । सूर्यास्त हो गया, लोगों ने श्रपने दरवाजे बंद कर दिये, इधर गिरिजा श्रपने मकान के तोंग[2] में इधर-उधर चक्कर काट रही है, पर महादेव श्रभी तक नहीं लौटे ।

इसी प्रकार एक श्रन्य श्रांचड़ी में शिवजी पार्वती को लेकर किसी के घर शिवरात्रि के त्यौहार में सम्मिलित होने जा रहे हैं । मार्ग शायद काफी लम्बा था । गिरिजा को प्यास लगती है, उनके पांव में छाले पड़ गये हैं, वे कहती हैं कि मुझे कहां ले जा रहे हैं ? न मेरे पैर में जूता है श्रौर न ही मार्ग में कहीं जल दिखाई देता है । यह गीत देखिए :-

'भोड़े ईशरा तैं एत कीले श्रांणी ।
रौडे पोलड़ी न बातड पाणीं ।'

भोले शिव भी उसे धैर्य बंधाते हुए कहते हैं :-

१. राख ।
२. मकान का दूसरी या तीसरी मंजिल का बरामदा ।

'देखे गौरजे तू मेरो तमासो, खाडू बाकरे ओ पांऊ खड्गासो ।
ईश्वर बोला जै गौरजा हासा, खाडू बाकरे ओ पांऊ खड़गासा ।'

शिव गिरिजा को कहते हैं कि तू मेरा खेल देखती जा, जहाँ भी हम जाएगें, वहां खाडू बकरों को कटवा-कटवा कर ढेर लगवा दूंगा । ईश्वर के इन वचनों को सुनकर गिरिजा हंसती हैं ।

इसी प्रकार इन गीतों में पाउणा[1] आने का निमंत्रण दिया जाता है । कहीं वे बैल की सवारी पर हाथ में डमरू लेकर न्यौतने जाते हैं । लेकिन किसी अन्य गीत में वे अत्यन्त साधारण तथा भोले मानव के रूप में आते हैं । गिरिजा को तमाशा दिखाने के लिए साथ घसीट लाते हैं पर जब स्वयं पांऊणा बन जाते हैं तो बेचारी पार्वती के अस्तित्व को ही भूल जाते हैं । कभी वे सारी रात नाच में ही बिता देते हैं । किसी आंचड़ी में सेंई राजा (स्वामी राजा शिव) को बड़ा भुलक्कड़ स्वभाव का बताया गया है, वह अपनी पगड़ी रखता तो अन्दर है पर उसे ढूंढता बाहर है । कहीं वह निर्धन के यहां पाउणा बनकर पहुंच जाता है, जहां मंडप बनाने के लिये चावल के स्थान पर 'कांउणी' का उपयोग किया जाता है और दीपक के लिए जोखटी[2] काम में लाई जाती है । कभी वह किसी रणसी वीर जैसे धनी और अभिमानी के यहां पाउणा बनकर जाता है और उसके मान का मर्दन करता है । पर साथ ही उसकी भक्ति और त्याग देख उसे वरदान भी देता है ।

जन्माष्टमी—जन्माष्टमी का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । सभी स्त्रियां और पुरुष इस दिन व्रत रखते हैं और आधी रात के पश्चात् कृष्ण जन्म की कथा सुनकर फलाहार करते हैं । दिन को 'रवैंइश'[3] की कथा होती है । सगे-संबंधियों के घरों में जाकर फल बांटे जाते हैं । कई स्थानों पर इस त्यौहार को "गुड़ व्रत" भी कहते हैं । इस अवसर पर कृष्ण के जन्म तथा उनके प्रणय संबंधी कई गीत गाए जाने का प्रचलन है । सूर कृष्ण के बाल जीवन के गीत गाकर संतुष्ट हुए, महाभारतकार श्री कृष्ण की राजनीतिक महानता से प्रभावित हुए, हमारे कुल्लुई प्रदेश के लोकगीतकार श्री कृष्ण के जन्म तथा उनकी प्रणय-लीला पर मुग्ध हो उठे ।

कृष्ण के जन्म पर आकाश में घटाटोप बादल छाए थे, सारी 'गैंण घोसटा घोर' थी, बिजली चमक रही थी, चतुर सुहाई (देवकी की सेवा करने वाली धाय) और चतुर सिपाही सभी निद्रामग्न थे :—

१. अतिथि,
२. चील की पतली लकड़ी,
३. हरिवंश।

'देवी जेबी ता जोमो कान्हा बाड़ो देवता, गैंणा रहियो घोमटा घोरा।
गैंणा बीता रहिए घोमटा घोरा, बिजड़ीए मारी चमकीरा।
चतुर सुहाई चतुरा सिपाई, सब कोई निन्द्रीए भूले।'

देवकी अपने पति वासुदेव को जगाकर कहती है, बेटे के दर्शन कर लीजिए, ऐसा बेटा किसी के भी नहीं जन्मा। स्वयं भगवान् ने जन्म लिया है। वसु, आप भोले बावरे तो नहीं ? क्या आपको नींद ने खा (घेर) रखा है ? नहीं देवकी, मैं भोला बावरा नहीं हूं और न ही मुझे नींद ने घेर रखा है :—

'बोले रे मोहुआ, बेटेआ दो दर्शणा लैई।
ऐसा बेटा कभी न जन्मा, बेटो जोमो आपू भगवान।
कैंता रे बसुआ भौड़ो बावरो, कैंता बोला निद्राए खाओ।
नहींआ गे मोरे हे भोड़ो बावरो,नहीं हे मोरे निद्राए खाओ।
हरी भी कमाइये, बाड़ो जोमो बेटो, हरी बाधाये पावो।'

उधर राजा कंस रात को स्वप्न देखता है, वह देखता है कि उसके सारे दाँत टूट रहे हैं, बहने वाला पानी सूख रहा है। इसी बीच रात खुल गई और कंस चौंक कर उठ बैठा। जागने पर उसे स्वप्न की बातें सत्य ही दिखाई दीं। एक लोक-गीतकार ने कंस की मृत्यु की एक नई ही कल्पना की। उसने अपने गीत में लिखा—कंस हाथ में चांदी का खड्ग लेकर जल के स्रोत के पास पहुंचा, देखता है, जल सचमुच सूख गया है। अपने खड्ग से वह जल स्रोत को खोदता है। पहली बार खोदने पर जल निकलने लगा, पुनः खोदा तो रक्त बहने लगा। तीसरी बार बड़े जोर से जल की धारा बहने लगी। आकाश में सोलह सौ गोपियां इस दृश्य को देख रही थीं। राजा कंस के सिर पर काला भंवरा मंडरा रहा था, राजा ने उसे मारने के लिए वार किया पर अपने आप को ही मार डाला:—

'सौरगे हेरा राजा कांसिआ जेनू सोड़ा सौ गोपी।
मूंडा गाही राजा कांसिआ काड़ो भौरा रींगा।
सुड़टी डांगरी राजा कासिआ, उड़टी फेरउए।'

इस प्रकार लोक कवि ने देवकी और वसुदेव को कंस द्वारा दिये गये दुःखों की सजा उसे उसके अपने ही हाथों से दिलवा दी।

कृष्ण के गोकुल में नंद के घर पहुंचने पर भगवान शिव उनके दर्शन को आते हैं, इस प्रसंग का वर्णन भी लोक कवि ने बड़ा रोचक किया है। फिर श्री कृष्ण के यौवन के खेल चलते हैं, कहीं उन्होंने छल से शिव के मन्दिर में छिपकर, राजा मेहरी वाकर को अपने पांव के नीचे छिपा लिया और स्वयं

रुक्मिणी से विवाह कर लिया जबकि मेहरी बांकर उससे विवाह कराने आ रहा था। किसी गीत में रुक्मिणी द्वारा ताना देने पर पुनः छल से चन्दाराउड़ी (चन्द्रावली) के साथ विवाह करने के प्रसंग को काव्य की सरस कारा में बांधा। कृष्ण के ये गीत छाड़ी गीतों के अन्तर्गत आते हैं। श्री कृष्ण चन्द्रावली की खोज में घर से चले हैं, रास्ते में ग्वाले उन्हें जिस रूप में देखते हैं और बाद में वह केवट से नदी पार कराने के लिये जैसे प्रार्थना करते हैं, इसका सुंदर चित्रण इस गीत में हुआ है:—

'कन्हैया कीआ छेउड़ीरा रूप हो भाई, पार धारै नोखी छेउड़ी आई ओ भाई।
बणों रे गवालटूए लाईं शाई ओ भाई, धुंडु मुंडुए चादरा हेरे पाई, ओ भाई।
काने लाई मुन्दरै री जोड़ी, पैरे लाई पोलुड़ी री जोड़ी, ओ भाई।
गुंठी लाई सनागणी री जोड़ी, दूधू लाई पोंणा कटोरी, ओ भाई।
कौने कीआ छेउड़ीरा रूपा, गवालटू पूजा गुगला धूपा, ओ भाई।

अब ग्वालों ने तो सारे मुंह पर चादर ओढ़ें, कानों में मुन्दरायें पहने, पांवों में जूते पहने और स्तनों पर पवन कटोरी लगाये, कन्हैया रूपी नारी को देख लिया। अब उसका केवटों से वार्तालाप सुनिये:—

'तोंमा लैता बोलूगो तारुआ भाइया, मूंबी देआ पार टपावी जी हां।
आज कीता रोहा तोमें म्हारी एहा नौगरी, कालै देंमे पार टपावी जी हां।
मेरे न रोहिआ थारी एहा नौगरी, थारी आ दरैयणी बूरी, जी हाँ।
म्हारी बी दरैयणी पेउकले नाहीं नी, बौरषा छमाही ओ फेरो, जी हाँ।'

जब तारू (केवट मांझी) भाई से नदी पार उतारने की प्रार्थना की गई तो उत्तर मिला कि आज की रात हमारी नगरी में रुक जाओ, कल तुम्हें पार उतार देंगे। तुम्हारी नगरी में तो रात बिता नहीं सकती, तुम्हारी पत्नियां कटु स्वभाव की हैं। उसकी तुम चिन्ता न करो, हमारी पत्नियां तो मायके गई हैं। तारु पहचान न सके कि यह कन्हैया है और उसे रात वहां बिताने के लिए बाध्य करते रहे, पर कृष्ण उन्हें थप्पड़ मारकर स्वयं ही नदी पार कर गये। तब केवट को होश आया और कहने लगे कि हमें क्या पता था कि तुम 'कानावाड़ा देउता' हो:—

'मार थापेड़े तेऊ तारुए मूंडा दी, आपू टौपौ कान्हणू पार, जी हां।
म्हारे न जाणों तू कानाबाड़ौ देउतौ, तोंवी देंदे सींधी टपावी, जी हां।

रामायण प्रसंग—रामायण के अनेक रोचक आख्यानों का भी लोक कवि ने अपने गीतों में उपयोग किया है। इस सम्बन्ध में उसकी पैनी दृष्टि उन प्रसंगों की ओर गई है, जो मार्मिक हों, राम वनवास, सीता हरण, चित्रकूट में राम और सीता का घरेलू जीवन अनेकों लोक गीतों के विषय हैं।

राम बनवास की कुछ मार्मिक पंक्तियां एक लोक कवि ने इस प्रकार चित्रित की हैं:—

'रामा गेणों चन्द्रमा जोदया रे ठाए
गुरु गेणों वाशिष्टा लाखण भाए
सीता गेणों भारतज, राजा जनकारे जाए,
राणी गेणें केउके जिएं बांडे बंडाए।
फूली करा फूलडू फूली करा बरासा
राज देणों भरत लै, रामा के देणों बनवासा
माता रोग्रा कोशाला गुग्राते गुणा
राम डेऊ बनवास के मूंबी धाचदग्रा कुंणा।
गुरु रोग्रा वाशिष्टा, दशरथ पिता,
भाई रोग्रा लाखणा, जोरु रोग्रा सीता।'

सीता-हरण के पश्चात् राम-विलाप का दृश्य इस गीत में प्रस्तुत है:—

'सीता लै सुपनौ मिलौ, सीता लै सुपनौ मिलौ,
सिग्रा डेई रामों रे हारौ, सिग्रा डेई रामों रे हारौ।
राम जी लागौ ला रुंदा, ऐ वै जऊला कुंदा
भाई ग्रा जौतीग्रा बोलू, केरखै सीतला डेई
बोली जौतिया हेरी बताई, सीतला गोई पाणी कै जाई
रामजी दीता तौई पूछणा लाई
जौतिए बोलौ मौंएं नी तेरी सीतला जाणी।'

सीए छाड़ी—'सींए छाड़ी' में सीता को चित्रकूट ग्रावास के दिनों में राम प्रातः काल जल भरने भेज देते हैं। एक दिन राम ग्राधी रात को नींद में खर्राटे भरने लगे जिससे सीता जाग गई। सीता डरती हुई पानी भरने चली गई किन्तु वहां पहुंचकर देखती है कि एक सोने का मृग खेल रहा है। सीता उसे देखती रही। देखने में ऐसी तल्लीन हो गई कि उसे पानी भरने की भी सुध न रही। इस प्रकार दिन काफी चढ़ ग्राया। रोष में भरी सीता कुटिया पर लौटती है ग्रौर राम से कहती है, तुम्हारे धनुष-बाण को मैं जला दूंगी। बावली के पास सोने का एक मृग है, उसे मार लाइए। राम समझाते हैं, सीते, सोने का मृग नहीं होता, वह तो राम का ग्रह है:—

'झूरा गे मूरी ए रैणा भियाई
ग्रोधी ए राची रामे लाई धारूरा
उजूगे सीय गांगो पाणी ग्रा दूरा
खोई के कुखड़ू काग्री वाशुग्री मोरा

उजूगे सीय दूई उजिया ओरा
खोई के कुखड़ू काओ बाशुओ आंणी
उजूगे राणीए आणें गांगो पाणी
जैंणे गो बोला सीया देहुए राणी
आज गो रामा दौशा तौले के आई
ओरी गो बेरा सूतैंन भियावैं
आज गो लाई पाशड़ी बाबूरा
अजूगे सीय गांगौ पाणी आ दूरा
चेलू छुए पाणी सिरा बी न न्हाओ
उजूगे सीय भीतरे भाडारे
नाहे गे सीय भीतर भाडारे
तेथा का काडो हारा शृंगारा
पिंडा दी भीड़ी कांचुआ री चोड़ी
बाही दी लाई चूड़ी मांड़ेडो
सिरा दी लाई सूनेए माताला
पैरा दी लाए रुपिये पियाला
लोड़नी लाई रांगाली कीडी
मौना दी सूंचा सीआ देउए राणी
कै पौरी नीऊ ए माटा केरी धौड़ी
लोगू जे मूंली बोली का मारी कुम्हारी
जै पोरी नीऊ एआ लोहे धडोली
लोगू जे मूले बोले लुहारी
जै पौरी नीऊ एआ पीतड़े घड़ोली
लोगू जें मूले बोलो ठठारी
जै पोरी नीऊ एआ चांदी केरी घड़ोली
लोगू जे मूले बोला सानारी
जै पोरी नींऊ एआ सूने केरी भाभरी
तै पोर ीबोले जो सीआ देउए राणी
चालादी हुई सो सीआ देउए राणी
बैंणा जो बोला सीआ देउए राणी
कोई[1] आ काड़ैतौ[2] कोई मूले ध्वाड़ी

१. कुंडी,
२. पहरेदार,

बैंणा बोला कोईआ कड़ैता
ओधी ओ राचीए कोई देउए न खूला
मूले जो लागा गो रामा रा दारोहा[1]
सीआ गो राणी ऐ बौड़ो बचारा
जै पोरी होंऊ मूं ए झूठी कुटी
कोई गौ मूलै कौदिए न खूला
जै पोरी होंऊ मूं सौतिआरा सीआ
कोई गौ मूले आपी धवाड़ूई[2]
मौना दी सूंचा सीआ देउए राणी
जै पोरी नामूं पाछीए बातै
पाछी बातै रीछा खाओ बराधा
जै परी नामूं आगीए बाता
आगी ए बातै आलौ खाओ मशाणा[3]
मौना दी सूंचा सीआ देउए राणी
मूं ता गौं नाणों पाछीए बातै
पाछीऐ बातै खाई कोरो बराधा
नाही ता गेई सो बाई केरे नौणें
नाही ता गेई सो सीआ देउए राणी
बाईऐ नौंणे सूनेरो मृगा
सीआ ओ राणी तेउए खैलै पौड़ी
खौरे दापौहरे, पोहरे हुए कालेवड़ा[4]
धौरा के पौखा[5] रोषीआ रामा
सीआ गे राणी ओजो बी ना आई
रोषा मारीआ धौरा लै आई
रोषा गो मारीआ बाणी न कौरा
दौंहू तेरी धौंणवीं दौहूं पांजे बाणा
बाईए नौंणे सूने रो मृगा
नें ही गे राणी ए सौ सुनेओ मारिगा
जै पोरी होआ सै रामा रे गारोहा।'

१. द्रोह,
२. खुलना।
३. भूत,
४. मध्याह्न,
५. प्रतीक्षा।

घरमाड़ी—मकर संक्रांति एक अन्य पर्व है, जिसे इस प्रदेश के कई स्थानों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। रात्रि के अन्तिम पहर में कुटुम्ब के सब सदस्य नहा-धो कर तैयार हो जाते हैं और ग्राम में प्रत्येक उस संबंधी को जो आयु में बड़ा हो, उसके घर जाकर प्रणाम किया जाता है। इस प्रकार प्रात:काल एक दूसरे के घर आवागमन होता रहता है। बालकों, ब्राह्मणों तथा मांगने वालों को 'खिचड़ी' (चावल और उड़द), तिल के लड्डू तथा दक्षिणा स्वरूप आना-दो आना दिये जाते हैं। प्रथा यह है कि बूढ़ा हो या बच्चा, मत्था टेकने के उपरांत उसे 'दक्षिणा' जरूर लेनी पड़ती है। घर पर 'पाजा' वृक्ष की पत्तियों, जौ तथा धूप आदि से हवन किया जाता है। स्थानीय मन्दिर में भी ग्राम देवता या कुलदेवता को प्रणाम करने प्राय: सभी पुरुष जाते हैं। वहां पर देव-स्तुति में गाए जाने वाले गीत को 'घरमाड़ी' कहते हैं। उदाहरण के लिए :—

'अमृत कलश भोरी लेई आई अम्बिका माई
पहली बसत माता तूई प्रसीनी
जोए बर देए मात सोए बर लीने
अरू रे अरू रे भाई अमृत कलश भोरी लेई आई।'

वस्तुत: इन घरमाड़ी गीतों में देवी-देवताओं की स्तुतियों का ही वर्णन होता है।

भेंटें—देव मन्दिरों, विशेषत: देवी के मन्दिरों में स्त्रियां जब भी जाती हैं, प्राय: गीत गाती हैं, जिन्हें भेंटें कहते हैं। ये 'भेंटें' देवी दुर्गा, अंबिका अथवा शक्ति से ही सम्बन्धित हैं। यहां ज्वाला माई की एक भेंटा उदाहरण स्वरूप दी जाती है :—

'शक्ति तेरो अन्त किन्हें नहीं पाया
हे ज्वाले तेरो अन्त किन्हें नहीं पाया
अन्त लेणे को अकबर आया, मन में मथन मथाया
मन में मथन मथाया रे पाणी नेहर काट के लाया
नेहर काट के लाया रे पाणी सूरज कुंड में पाया
सूरज कुंड में पाया रे पाणी तेरे भवन पर छाया
तवे फोड़ कर निकसी ज्वाला, अकबर बादशाह सचाया
शक्ति तेरो अन्त किन्हें न पाया।
जय जय माता अम्बिके माई, जय जय आद कुंआरी
तेरे भौंण पर जंग मचाया खड्ग और तरवारी
सिंह रण में गाहे ज्वाला, हो रही मारा मारी

ओ शक्ति तेरो अन्त किन्हें नहीं पाया।
भरिये समुन्दर लड़के हो गए साहुकार के पार
बेड़ा उनका डूबण लागा हो रही हाहाकार
बेड़े ऊपर चढ़ी ज्वाला कर दियो बेड़ा पार
ओ शक्ति तेरो अन्त किन्हें नहीं पाया।'

नृत्यगीत —नाटारंभ :—छाड़ी अथवा नाटारंभ धार्मिक नृत्यों के साथ भजन भी गाए जाते हैं। नाटारंभ के साथ तो केवलमात्र भजन ही गाए जाते हैं, बहुधा ये भजन कबीर, सूर और तुलसीदास के हैं। कबीर के निम्नलिखित भजन के साथ नाटारंभ का नर्तक घंटों नाचता रहता है :—

'दो दुख गोबिन्द मेट ले मेरो
अग्नि दहन और गर्भ बसेरो
दो दुख गोबिन्द मेट ले मेरो
आ देही बन सत बहु मेरा
एक घटत एक हुई जल भारा।
आवागमन का मेटूंगी डोरा
तुमरो खेल मरण भयो मोरा
दो दुख गोबिन्द मेट ले मेरो
लाख चौरासी- जन्म भरमे आए
सकली प्रिय सुख कहीं भी न पायो
दो दुख गोबिन्द मेट लो मेरो।
कहतो कबीर प्रभु आंयो विचारे
अब मोरी आई गमन की बारी
दो दुख गोविन्द मेट ले मेरो।'

फलालू :—फाल्गुन मास में वसन्त ऋतु के स्वागत में हेसी और बेडे गांव के प्रत्येक घर के द्वार पर जाकर सरनैं[1] और ढोलक बजाते हैं। साथ में हेसण अथवा बेंडण नाचती है। वस्तुतः फलालू ऋतुगीत है, किन्तु नृत्य का साहचर्य होने के कारण हमें इसे नृत्य गीत की संज्ञा देने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। फलालू गीत में वसन्त में खिलने वाले नाना प्रकार के पुष्पों का ब्यौरा दिया जाता है और पुष्प को समाज के विभिन्न जातियों से सम्बन्धित किया जाता है। वृक्षों की गिनती होती है और एक वृक्ष यदि ब्राह्मण माना जाता है तो दूसरा सुनार :—

१. शहनाई,

हे फूला केरे फुलालुआ
रे पीपड़ा केरो फुलालुआ
जाती रो पीपड़ा होन्दो भाटा[1] रे ज़ाता[2]
फूला दाड़ी लागी आ
बोड़ा[3] केरे फुलालुआ
जाती रो बोड़ा होन्दी गारी भाटा
फूला दाड़ी लागी आ
पाजे केरे फुलालुआ
पाजो होन्दो पजैरी रो जाता
फूला दाड़ी लागी आ
भुमण केरे आ फूलालुआ
जाती रो भूमणों होंदा खाशो रे जाता
फूला दाड़ी लागी आ।
असरी केरी आ फुलालुआ
असरी हौआ सनारे री जाता
फूला दाड़ी लागी आ।
पींणा केरी आ फुलालुआ
पींणा होंन्दी चमारा री जाती
फूला दाड़ी लागी आ

नाटी गीत—कुल्लुई मानव को नृत्य सदैव बड़ा ही प्यारा रहा है। उस के भावों ने सर्वप्रथम गीत द्वारा अभिव्यक्ति पायी या नृत्य द्वारा, यह कहना कठिन है। निश्चित रूप से केवल यही कहा जा सकता है कि यहां गीत और नृत्य का चोलीदामन का साथ है। दोनों आदि काल से चले आ रहे हैं और मानवजीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। आदि मानव की लोक नृत्य और लोक गीत प्रधान अभिव्यक्तियां रही हैं। गीत में संगीत भाव प्रधान शाब्दिक अभिव्यक्ति का रूप धारण करता है और नृत्य में भावनाएं अभिव्यक्ति के हेतु आंगिक मुद्राओं के रूप में प्रकट होती हैं। गीत, संगीत और नृत्य, ये तीनों लोक मानस की पूरक अभिव्यक्तियां हैं। तीनों ही एक दूसरे से पृथक् नहीं की जा सकतीं। जहां हर्षोल्लास का सामूहिक रूप प्रकट होता है, वहां तीनों ही संयुक्त होकर व्यक्त होती हैं। लोक मानस की इस प्रकार की त्रिधाभिव्यक्ति हमें पूर्णरूपेण ऐसे गीतों में मिलती है जो नाटी नृत्यों के साथ गाए जाते हैं। यद्यपि इन गीतों का नाम उनके कथानक

१. ब्राह्मण,
२. जाति,
३. वट वृक्ष।

के मुख्य पात्र के नाम पर पृथक्-पृथक् होता है, किन्तु सुविधा के लिए हम इन समस्त गीतों को नाटी गीत कह सकते हैं। कुल्लुई लोक साहित्य का एक बड़ा अंग इन्हीं नाटी गीतों का है। आज तक संभवतः लाखों नहीं तो हजारों गीत बने और काल का ग्रास बन गये, उनकी ही लय पर फिर नये गीतों की रचना हुई। इस प्रकार यह बनने और बिगड़ने का क्रम न जाने कितनी सहस्राब्दियों से चला आ रहा है। साधारणतया नाटी गीत अधिक से अधिक १०-१५ वर्ष तक ही चल पाते हैं। केवल थोड़े ही ऐसे नाटी गीत हैं, जो अपनी भाव गूढ़ता, लय माधुर्य अथवा छाड़ी आदि गीतों से सम्मिलित होने के कारण एक प्रकार से स्थायित्व प्राप्त कर पाए हैं।

नाटी गीतों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी ऐतिहासिकता, कथात्मकता तथा घटना-प्रधानता है। एक अन्य विशेषता यह है कि इनमें आए मुख्य अथवा गौण पात्रों और स्थानों के नाम थोड़ी दूरी पर बदल जाते हैं और वहां की स्थानीयता का चोला धारण कर लेते हैं। कई गीतों में यह भी देखा गया है कि यदि कथा के किसी अंश को किसी एक स्थान पर प्रधानता दी गई है तो किसी दूसरे अंश को किसी दूसरे स्थान पर प्रधानता मिली है। उदाहरण के लिए कुल्लू में 'बैनेओ भूंडो' नामक नाटी गीत में भागदेउ पुरोहित की बलि को गीत का आधार बनाया गया है। कोटगढ़ और कुम्हारसेन में 'तहसीलदार की गुलाबो' इस गीत की नायिका है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाटी गीत असंख्य हैं, उदाहरण के लिए चुनाव करना कठिन है, प्रत्येक गीत अपने आप में महत्त्व-पूर्ण तथा मार्मिक है। यहां समूचे कुल्लुई लोक-साहित्य क्षेत्र में प्रचलित नाटी गीतों के एक-दो उदाहरण देखिए :—

भोड़ाराम :—कुल्लू की कंडी कोठी का नेगी भोड़ाराम माता-पिता के हजार समझाने पर भी एक वेश्या से विवाह कर बैठा। घर पर सती-साध्वी पत्नी पहले से थी, उधर वेश्या से एक रेंजर (वन-अधिकारी, वजीर) भी प्रेम करता था। नेगी ने रेंजर की शत्रुता मोल ली और फलस्वरूप धर्मशाला (भागसू) में क़ैद भुगतनी पड़ी :—

'इजीए न्यारौ मेरे बाबुआ न्यारौ तौ।
ना गो आंणे ऐआ दोखिणू दोशा।
भोड़ा रामा नेगीआ,
नागो आंणे ऐआ दोखिणूं दोशा॥
जाऊं वी न आंणूं एआ दोखिणू सुनारटी[1]।
ताऊं नहीं भोड़ा रामा नाऊं।

१. सुनार की कन्या,

नौकरी न कोरणी बोहरे बांणिए।
भाटे[1] रे न चारणें गोरू। मेरे नेगिआ।
भाटे रे न चारणें गोरू।
जींमी बी न खौटणी चांजरा बांजरा।
कांजरा न आंणनी जोरू। मेरे नेगिआ।
कांजरा न आंणनी जोरू।
बागै बीता फूला बोला नींबू फूला माड़ती
मांजणी बाहरी गैरू। भोड़ाराम नेगिआ।
मांजणी बाहरी गैरू।
सुख बीता साना दै इना गौटी गारांई लै।
भोड़ारामा चालौ नफेरू। मेरे नेगिआ।
भोड़ाराम चालौ नफेरू।
एकी बीता सोठू तेरो ढीलो हांडणों[2]।
दूजै सोठू कोटा रे बीड़े[3]।
जैबी ता नाहै तू एऊ जांगली वाजीरा लै।
तेरी लाऊं पाशड़ी कीड़ै।

मंडी रे बाहले :—

'मंडी रे बाहला न आदरा बाह की बीरा।
छाती रा केरू कोयला फिकरे।
आजी बी बोला सा धीरा॥
बुहने भूइणा उहजै बालू रे गैरे।
तौ पीछे मेरी भूरिये साधु रे जन्म कैरे॥
डौवी सूमा न सुम कुक्ड़ी सूई।
दूरा न हैरउए मेरी भूरिए।
मेले बराबरी हुई।
ओहरे भूइणा पौहरे समसी बाहला,
ते ई डाला न ढोकणा।
जुण नी चुटिए जाला॥

पांज शौ—सतलुज उपत्यका में विख्यात गांव निर्मंड में देवी अम्बिका के मन्दिर पर सवर्ण तथा हरिजनों का समान अधिकार था। एक बार उस मन्दिर

१. ब्राह्मण,
२. चाल,
३. बटन।

में इसी बात पर कुछ विवाद उठ खड़ा हुआ। बाहर से आए हुए एक तहसीलदार ने, जो लोगों से किन्हीं कारणों से असन्तुष्ट था, इस स्थिति से लाभ उठा कर, ग्राम के धनी-मानी तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों का चालान कर दिया। उस समय के सबसे अधिक प्रभावशाली विद्वान, पण्डित बेगादेव, इस से ऐसे व्यथित हुए कि कुछ समय बाद उन्होंने देह त्याग दी :—

'खाड़ेए तेऊ पीपूए का बाशी चेली शीयारी
शियारी गे, पांजा शौ दो आ शाठीए
लागी कुड्ए तय्यारी, तय्यारी गे
पांजा शौ दोआ शाठीए
कामदारा बोलू उद्यानन्दा दे हामा के ढोला
ढोला गे कामदारा बोलू उद्यानन्दा
बेगदेऊ नीती ज्वालादेऊ चाले कैंदा ले
सा.ो सौरा कांबो
कांबो गे बेगदेऊ नीती ज्वालादेऊ चालौ कैदा ले
कामदारा नींओ कैंदा लै।'

मेला गीत :—मेला गीत दो प्रकार के हैं, मेला संबंधी तथा मेला जाने की अभिलाषा और उत्कंठा प्रकट करने वाले। मेला संबंधी गीत अनुष्ठान के रूप में गाए जाते हैं। मेला में सम्मिलित होने की उत्कंठा कई गीतों में प्रकट होती है। इस प्रकार के गीत प्रायः स्त्रियों के हैं। अनेक स्थानों पर तो स्त्रियां मेला नृत्यों में सम्मिलित होती हैं, पर अन्य स्थानों पर वे केवल दर्शक मात्र ही रहती हैं। मेला, श्रम के पाटों के बीच पिसे उनके जीवन में विश्राम लाने का अवसर प्रदान करता है, अतः वे बड़ी उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा करती हैं, मेला गीतों में तो इसका चित्रण हुआ ही है, लामण के भी कई पद नारी के इस शौक की ओर इंगित करते हैं :—

'खौरे दपौहरे नार्णी आई कापड़े धोई,
लाला खाई माखीए जातरे शौका खोई।'

(नारी कड़कड़ाती धूप में कपड़े धोकर लौट रही है, मार्ग में मधुलोलुप भ्रमर ने काट खाया, जिससे वह मेला देखते-देखते रह गयी।) दशमी के मेले पर जाना है अब जरा नारी की उत्सुकता देखिए :—

'मूं जाणा दसमी वोला दसमी जाणा लाणा रेशमी थीपू'

१. सिर पर पहने का वस्त्र

तू ऐजँ दसमी बोला दसमी लाई चितरा[1] पाटू।
मूं लागी खाणें री, बोला खाणें री, आणी गौरीरा गोड़ा।
तू खाए रीजिया[2] बोला रीजिआ, आणूं भौरिए भोड़ा।
जँबैं एबी दसमी बोला दसमी ऐजी पाहुणी मेरी।
ऐंढे न एजीदा बोला एजीदा एणनूं बणिए लाड़ी।
ओरे ता एज भुरिए बोला भुरिए, बोन्ही लैंणी आंसा जौड़ी।

जातरे बांठण—दसहरे पर जाने की बातचीत पक्की हो गई, तैयारियां होने लगीं :—

'बांठिणों[3] चाली जातरे, लोगो, बांठिणों चाली जातरे।
धोइया मूंठू[4] हारशु[5] आगे, भरवी छाती दै वटणों लागे।
बांठिणों चाली जातरे।
हाथो दै, नाकौ दै कानड़ू ताओं।
जेउरे-गौणें लागी ली भाओं, बांठिणों चाली जातरे।
हाथो दी मेंहदी, नशोदो[6] लाली।
कैसरे पूछूणी केर की चाली।
बांठिणों चाली जातरे।
ओंठी[7] दी कांगणी, माथे दी बिन्दी।
कौंसिनि[8] काणियैं[9] पलजो[10] दीन्दी।
बांठिणों चाली जातरे।
शुकली चादरू लाम्बे झलारे।
कानो रे भूमके देखणें म्हारे।
बांठिणों चाली जातरे।
होलकी गोंइएं, तैलो रे बास।

१. चारखाने वाला,
२. भरपेट,
३. सुन्दरी
४. मुंह,
५. शीशा,
६. नाखून,
७. अंगूठी,
८. किसी को भी नहीं,
९. सुन्दरी,
१०. नजर।

कौसरे देखणे रे के तमासे।
बांठिणों चाली जात रे, लोगो०।'

ऋतु गीत—धरभाड़ :—विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर उनसे संबंधित गीत गाए जाते हैं। वसन्त के आगमन पर जिन गीतों को गाया जाता है, उन्हें 'घरमाड़' कहते हैं। चारों ओर पुष्प खिल रहे हैं, उस छटा को देखकर मानव गा उठा :—

'आई नई बहार,
मेरो नवरंग जोबन
इक तो आई रित वसंत
दूजे पूछे सखियो अपणो कन्त
तीजो पिया पिया पिया पिया पपीहा पुकारे
मेरो नवरंग जोबन
आई नई बहार।

इस नई बहार में मनुष्य सब कुछ भूल क्यों न जाए :

'डेई गो चेतरो रो महीनो
वे फुलटू सोबे फूली गए
हासी हासी जांदे वे पांछी
सौब सौब साओ भूली बे गए
हौरो हौरो डाड़ी डोली
जांदी डोलिए जांदी
हरे पींउणें फुलटू लाल फूले,
खूशी ए खुशी दी फूले
ऐस ऐस हासी दी मौन सौबी रे
भूली इ भूली गए।'

वर्षा ऋतु—सावन की वर्षा से सब नदियां भर गईं और वे अनोखे-अनोखे सुरों में गीत गाने लगीं :—

'बरशा शांवणां नदियो भरदी लागी,
नोखे नोखे सुरो दी गीतो भरदी लागी
पारले कुडों[1] गाये काड़े बादलो जागे
ऐरो गूडा घुड़क्यो[2] धरती कांबदी लागी

१. कुडों
२. बादलों का गरजन।

केरो चीले, केलो झूमियो झूमियो, नाचीओ गा,
ठंडी वोआ बागरा[1] पाची पाची नीची ओला
धारा पांदा धारो री उठा से धूंआँ
धूंई मिलयो बादलो ला हुआ धूंआं
बागे फूलो फूलणूं चकटू वाशे
भीर मीर ब्ररशा शांवणां खेचीरे आशे
वरशा शावणां नदियो भरदी लागी
नोखे नोखे सुरो दी गीतो भरदी लागी।

शरद् ऋतु में गाए जाने वाले गीत का उदाहरण देखिए :—

'आई गेयो ठांडे रा महीनो
वे पाच भड़ी जांद
सूलै सूलै बोला पींणा चालो
हावा ठांडी ई आंदी-जांदी
पींउणी शेरशो फूली जांदी
खेच घैरे बे धीशा हो।'

छींजा गीत—

ऊपर लिखित गीतों में हमने लोक-कवि को विभिन्न ऋतुओं के अनुसार प्रकृति का चित्रण करते पाया है। अब हम ऐसे गीतों की विवेचना करते हैं जो ऋतु विशेष में ही गाए जाते हैं। ये गीत विषय और शैली में पृथक् हैं, पर अपने समग्र रूप में इस प्रदेश के जीवन की झांकी उपस्थित करते हैं। इन गीतों में 'छींजा' गीत का अपना विशेष स्थान है।

छींजा केवल स्त्रियों का गीत है। इसे किसी पुरुष के सम्मुख गाने में वे संकोच करती हैं। समाज के प्रतिबन्धों, गृहस्थ जीवन की समस्याओं, व्यक्तिगत कुंठाओं का इन गीतों में सजीव चित्रण हुआ है। बड़ी बूढ़ियों का कहना है कि बहुधा वे इन 'छींजा' गीतों के माध्यम से अपनी नवौढ़ा वधुओं अथवा अन्य युवतियों की मनोदशा का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। वैसे तो सभी स्त्रियां इन गीतों में भाग लेती हैं, किन्तु यदि कोई वहू किसी विशेष गीत में अधिक रुचि दिखलाए, तो उस गीत की कथावस्तु के आधार पर सयानी स्त्रियां जान जाती हैं कि उसे सास-ससुर का दुर्व्यवहार सता रहा है, या परदेशी पिया

1. पवन।

की याद।

साधारणतया छींजा गीत निर्शू या विर्शू उत्सवों के दिनों में गाया जाता है। कई स्थानों पर इसे अन्य अवसरों पर भी गाते हैं। प्रायः चैत्र मास के दूसरे पखवाड़े के आरम्भ से ग्राम की सभी स्त्रियां घर के काम-काज से निवृत्त होकर सायं एक स्थान पर इकट्ठी हो जाती हैं और बड़ी रात गये तक गाती रहती हैं। यह क्रम बैसाख की संक्रान्ति तक चलता है। कहीं-कहीं वैशाख के १०।१२ प्रविष्टे तक भी छींजे गाए जाते हैं। इन गीतों का कोई धार्मिक महत्व प्रतीत नहीं होता। चैत्र-वैशाख में गाए जाने का कारण संभवतः सामाजिक अथवा लौकिक हो। वर्ष में यही समय होता है, जब ऋतु भी सुहावनी होती है और खेती बाड़ी का काम भी अधिक नहीं होता। फसल आने में कुछ दिनों की देर होती है।

छींजे का आरम्भ प्रायः किसी भजन से किया जाता है और तत्पश्चात् विविध प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जिनमें कभी प्रवासी कन्त को बुलाया जाता है, तो कभी रूठे देवर को मनाया जाता है। एक गीत में निर्दयी सास द्वारा सताई बहू का करुण क्रन्दन है, तो दूसरे में भाई के प्रति बहन का स्नेह प्रदर्शित होता है। छींजे के अन्तर्गत ही बारहमासा (बरमासड़ी) गीत भी आता है।

पावस ऋतु सम्बन्धी छींजा उस विरहिणी की हृदय-व्यथा का चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, जिसका कन्त प्रदेश गया है। विदा होते समय आश्वासन दे गया था कि शीघ्र ही लौट आएगा और साथ में कुछ उपहार लेता आएगा। पर समय बहुत बीत गया, प्रवासी लौटा नहीं। इधर वर्षा ऋतु आरंभ हो गई। आकाश में छाये बादल देखकर विरहिणी का हृदय खिन्न हो उठा। जब वर्षा होने लगी तो हृदय का बांध रोके न रुका :—

'काड़ीए बादड़िए मूइए, बरखांदो मेहा वे।
कींह बरखै लोकड़िए मुइए, बागुरे बारूरा वे।
कान्ता[1] दासावरिआ[2] पिया, घौरे[3] कीले न आया वे।
आऊं आऊं घौरडिए मूंइए, लई आंणू तोखले[4] चौडटू[5] वे।
आग लागे पिआ तेरी चाकरिये, मू ना लौड़ी[6] तेरो चौडटू वे।

१. कंत,
२. परदेसी,
३. घर,
४. लिये,
५. पहाड़ी साड़ी
६. जरूरत,

कान्ता दासावरिश्रा पिया, धीरे कीले न श्राया वे ।
श्राग लागै पिया तेरी चाकरिये, मू ना लौड़ी तेरे जुड़खै वे ।

बहन बहुत दिनों से मायके नहीं गई। भाई उसके घर के निकट पहुंच रहा था। बहन ने भाई को देखा तो फूली नहीं समाई :—

'भोले लुहारा तू छैले सनारा,
ऊंचीए डांडिए दिश्राडैंश्रा वाड़ाए।
बौडे बौडे दियाडेंश्रा सौकली[1] रात्री,
वीर पारहुणों श्राश्रो श्राज की रात्री।
खाये खाये बीरा तू गौरी[2] छुश्रारै।
जेबी श्राए मेरी शाशुड़ी खौड़िए दुश्रारै।
खोई का लाए गौ बीरा खोड़खडाटा।
पीठी मूं मुछिया श्रांणू भौरी पाराता।
तेरे चाकुर लै देऊंगौ बीरा, टाटे की टांणी।
तेरे घोड़े लै देऊंगौ बीरा, तांबुए तांणी।
तेरे घोड़े लै देऊंगौ बीरा, खेचा[3] के जौश्रा।
तेरे चाकुर लै देऊंगी बीरा मैंदे की रोटी।'

(दरवाजे पर खड़े होकर उसने खटखटाया। हां में तेरे चकोर श्रौर घोड़े का सब प्रबन्ध ठीक कर दूंगी। घोड़े को अपने खेत से जौ लाकर खिलाऊंगी श्रौर चकोर के लिए मैंदे की रोटी बनाऊंगी।) पर—

'शाशुड़ी मेरी गौ बीरा श्राग बाड़ागा।
नौड़ना सोंघड़ी बीदड़ी जमाका।

(सास मेरी श्राग का अंगारा है। मेरी ननद चमकती बिजली है।) मन ही मन प्रार्थना करती है :—

'ढोएगों ढोंका[4] तू चूटेगे बातै।
बीर पारहुंणों श्राश्रो श्राज इंदड़ै थाकै।'

ससुराल में बहू पर कितने प्रतिबन्ध लगे होते हैं, यह प्रस्तुत छींजा से स्पष्ट हो जाएगा। बेचारी अपने मायके जाना चाहती है, परन्तु श्राज्ञा घर के

१. सकल
२. गरी
३. खेत
४. शैल

सायानों से तो लेनी ही है, गेंद से खेलने वाले देवर और गुड़ियों से खेलने वाली ननद से भी इसकी स्वीकृति लेना आवश्यक समझा जाता है :—

'कांड़ी ए धारै गे लूम्रा लूईए गे लूआ लूईए
कि तेत मूंइए नीठाड़ी[1] होए
सौर्गा का पौड़ी गे डोराडिए
कि मेरे भाई पेउकै जाणो।
मूं ता न पूछै गे कुडा[2] बहुए
आपणे शेउरे जाय पूछे कि आपणे शेउरे
तों ए ता पूछूगो शेउरे आ
कि मेरे भाई पेउकै जाणो।
मूं ता न पूछेगे कुड़ा बहुए
कि आपणे जेठिए जाय पुछे
तों ए ता पूछू गो पाशैं खेलदे जेठिए आ
कि भाई मेरे पेउकै जाणों।
मूं ता न पूछे गे कुड़ा बहुए
कि आपणे देउरा जाय पूछे
तों ए ता पूछूगो गींदू खलांदे देउरा
कि मेरे भाई पेउकै जाणों।
मूं ता न पूछे गे कुड़ा बहुए
आपणी नौड़ना[3] जाए पूछे
तों ए ता पूछूगे गुडी खलांदी नौड़नै
कि मेरे भाई पेउकै जाणों।
मूं ता न पूछेगे कुड़ा भाभीए
कि आपणे स्वामी जाय पूछे
तों ए ता पूछू गो स्वामीआ
कि मेरे भाई पेउकै जाणों।
जेतरे ता होंदे गे गैंणी[4] ए तारै
कि तेतरे पौखे[5] बीयाड़े[6]

१. झुक जाना,
२. कुल,
३. ननद,
४. आकाश,
५. प्रतीक्षा,
६. दिन।

जेतरे ता होंदे गे गाडे गड़ैणूं
कि तेतरे ता पौखे बदाणूं[1]।'

सास-सुसुर, जेठ-देवर और ननद, सभी एक-दूसरे के पास आज्ञा लेने के लिये बहू को भेजते हैं। अन्त में ननद उसे कहती है, कुल भाभी, अपने स्वामी से जाकर पूछ लो। बहू स्वामी से प्रार्थना करती है, मुझे अपने मायके जाना है। उसका उत्तर पाषाण-हृदयता का अद्वितीय उदाहरण है। वह कहता है कि आकाश में तारों की जितनी संख्या है, उतने दिन और प्रतीक्षा करो। नदी के किनारे फूलने-फलने वाली घास के जितने दाने हैं, उतनी संख्या में बुलावों का इन्तजार करो।

यही छींजा हिमाचल प्रदेश के विलासपुर जिले में भी गाया जाता है। किन्तु वहां इसका अन्त इस प्रकार होता है :—

'ल्यांया गुआलुआ नरमे दी छट्टी
इसका खोंऊं 'जाणा जाणा।'

कुल्लुई गीतों में तो एक असम्भव संख्या के दिनों की प्रतीक्षा पर ही बस कर दी गई है किन्तु विलासपुर का पति 'नरमे की छड़ी' मंगवाता है, जिससे 'जाना, जाना' की रट लगाने वाली पत्नी को पीटा जा सके।

एक और छींजा गीत देखिए, जिसमें बहिन द्वारा भाई की सहायता करने पर सास के हाथों उसकी दुर्दशा का वर्णन है :—

'पारलीआ बात[2] नी सासुए कुण आएआ
पारलीआ बात नी नूंहे बीरण तेरा आंएआ।
चुकदी ए लाज घड़ौलू
पांणी ए की जांदीए
ओरे हट पोरे हट डुमणैआं दा बेटड़ा
ऐहड़ा न बोलणा बैंहणा
बीरण तेरा आएआ
क्या तेरे घरे जो बीरा
आन्न धान्न थोड़ा ए
क्या तेरे घरे ओ बीरा
खड़ड़ी कुआरी ए
क्या तेरे घरे ओ बीरा

१. निमंत्रण,
२. सड़क।

नार कांगी आरी ए
कडदी ऐ चोंसर हार
वीर की दींदीए
इकसी आ लड़िया बीरा
आन्न धान्न थोड़ा ए
दूजीआ लड़िया बीरा
खडड़ी कुआरी ऐ
तीजी आ लड़िया बीरा
नार कांगी आरी वे
चुकदीए लाज घड़ोलू
घरे की आंदी ए
घरे आई होंदी सस ज पुछदी
कुथु ए चौसर हार ओ
हाथां मूहां धोंदे सासू
हार गुआचेआ
सदा[1] तीना झरि झरेटे
हार लेणा कढ़ाई ओ
इतनीआं देरी नी सासू
पाताल पुरी जाई रैहा
सदा तीना मछ मछेरे
हार लेणा कढ़ाई ओ।
सदा तीना राज रजेटे
कान्द[2] देणी चढ़ाई ए।

ओरे ते वी चीणों भाइओ
पोरे ते वी चीणनेओ
सिर मत चींणे ओ भाइओ
ओंगीं भाबो सुहागण
सिर जांगी गूंदी ए।

ओरे ते वी चींणों भाइओ
पोरे ते वी चींणनेओ
छाती मत चींणदे ओ भाइओ
ओंगा मेरा वूंघर बेटा

१. बुलाओ,
२. दीवार।

दूध जांगा पी ए।
	ओरे ते बी चींणों भाइओ
	पारे ते बी चींणों
	कमर मत चींणदे ओ भाइयो
	ओंगी मेरी ताई सुहागण
	चोड़ू जांगी पहनाई ओ।
ओरे ते बी चींणो भाइयो
पारे ते बी चींणनेओ
पैरा मत चींणदे ओ
ओंगीं मेरी भाभी सुहागण
पैरा जांगी बोंन्दी ओ।'

इस छींजा गीत में बहन का दुखद अन्त होता है। घर से बहन देखती है, दूर रास्ते में कोई आ रहा है। सास से पूछती है, कौन आ रहा है ? सास ने कहा, तुम्हारा भाई है। जल लाने का बहाना करके बहिन घर से निकलती है और मार्ग में भाई पर आई विपत्तियों की सूचना पाकर अपना चौसर हार सहायता के लिये उसे दे देती है। घर लौटने पर सास हार के विषय में पूछती है, उत्तर में बहू कह देती है, कि मुंह-हाथ धोते समय वावली में गिर गया है। सास समझ गई। बहू के इस दुस्साहस का दंड दिया जाना आवश्यक समझा गया। दंड दिया गया कि उसे जीते जी ही दीवार में चिन दिया जाए। बहिन चिनी जा रही है। वह राजों से कहती है कि मेरा सिर न चिनना ताकि मेरी सुहागिन मां कभी इधर आए तो मेरा सिर गूंथ देगी। भाइओ, मेरी छाती न चिनना, ताकि मेरा घुंघराले वालों वाला पुत्र दूध पी सके। मेरी कमर न चिनना जिससे मेरी ताई जब कभी इधर आए तो मुझे वस्त्र पहना सके। मेरे पैर न चिनना ताकि मेरी सुहागिन भाभी जब कभी इधर आए तो मुझे प्रणाम कर सके।

बरमासड़ी (बारहमासा)—'बरमासड़ी' 'बारहमासा' का ही अपभ्रंश है। ऋतुगीतों में बारहमासा एक लोकप्रिय गीत है। लोक साहित्य में ही नहीं, शिष्ट काव्य में भी इसकी परम्परा पाई जाती है। हिन्दी के सूफी कवि जायसी ने पद्मावत महाकाव्य में भी नागमती के विरह का वर्णन आषाढ़ मास से प्रारम्भ कर ज्येष्ठ मास में उसे समाप्त किया है।

बरमासड़ी वस्तुतः वियोग का गीत है। प्रिय-विरह में दुखी नायिका पर वर्ष के विविध महीनों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसी की अभिव्यक्ति इसमें की जाती है। प्रत्येक ऋतु अथवा मास अन्य लोगों के लिये सुखदायक है पर

विरहिणी को वही दुख सागर में डुबो देता है। इन गीतों में मासों अर्थात् प्रकृति का वर्णन होता है। नाम से भी अनुमान किया जा सकता है कि ये प्रकृति-वर्णन के गीत हैं। परन्तु प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन नहीं है। इनका प्रकृति-वर्णन वियोग-श्रृंगार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आता है। साहित्य में षट्-ऋतु-वर्णन का जो स्थान है, लोक साहित्य में वही बारहमासा का है।

कुल्लुई प्रदेश में कतिपय ऐसी बरमासड़ियां भी हैं जिनमें वियोग की प्रधानता नहीं। प्रत्येक मास में एक साधारण कृषक गृहस्थ के सम्मुख जो समस्याएं प्रस्तुत होती हैं, उनका उल्लेख रहता है। जैसे :—

'आऔ महीना चैत्र,
नाजा फाके मूके थैत्र[1]।
आओ महीनो बशै'
चिड़ुए लागै बैं।
आऔ महीनो जेठ,
मेरो पाहुंणा बेठ।
आऔ महीना शाहड़ा
ताते ताते बटहरू घोणी मोसरी दाला।
आऔ महीना शौंण,
जौ गिंहूं दी लागी कोण[2]॥
आओ महीना भौद्र,
दाणें फाके पौड़ी छोद्र[3]।
आऔ महीना शौज,
लागीं भातरी मौज।
आऔ महीना काती,
आप आपणी शाची।
आऔ महीना मगशीर,
सुनेए लागी टीर।
आऔ महीना पोश,
ढाई ढाई छलोरी,[4]
सारा सारा आलू ओ कुश[5]।

१. थैत्र का साधारण अर्थ तो रख छोड़ना है, किन्तु यहां समाप्ति के अर्थ में प्रयुक्त है,
२. अनाज का कीड़ा, घुन
३. छिद्र,
४. मक्की की रोटी,
५. कटोरा,

एक दूई कौरे रूश।
आओ महीना माग,
चिड़िए लागै दाहग,
एक दूजे लागे आग।
आओ महीन फगणोटो,
गुआलटु भिगठो,[1] शोटो।

लामण—गीतों का एक महत्त्वपूर्ण तथा अत्यन्त लोक-प्रिय रूप है ऐसे चतुष्पादों का जिन्हें लामण, दशी, झुरी, भौंरू, झझोटी, झूलिपया, कुफ्फू, हार, रासो, बूढ़ा या गंगी नामों से जाना जाता है। यह सब वस्तुतः एक ही गीत के नाम हैं, केवल छाया मात्र का अन्तर है। कई बार देखा गया है कि यदि एक स्थान पर एक चतुष्पद को लामण के नाम से पुकारा जाता है, तो किसी दूसरे स्थान पर उसी पद को झुरी अथवा झुल्पिया कहा जाता है। लामण में टेक आदि रीलू अथवा नाणी की है तो 'दशी', 'झुरी' और 'कुफ्फू' में उनके स्थान पर दशी, झुरी और कुफ्फू का प्रयोग होता है। बूढ़ा, गंगी, हार, झझोटी तथा रासो तो पूर्णरूप से लामण के ही विभिन्न नाम हैं। दशी, कुफ्फू आदि में ऋतु प्रयोग आदि के आधार पर कुछ अन्तर पाया जाता है।

कुफ्फू पोस्त के फूल का स्थानीय नाम है। बैसाख-जेठ के महीने में जब पोस्त फूलती है और अफीम डोडों से निकाली जाती है, तो स्त्रियां गर्मी से बचने के लिए खेतों में सुबह-सवेरे जाया करती हैं। उस समय वे कुफ्फू गीत द्वारा वातावरण में एक हलचल पैदा कर देती हैं। पोस्त की काश्त तो अब बंद है अतः गेहूं काटते हुए ही यह गीत गाया जाता है। वस्तुतः गेहूं काटते समय गाया जाने वाला गीत दशी है। अब कुफ्फू और दशी आपस में ऐसे मिल गये हैं कि यह कहना कठिन हो जाता है कि उनमें कौन-सा दशी और कौन-सा कुफ्फू है। उदाहरण के लिए इस दशी में:—

'बाशे मेरे आ कुफुआ, राजे इन्द्रे बागे
गाए शोटी दूहणी, दोशी शूणदे लागे।'

कुफ्फू और दशी दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। अन्तर केवल यह है कि कुफ्फू पक्षी द्वारा दशी गीत गाने को कहा गया है।

झुल्पिया गीत भी दशी और कुफ्फू का ही सहोदर है। इसे अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर केवल यही अन्तर सामने आएगा कि जहां दशी और कुफ्फू में संयोग और वियोग-श्रृंगार के दोनों पक्षों का समावेश होता है, वहां

1. ऊन का मोटा वस्त्र।

झुलिपया में अधिकांशतः वियोग का ही। सम्भवतः इस अन्तर का कारण इस गीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और वियोग के चतुष्पदों का झुलिपया नाम भी साभिप्राय है ?

कहा जाता है कि किसी गांव में एक परिवार रहा करता था। इस परिवार में सात भाई थे। सबसे छोटा भाई अत्यन्त सुन्दर था। उसकी लम्बी-लम्बी जुलफें (बाल) थे। सम्भवतः इसी कारण उसे झुलिपया कहा जाता था। जब बड़े भइयों का विवाह हो गया तो झुलिपया भी अपने अनुरूप एक रूपसी युवती को ब्याह लाया। दोनों पति-पत्नी आपस में प्रेम से रहते और अन्य स्त्री-पुरुषों की ओर नजर उठाकर देखते भी नहीं थे। झुलिपया के भाई ईर्ष्या से जलने लगे। यह नारी तो गर्ववती है अतः इसका गर्व तोड़ना चाहिये, ऐसा सोचकर उन्होंने एक षड्यन्त्र रचाया। एक दिन झुलिपया को बुलाकर कहा कि अमुक राज्य में युद्ध छिड़ गया है और हमें उसमें भाग लेने के लिए बुलाया है। सब तो जा नहीं सकते हैं, तुम बलिष्ठ हो अतः हमारी ओर से तुम्हें उस राज्य में जाकर युद्ध में भाग लेना होगा। राज्य दूर था, देश बेगाना, अपनी प्रिया से बिछुड़ने को मन नहीं चाहता था। षड्यन्त्र का उसे कोई ज्ञान नहीं था। टूटे मन से जाने की तैयारी करने लगा। विदा होते समय पत्नी रोई, उसे रोकने के कई प्रयत्न किये, किन्तु झुलिपया ने अपने कर्त्तव्य-पालन को अधिक महत्त्व दिया। जाती बार पत्नी को गुलाब का फूल निशानी दे गया। कहा, 'यह तुम्हें मेरी याद दिलाता रहेगा, जब तक यह ताजा रहेगा, समझना तेरा झुलिपया सकुशल है। मैं शीघ्र ही लौट कर आऊंगा।' महीने गुजरे, वर्ष होने को आया, किन्तु झुलिपया न लौटा। विरहिणी पत्नी व्याकुल हो उठी। अपनी जेठानियों को देखती, सुहाग का आनन्द भोग रही हैं। विह्वलमना पत्नी यात्रियों और पक्षियों द्वारा अपने झुलिपया को संदेश भेजने लगी। आने वाले मुसाफिर यदि तुम्हें मेरा झुलिपया मिल जाए, उसे कहना, लोग गेहूं काट कर तथा मंडवाकर निवृत्त हो गए हैं, किन्तु हमारे खेतों में फसल ज्यों की त्यों खड़ी है। उड़ने वाले कागा से कहती, 'कागा, यदि तू कभी मेरे झुलिपया के देश जाए, और वह तुझे मिल जाए, तो कहना, तेरा दिया हुआ फूल अभी तक ताजा है। मैं जानती हूं, तू जीवित है।'

अब झुलिपया तथा अन्य चतुष्पदों, झुरी, भौंरू आदि का यह अन्तर मिटता जा रहा है। इसीलिए इन सभी गीतों को लामण के अन्तर्गत ही लेकर इन्हें लामण में ही अन्तर्भुक्त कर लिया जाता है।

जीवन की अभिलाषा लिए अमर मानव के ये अमर लामण कल्पवृक्ष के समान ताजा तथा वसन्त के फूलों से विविध रंग के हैं। शायद ही कोई अभिलाषा, कोई मनोकामना ऐसी हो, जिसे इन गीतों द्वारा वाणी न मिली हो।

इन गीतों में हंसना, रोना, सुख-दुख, मिलन-विरह, संयोग-वियोग, इहलोक-परलोक, भाग्य अथवा पुरुषार्थ सभी का चित्रण मिलता है ।

लोकमन सम-सामयिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है । उसकी विचार-धाराएं, आकांक्षाएं, अभिलाषाएं, जीवन का मानदण्ड सभी परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं । समाज के दर्पण साहित्य में, हम जीवन के मानदण्डों को प्रतिबिंबित पाते हैं । साहित्य चाहे लिखित हो या मौखिक, शिष्ट हो अथवा लोक, उसमें जीवन की झंकार रहती है । काल की परिवर्तनशीलता के कारण साहित्य विशेषकर मौखिक साहित्य का रंग-रूप वाणी सब बदल जाते हैं । उसमें यदि कोई वस्तु स्थायी रहती है तो वह है भाव । बाह्य परिधान चाहे कुछ भी हो, महत्त्व तो आत्मा का ही है । और उसकी यह आत्मा अजर-अमर और सतत नवयौवना है ।

यह समय-समय की बात है, कभी किसी का महत्त्व होता है तो कभी कोई उन्नत होता है । मानव जीवन के अनुरूप ही उसकी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य भी काल के कपाटों के बीच आकर पिस जाता है, पुनः किसी जीवनदायक झोंके से जीवित होकर पनपता है, बढ़ता है, पुष्पित होता है, फल लाकर अन्त में जीर्ण-शीर्ण बन एक बार पुनः विलीन हो जाता है । आज जो गीत सबकी जिह्वा पर होता है, कल वही दोषयुक्त, अमांगलिक तथा अछूत बनकर त्याज्य हो जाता है ।

यही दशा हमारे प्रेम-काव्य, लामण की प्रतीत हो रही है । एक समय था जब लामण, बाल हो या वृद्ध, युवक हो या प्रौढ़, सबके कंठ पर था । उदाहरण देना होता तो लामण, दृष्टान्त की आवश्यकता पड़ती तो लामण और शिक्षा अथवा नीति की बात समझानी होती, तब भी लामण का सहारा लिया जाता था । यदि अपने दुर्दैव की चर्चा चल पड़ती, तब भी लामण से अच्छा दूसरा कौन-सा माध्यम था । इस प्रकार लामण अत्यन्त शक्तिशाली गीत था । मदन समान वह सबके हृदयों पर राज्य करता था । पर काल के गर्त में कौन नहीं समाया ? फिर यह लामण ही अपवाद क्यों होता । परिणामतः यह सर्वप्रिय गीत अपनी सीमा को संकुचित करता-करता अब केवल चरवाहों, गड़रियों, ग्वालों तथा समाज के अन्य अशिक्षित वर्गों के बीच ही रहने पर बाध्य हो गया । अपनी इस दुर्दशा में भी लामण गीत इतने सामर्थ्यवान हैं कि दो अपरिचित हृदयों को प्रेम और विवाह के सूत्र में बांध देते हैं ।

प्रेमगीत लामण प्रकृति के विशाल प्रांगण में नीलाकाश की स्वच्छ, उन्मुक्त तथा पुनीत और विस्तृत छाया में पनपता और व्यवहृत होता आया है । इसमें काव्य का वह मौलिक रूप छिपा है, जिसमें आदि मानव ने अपनी भावनाओं को बिना किसी आडम्बर के स्पष्ट तथा सीधे-सादे शब्दों में

चित्रित किया है। यही कारण है कि इसे छन्द और न अलंकार की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए आवश्यकता है तो केवल लय की, स्वर-लहरी की, भाव की और मादकता की, जो इसमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं। रस-राज शृंगार अपने नंगे, परिवेष्टित, मांसल, भावात्मक, उच्च, नीच सभी रूपों में इन लामणों में चित्रित है। यद्यपि इनमें अन्य रसों का भी नितांत अभाव नहीं है। लामण ने किन-किन अवरुद्ध भावों को अभिव्यक्त किया और प्रकृति की स्वच्छन्दता के साथ मानव स्वच्छन्दता का तारतम्य मिलाया, यह इनके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। प्रकृति से तादातम्य स्थापित कर, लामण ने युवक और युवती, पुरुष और नारी के नैसर्गिक सम्बन्ध की पृष्ठभूमि उपस्थित की है।

अधिकांश लामण प्रश्न-उत्तर की परिपाटी पर रची गई युवक और युवती के हृदयोद्गारों की गाथाएं हैं जिनमें प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों को रूपक और उपमा के लिए प्रयुक्त किया गया है। सम्वादात्मक लामणों के चारों पद सार्थक होते हैं, परन्तु मुक्त लामण के बहुधा प्रथम दो पद निरर्थक होते हैं और उन्हें केवल तुक मिलाने के लिए ही रखा जाता है। लामण के साथ 'लगाना' क्रिया का प्रयोग किया जाता है, अतः लामण गाने के बजाए लामण लगाना कहा जाता है।

लामण को कितना महत्त्व दिया जाता है, यह नीचे दिये गए उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा, जिसमें लामण लगाने वाला दैवी सहायता की प्रार्थना करता है:—

'देउआ राजीआ सेवा साहिबो तेरे
लामणाई मेरे शांगे कोरे बाजले मेरे।'

(देवता साहिब, मैं तेरी सेवा करता रहा हूं, तू मेरे कंठ को साफ कर ताकि लामण लगाते समय मेरी आवाज दूर तक पहुंच सके।)

प्रेमी (रीलू) अपनी प्रेमिका (नाणी) से अभिसार का समय और स्थान निश्चित कर रात्रि को प्रेमिका के निवास स्थान पर जाता है। वहाँ उसे जोखटी[1] के प्रकाश में बर्तन मांजती नारी दिखाई देती है। वह कहता है:—

'भांडे धोंदी नाणीं ए, भांडे धोये भीती ऐ ड़ेबे।
कीले रांडे बदाउऔ, कीले न जोखटी शेवे॥'

(बर्तन मांजने वाली नाणी, बर्तन दिवार के साये में धोना। पर तुम तो अपनी जोखटी के प्रकाश को बुझाती नहीं हो।)

उधर से नारी का उत्तर तुरन्त प्राप्त होता है:—

१. कैल या चील की लकड़ियों की मशाल।

'चीला री जोखटी, पाणी न बागुरै हीशा।
जूंणी राँडे बदाउग्रौ,हाड कीलै न पाथरै पीशा ।।'

(मेरी यह चील की जोखटियां न वर्षा से और न ही प्रचंड पवन से बुझती हैं। तुम्हें जिस कुल्टा ने बुलाया है, उसकी हड्डी-पसली क्यों नहीं तोड़ देते ?) हताश प्रेमी कह उठता है—

'जोथ लागी चानणीं, जो लागी तौंगडू तेरे।
पोरु पैंशे भीतरे, शा झराउंदी मेरे ।।'

(स्वच्छ ज्योत्स्ना तेरे आंगन को प्रकाशित कर रही है, तेरा रूप-सौंदर्य इस प्रकाश में और भी निखर उठा है। नारी, तू घर के भीतर चली जा, बाहर रह कर तू मुझे जला रही है।) उसे समझाते हुए नाणी कहती है:—

'चीटी चादरा नाँहदे, पाणीये भीजी।
दूर मोरे लोक नेड़े ना बोलदी दीजी ।।'

(सफेद बेदाग चादर भी पानी से भीग जाती है। मुझसे दूर रहो, नजदीक से बातें न करो।)

नाणी बाहर आने से रही, और कोई मार्ग सूझता नहीं है। इस कारण रीलू स्वयं उसके बरामदे के नीचे खड़ा होकर कहता है:—

'उछटी कोठी ए, नाणी हांड़ा घूमकू घेरे।
चूटौ लोड़ी तौंगडू, पौड़ी लोड़ी मोठड़े मेरे ।।'

(अपने ऊंचे मकान के तौंग में नायक की ओर से उदासीन नायिका घूम रही है। नायक मन में सोचता है, क्या ही अच्छा हो, तोंग टूट जाए और नाणी मेरी गोद में आ गिरे।)

प्रदेश में बहने वाली अनेक छोटी-मोटी नदियां प्रेमियों के मिलन में सदैव बाधा उत्पन्न करती रही हैं, इस ओर लामणों में बार-बार लक्ष्य किया गया है:—

आरशा पारशा शाटू कौरा मिलापा।
नौदी नहीं टौफिया, मांझे बाडुग्रौ दैता सापा।'

(नदी के आर-पार प्रेमी और प्रेमिका है, नदी को पार करना कठिन है, बीच में दैत्य सांप जो है।)

'मेरे तेरे सोंगिआ लौहड़ी बेरा को साथा
नौदी नहीं लोंघदी, मांझे पौड़ो दैइता सापा।'

नाणी रीलू को कहती है, साथी, हमारा-तुम्हारा बचपन का साथ है। पर, क्या करूं, बीच में नदी है, जिसमें दैत्य सांप पड़ा है। इसका उत्तर देते हुए रीलू कहता है:—

'सापा रे मुंडकी पोरु देए ले काटी।
मूं बौणूं दीउठू, तूं बौणे दीए री बाती।'

(मैं सर्प के सिर को काट कर फेंक दूंगा। मैं दीपक बन जाऊंगा, तू उस दीपक में जलने वाली बत्ती बन जाना।) पर यह सुझाव नाणी को पसन्द नहीं है, अतः वह कहती है:—

'दिए री बातिए, पोरु बी मरेली जोड़ी।
तू बौणे भौंरो, मूं बौणू कुजेरी कौड़ी॥'

(नहीं, दीपक और बत्ती बनना उचित नहीं, दीपक जलकर प्राण हरता है। प्रिय, तू भ्रमर बनना और मैं 'कूजे' पुष्प की कली बन जाऊंगी।) पर प्रिय को यह सुझाव पसन्द नहीं आया। वह इसमें कमी देख रहा है, अतः वह एक नया ही सुझाव रखता है:—

'कुजे री कौडी, पोरु बी मरे को रीजी।
मूं चैंही सूरजा तू चैंही गैंणा बीझी।'

(प्रिय, यह भी नहीं, कूजे की कली तो मुरझा कर झड़ जाती है। मैं सूरज बनूंगा, तू निर्मल आकाश बन जाना।) पर नाणी को यह सुझाव भी पसन्द नहीं, अतः वह एक और सुझाव देती है:—

'झीझी नेंही गैंणा, नाही बरेशे पाणी।
तूं चैंही गुडकू, मूं चैंही बिजली राणी।'

(आकाश तो सदैव निर्मल नहीं रहता। निर्मल आकाश तो कभी बरसता भी नहीं। अतः प्रिय तू गरजने वाला बादल बन जा और मैं उसमें चमकने वाली बिजली रानी।) प्रिय को यह सुझाव पसन्द आया, अतः उसने कहा:—

'तू होंदी नाणींए, इन्द्र राजे ए पौरी।
जिदी बौसा मनणूं, तीदी कै मौरणों डौरी।'

(अच्छा, मेरी इन्द्र राजा की अप्सरा, यह स्वीकार है। जहां मन बसता है, वहां मौत से डरना ही क्या?) जहां इतना प्रेम हो, वहां रीलू भी नाणी को प्राप्त करने के लिए बड़ी से बड़ी कुरबानी कर सकता है। वह कहता है:—

'तेरी तँई नाणी ए, ठाणों हांडू हांडू तासीला।
लागा कौरे ढोबुए, बीका कौरे छापरे शीला।।'

(नाणी, तेरी खातिर चाहे मुझे थाना, तहसील जाना पड़े। पैसे खर्च हो जाएं, यहां तक कि मेरे घर के छप्पर की सलेटें भी बिक जाएं, मैं तुम्हें प्राप्त कर ही लूंगा।) इससे आगे भी वह कहता है:—

'तेरी तँई नाणीए, भांओ पौड़ा चाकरी जाणां।
वांग लागा बिडनी, जाऊ लागा कुवशा खाणा।।'

(तेरे लिए नाणी, यदि मुझे किसी की दासता भी करनी पड़े तो सहर्ष कर लूंगा। भांग चुन लूंगा, रूखी-सूखी खा लूंगा।) प्रेमिका भी उसे आश्वासन देती है:—

'तेरे तांई सोंगिया, जिणी लागाली तीणी।
बौणा कोरू खोटिया, घर करू पाथरा चीणी।।'

(मेरे साथी, तुम्हारे लिए मैं भी सब कुछ सहने को तैयार हूं। मैं जमीन कमा लूंगी और मैं अपने परिश्रम द्वारा मकान बना लूंगी।) यदि एक ओर इस प्रकार का दृढ़ निश्चय है, तो दूसरी ओर प्रेमी कुछ चिन्तित भी है। उसे डर है कि उसके घर वाले शायद ढेरी की रकम न दें:—

'दाह लागा दोर्दा, जौ लागा बहुत कीछा।
बूरे मेरे बरींदडू, ढेरी न लोगूए ईच्छा।।'

(मुझे तेरी दर्द है, पर मेरे सम्बन्धी बुरे हैं, वे लोगों की 'ढेरी भरना' स्वीकार नहीं करेंगे।) इस पर नाणी कहती है:—

'ढेरी दे डीगणें, ढेरी न मानणीं भौरी।
जौले ती मूं पहले, ढेरी हेरी में खेतरी ए भौरी।।'

(ढेरी की चिन्ता न करो, अपने पहले पति को मैं अपनी निजी बचत से ढेरी के पैसे दे आई हूं।

यहां पर झुरी, दशी का भी एक उदाहरण देखिए—

झुरी :— 'पाप रे चौंउरी, धौर्मा रे गांगा।
मांछे देए बोलणे, आपणों चेंही जीउटा चांगा।'

दशी :— 'भाई तेरो बांठियो, कांडेओ जेओ बनाड़ा।
गाची आगा पातड़ा, मूंह लागा सूरजे झाड़ा।'

६. **विविध गीत**—बालगीत:—विविध गीतों के अन्तर्गत बालगीत, किशोर

गीत और खेल गीत आदि आते हैं। यहां पहले बाल गीत को लिया जाता है। बाल गीत वे गीत हैं जिन्हें बच्चों को बहलाने के लिये गाया जाता है। यह गीत लोरी गीत तथा बच्चों के मनोरंजन के गीत हैं। उदाहरण के लिये इस लोरी गीत को देखिए—

'सूती रोहे माठड़े[१] भाउआ,[२]
बैंड़ी[३] आंमूं तोंई,[४]।
ईजी[५] डेई कांगड़ै कोटै,
बापू डेउऔ लौई[६]।'

किशोर और खेल-गीत—वस्तुतः किशोर गीत और खेल गीत में कोई विशेष अन्तर नहीं है। किशोर गीत भी खेल गीत की तरह किसी खेल को खेलते हुए किशोरों अथवा किशोरियों द्वारा ही गाया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि कभी-कभी खेल गीत द्वारा बच्चों को शिक्षा भी दी जाती है। नीचे खेल गीत और किशोर गीत के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

'सिपरी'—यह लड़कियों का गीत है। इसमें लड़कियां आपस में जोड़ी बना लेती हैं और जोड़ी की प्रत्येक लड़की अपनी साथिन का हाथ पकड़ लेती है। फिर पांव एक-दूसरी के पांव के समीप ले जाकर पीछे की ओर झुक जाती है और जोर से घूमते हुए वे कुछ छन्द गाती हैं जिनमें से एक छन्द यह है—

'सी सी सिपरी,
सिपरी मूकी[७] रोई।
सोर्गे लागी जातरै,
कापड़ै आणें धोई।।'

'इकर माटी चिकर माटी, माटी मूछी गारी।
चार सहेली पाणीं लै चाली, सौर[८] चालौ सारी।'

इस प्रकार 'रावा कोट', 'इड़क-इड़क', 'चिर पीरू', 'माई', 'ड़ेहउण',

१. छोटा,
२. बच्चा,
३. शाम,
४. पुनः,
५. माता,
६. एक मेले का नाम,
७. समाप्त,
८. शहर।

'पांजड़ा', 'छोड बुढा', 'पोराड़ू' आदि कई खेल गीत हैं जिन्हें बालक, किशोर और किशोरियों के गीत कहा जा सकता है। इन गीतों में तो मनोरंजन के साथ-साथ जन-जीवन की दशा का पता चलता ही है। कुछ ऐसे भी गीत हैं जो उपर्युक्त किसी भी विषय के अन्तर्गत नहीं आते। इन गीतों में युग उद्-बोधन, और हिमाचल के सौंदर्य तथा प्रदेश विशेष से सम्बन्धित गीत हैं। निम्न-लिखित गीत देखिये, जिसमें लोककवि कुल्लू के प्राकृतिक सौंदर्य पर तो मुग्ध है पर साथ ही इस बात पर खिन्न भी है कि इसकी प्राकृतिक सम्पदा का लाभ दूसरे उठाते हैं और यहां के लोगों को भूख और निर्धनता का ही सामना करना पड़ता है—

'देशा देशा न शोभला, देशा कूलू रा प्यारा।
आसेसी एई रे तितिरू चाकरू, ए बगीचड़ू म्हारा।
ध्याड़ी घुमणा धाने सी सेरीन, राती रोहणा फाटा,
सभै मौजा सी अपणे देशान, कौसी नी गला रा घाटा।
ठंडी बागुरी जोतड़ू लगदी, ठंडा जायरू पाणी।
सभै मौजा सी आपणे देशान, आक्ली बाभी न जाणी।
उभी न बौशट रूपी न मणिकरण,
दूरा दूरा न एजासी लोक इन्हा दूई री शरणा।
ऋषि मुनी रा उत्तरखंडा, देवा देवी रा प्यारा,
सुखेरी मौजा लूटी परदेशिये, दुखे रा कुथलू म्हारा।'

अपनी इस स्थिति को सुधारने की ओर उनका ध्यान जा रहा है। कर्म पर जोर दिया जा रहा है। अपने सामूहिक श्रम के गीतों को भी उन्होंने इस उद्बोधन का निमित्त बनाया है—

'देशा चाकणा रा हेसरू
सभी ए चाकणा देशा रा भार,
मिली जुलिए होआ तैयार,
हेसरू बोला हे सार।
देउआ चौकदा उमरा नौहठी
जीणा सा बीथा रा देउआ नी गोहठी
तेबे भी कादली हुए बमार,
गुरे खोली दोशी री झाड़,
रिशी मुनी केरे बाकरे मार,
हेसरू बोला हे सार।

राम नी हुआ ता टाण गिरी साधु,
तेउए बोलु भैंरू जादू
एकी री जागा, लागणे चार,
हेसरू बोला हे सार ।
सोभी ए मिली जुलिए रोहा
मिली जुलिआ कौम कमाया
पढ़ा लिखा हुनर सीखा
उईं सा दुख दलिदर नोहा
अर्ज मेरी बारमबार,
हेसरू बोला हे सार ।

३ : लोक-गाथा

ग्रलाज

प्रदेश के कई भागों में रामायण की कथा के पूर्व मंगलाचरण के रूप में ग्रलाज गाया जाता है। ग्रलाज गाने का उपयुक्त ग्रवसर 'ठोडा' उत्सव है। 'निशु', बिशु' के समान ठोडा में रामायण की कथा के उपरान्त नाटकीय करतब दिखाए जाते हैं। सबसे पहले वैरागियों की एक मण्डली ग्रपने गुरु के साथ ग्राती है। चेले गुरु का ग्रादर करते हैं, किन्तु बातचीत हास्यप्रद ढंग से करते हैं, जिसे सुन दर्शक हंस हंसकर लोटपोट हो जाते हैं। तत्पश्चात् ग्रन्य स्वांग ग्राते हैं जैसे सेठ-साहूकार। सारी रात यह क्रम चलता रहता है। दूसरी रात धनुष का खेल होता है ग्रौर जो व्यक्ति दूसरे दौड़ते हुए पुरुष के घुटने (जानू) के निचले भाग में बाण का निशाना लगाए, वह प्रशंसा का पात्र माना जाता है।

क्यार कोटी स्थान में गाए जाने वाले ग्रलाज का यह रूप है :

पहले नाग्रों नारायणों रा,
जुणी धरती पुग्रानी।
जलथाली होई पिरथिवी
देवी मनसा राखो जगड़ी।
माणू न होले कबे न रीखी
एकेई नारायण राजो होला
सिद्ध गुरु री झोड़ी फा,
ढाई दारणा शेरो रा झैड़ा।
ढाई दाणा शेरू रा
म्हारे स्वाड़ीए बीजौ,
बीजी बाजी रो शेरो,
जोमदे लागे,
जोमी रो शेरो,
गोड़ने लाए

गोड़ी रो शेरो,
पाकदे लागे,
पाकी लूणी रो शेरो, कुनुए लाए
गाही मंडीरो. क्या होग्रा पौजा
ढाई दाणा बीजो रा, छूरू[1] होग्रा पौजा
छूरू भरी शेरो रा म्हारे बीजौ स्वाड़ै
बीजी रो शेरो,
जोमदे लाए
जोमी रो शेरो
गोड़ने लाए
गोड़ी रो शेरो
पाकदे लागे
पाकी लूणी रो शेरो, कुनुए लाए
गाही मांडी रो शेरो, क्या होग्रा पौजा ?
छूरू भरी बीजोरो, पाथा होग्रा पौजा,
पाथा भरी शेरो रा, म्हारे बीजो स्वाड़े,
बीजी रो शेरो, जोमदे लागे
जोमी रो शेरो, गोड़ने लाए,
गोड़ी रो शेरो, पाकदे लागे
पाकी लूणी रो शेरो, कुनुए लाए,
गाही मांडी रो शेरो, क्या होग्रा पौजा ?
पाथा भरी शेरो रा, जुन[2] होग्रा पौजा ।
जुन भरी शेरोरा, म्हारे बीजौ स्वाड़े
बीजी रो शेरो, जोमदे लागे
जोमी रो शेरो, गोड़ने लाए
गोड़ी रो शेरो, पाकदे लागे,
पाकी लूणी रो शेरो, कुनुए लाए
गाही मांडी रो शेरो, क्या होग्रा पौजा ?
जुन भरी बीजौरा, खार[3] होग्रा पौजा

१. छूरू डेढ़ तोले के बराबर होता है ।
२. जुन—४८ सेर,
३. खार—२० जुन,

खार भरी शेरो रो, म्हारे बीजी बलागे[1]
बीजी रो शेरो, जोमदे लागे
जोमी रो शोरो, गोड़ने लाए
गोड़ी रो शेरो, पाकदे लागे,
पाकी लूणी रो शेरो, क्या होआ पीजा ?
खार भरी बीजी रा, होई खारशो[2] पूरा
खारशे शेरशै भयो, म्हारे मुन्दर बाने
सिद्ध गुरूवे मुन्दर बाना
ब्यालो के पाहरे आया लुदरो,
जोमीं समानों बाने मुदरो,
चन्द्रो सूरज़ बाने मुदरो
तारे रे मण्डलों बाने मुदरो
बासू रे नागो, बाने मुदरो
साते समुदरे, बाने मुदरो
चोउडो राओ धूरो, बानें मुदरो
ऋषि राओ मुनि, बाने मुदरो
कोटी रो पौउड़ी, बाने मुदरो,
देऊ कलेणू बाने मुदरो,
देऊ शराली बाने मुदरो
देऊ राओ सीपी बाने मुदरो
देऊ राओ धांधी, बाने मुदरो
देऊ कोरगणो बाने मुदरो
देऊ राओ देवी, बाने मुदरो
चाकलू री छौड़ी, बाने मुदरो
ऐस ब्रलाजो, बाने मुदरो
मनो दी उपजो देवी मनसा
तू ही देवी रूबे जगत
सात कलश, नारायणे दिने, राखणे खे
इनो देवी, राखेइ भडारे
बारो बोरशो खो, सूते नारायण जालो विचे
तू देवी रूबे जगाड़ी
नौ महीने कलशे राखे भडारे

१. बलाग—बलसन और घूंड की सीमा पर एक गांव
२. एक खारश=२० खार

महीने दसवें फोड़ी लेणे
एक कलश फोड़ा देवी, ब्रह्मा पैदा हुआ
तें तो बोलू ब्राह्मा, मेरा देना व्याहरू करी
चरजो न बोले, माता देवी
तू सात जुगो री धरमी री माता
क्रोध उपजा देवी दा, करो ब्रह्मे रा भसमा तालो
दूजा कलश फाड़ा देवी, विष्णू पैदा कीना
तैं बी बोलू विष्णु आ, मेरा देना व्याहरू करी
चरजो न बोले माता देवी
सातो जुगो री धरमो री माता
क्रोध जो उपजा देवी दा, करो विष्णु रा भसमा तालो
चीआ कलश फोड़ा देवी, महादेव पैदा हुआ
तैं ई तो बोलू महादेवा, मेरा देना व्याहरू करो
धरमो दे माता देवी, दो भाई भांगे माता देवी
तीनो दे तू जिऊदे करी
अमृत छिटू पाय देवी, ब्रह्मा विष्णू खड़े कीने
ब्रह्मा ओ विष्णुएं देवी आगे अर्जा कीनी
व्याहरू करूमें तेरो, म्हारे लाणे आदमी पवाणी
ठारहो हाथो रा कीन्या आदमी
तीनों फा धरती ना चाली
दूजे साते लाओ आदमी पवाणी
चांदी सूनेंआरा कीन्या आदमी
तीनों फा धरती न चाली
कांसे तांबे रा कीन्या आदमी
तीनों फा धरती ना चाली
कामदेउरा कीन्या आदमी, सै भरो हुंकारो
हुंकारो रा जोमा पुतरो, आगे हुआ निरंकारो
निरंकारो रो हुआ पुतरो, आगे हुआ हरिचन्द राजा
हरिचन्द राजा रे बखते, सुखै बसी परजा सारी
हरिचन्द राजा रे पोहरे, बाग होला बाकरीरा जगाडा
हरिचन्द राजा रे पोहरे, मूशा होला नाजारा भडारी
हरिचन्द राजा रे पोहरे गोठू होला पौउडी रा जगाडा।
हरिचन्द राजा रो जोमा पुतरो, आगे हुआ बलिचंद राजा
बलिचंद राजा रे बखते, बड़ी होली धगदी लागी

पोढ़ी आणो पंडतो, महलो रा महूरत देखो
बारह ओडी राजे पौड़ी, बारह राखे पोहरू जगाड़े
पाथरे चीणे राजे महलो, लोहे रा चेश्रोलो बणावे
कांसे तांबे री कीन्यें फलते, चांदीरो छतो छडावे
सूनेरे कलशो कुर-रो छडावे, खोरे आणो नारदो शादी रो
चौऊ धूरे न्यौंदा दीना रीखी मुनि सौभी बुलावणे
बुलावणे देउता होरो चारो धामो, खे दीना नारद
न्यौंदा, विष्णु न जाणा
आई गुआ बलिचंदो रे दुआरे, पौउड़ी री भोटे बेठा बामणू
ना अन्न खांदा, ना पाणी पींदा, कारजो सिधारे मेरे वामणा
दाने देउमा मुंहा रा मांगा
दानो रे लावे धोरमो बामणें
लोहे री बली समिद्धा
पाणी रा दीउड़ा जला
कारजो सिधारी रो बामण,
दानो मांगदा लागा
मांगी लो बामणा रे दान,
मांगी लो बामणा रे दान,
जो तू मांगे से परमाण
जो तू मांगे से परमाण,
पोरिया, "का राजा तेरे तौटा जेआ ?"
"तोटा बोले ना बामणा, ए पुन्य रा चांदो।"
पोरिया, 'का राजेआ तेरे जेंउठा जेआ ?"
"जेउठा बोले ना बामाणा, ए बासूरा नागो।"
मांगी लो बामणा रे दान,
माँगी वस्तु नहीं कार।
"महलो दा का राजेआ तेरे, सूनेआ राजेआ छौतरू ?"
"छौतरू बोले ना बामण, एआ महलो रा छतो।"
कारजो सिधारा राजेआ तेरा, दानो खे बदलुई गंआ
ढाई बिख में धरती दीनी, भोला बामण मांगी ना जाणा
चांदी सूना बामण दान, घोड़ा बागा बामण दाज,
खरशे देंदा तैं बड़ाउवी, बालगोरी सेर
एक बिख डेउओ आधे संसारे
दूजी बिख डेउओ सारे संसारे

आधी बिखे खे जागो न थी
बलि राजे कानडी दड़ेई
गाड़ा सातवे पाताड़े
बलिराजा अर्जों करो "नांवा ना मेरा गाड़े
दो दे राजेआ मनवांसी, दो दे पोरवी"
"ऐतना दान राजेआ मेरे, दित्ता नी जादा"
एक देउमा तन उग्रांसी, एक देउमा पारेवी"
आबेली दीआलीरे कबे ?
काती री वांसी आभी
कनी कनी रे लोभे
छेउड़ी छोटू रे लोभे
आबेली दी दीआड़ी रे कबे ?
खोडो मुड़ी रे लोभ
चजरी छेउड़ी रे लोभे
चजरे गाबरू रे लोभे।

ब्रलाज में सृष्टि की उत्पत्ति, विष्णु-ब्रह्मा-महादेव की जन्म कथा से लेकर अन्य पौराणिक उपाख्यानों का लोक-कवि ने गुंथन किया है। एक ओर वह सृष्टि के आरम्भ की कथा वर्णन करता है तो दूसरी ओर वर्तमान का चित्रण। ब्रलाज कथा का सार यों हैं :

पहले नारायण का नाम है जिसने इस पृथ्वी को बनाया। सारी पृथ्वी जलमय थी। मनसा देवी को इसकी देख-भाल पर रखा गया था। तब न कोई मनुष्य था, न ऋषि। केवल मात्र परमेश्वर राजा था। सिद्ध गुरु की झोली से ढाई दाने सरसों के गिरे, उन दानों को हमने शवाड़ू (घर के साथ का साग-सब्जी का छोटा खेत) में बीज दिया। ढाई दानों से एक छूरू उपज हुई। पुन: छूरू सरसों को बीजा गया, उससे एक पत्था[1] पैदा हुआ, फिर उस पत्थे सरसों को बीजा गया जिससे एक जून उपज हुई। जून से एक खार और खार से एक खारश। एक खारश सरसों की सुरक्षा के लिए अब हमें प्रार्थना करनी चाहिए। सिद्ध गुरु ने रक्षा का वचन दिया। शाम होते-होते वहाँ लूदर (रुद्र) आ गया। उसने कहा, "पृथ्वी और आकाश की मैंने रक्षा कर ली है। मैंने सूर्य, चन्द्र, तारकमंडल, वासुकी नाग, सात समुद्र और चार दिशाओं की रक्षा कर ली है। अब ऋषि, मुनि सुरक्षित हैं। राणा रघुवीर चन्द्र सुरक्षित हैं।" कलेणू, शराली, सीप, धावीं, कोरगण देवता सभी सुरक्षित हैं। यह

1. अन्न तोलने का एक बर्तन, जिसमें तीन सेर अन्न समाता है।

अलाज मेला भी सुरक्षित है।

नारायाण के मन में मनसादेवी उपजी। नारायण ने उसे आज्ञा दी कि वह पृथ्वी की रखवाली करे। उसे सात घड़े दिये गए और कहा, "देवी, तू इन्हें किसी भंडार में रख छोड़ना।" नारायण तब बारह वर्षों तक समुद्र में सोये रहे। उन्होंने कहा," देवी। तू इन घड़ों की अच्छी तरह रखवाली करना। नौ महीनों में उन्हें भण्डार में रखना। दसवें महीने इन्हें फोड़ देना।"

देवी ने पहला घड़ा फोड़ दिया, उससे ब्रह्मा ने जन्म लिया, "देवी ने ब्रह्मा को कहा, "तू मेरा विवाह करा दे।" ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "माता, तू इस प्रकार की आश्चर्यजनक बात न कर, तू सात युगों से मेरी धर्म की माता है।" देवी इस पर क्रुद्ध हुई और ब्रह्मा को भस्म कर दिया। तब दूसरा कलश तोड़ा, उससे विष्णु उत्पन्न हुआ। देवी ने विष्णु से भी कहा कि वह उसके विवाह का प्रबन्ध कर ले। विष्णु ने उत्तर दिया, "माता तू अचरज की बात न कर। तू सात युगों से मेरी धर्म की माता है।" देवी को क्रोध उपजा और विष्णु को भस्म कर दिया। देवी ने उसके पश्चात् तीसरा कलश फोड़ा और महादेव उत्पन्न हुए। देवी ने कहा, "महादेव, तू मेरा विवाह करा दे।" महादेव ने उत्तर दिया, "माता पहले वचन दो कि मेरे जो दो भाई तू भस्म कर चुकी है, वे जी उठें।" देवी ने अमृत छिड़का—ब्रह्मा और विष्णु जीवित हो गए। उन्होंने देवी को कहा, हम तुम्हारा विवाह करा देंगे, हम मानव को उत्पन्न करते हैं। उन्होंने अठारह हाथ का आदमी बनाया, वह भी धरती के अयोग्य रहा। उन्होंने सोने-चांदी का आदमी बनाया, वह भी धरती नहीं चला सका। फिर कांसे-तांबे का मानव बनाया, वह भी धरती चलाने में असफल रहा। तब उन्होंने कामदेव से मानव बनाया। उसे हुंकार कहा गया। इस हुंकार का पुत्र हुआ निरंकार, जिसके पुत्र का नाम है हरिचन्द राजा। हरिचन्द का पुत्र हुआ बलिचन्द। बलिचन्द राजा ने समय पृथ्वी अन्न-धन से भरी थी। उसने एक राजभवन बनाने की योजना आरम्भ की। विद्वानों ने उसका मुहूर्त देखा। उस भवन में चांदी की छत तथा सोने का कलश लगाया गया। बलि ने आज्ञा दी कि नारद को बुलाया जाया। नारद आया और उसके हाथ राजा ने सभी देवी-देवता, ऋषि-मुनि को निमंत्रण दिया। नारद विष्णु को बुलाना भूल गया। विष्णु ब्राह्मण का रूप धारण कर स्वयं आ गया, वह न अन्न ग्रहण करता था न जल। राजा ने उससे अन्न-जल ग्रहण करने का अनुरोध किया और उसे आश्वासन दिया कि मुंह मांगा दान दिया जाएगा। उस ब्राह्मण ने लोहे की समिधा बनाई, जल का दीपक जलाया और राजा का कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उसने दान की प्रार्थना की। राजा ने कहा, "जो कुछ तू मांगेगा, तुझे दे दिया जाएगा।" ब्राह्मण ने एक अनजान की तरह पूछा, "वह सामने

तवा-सा क्या है, रस्सी-सी क्या है ?" राजा ने कहा, "ब्राह्मण, यह तवा नहीं, पूर्णिमा का चन्द्रमा है, रस्सी नहीं, वासुकी नाग है। ब्राह्मण तू अत्यन्त भोला है, दान भी मांगना नहीं जानता, तुझे तेरे अनुरोध पर ढाई पग धरती दे देता हूँ। तुम सोना-चांदी, घोड़े आदि दान में मांगते।"

ब्राह्मण ने एक पग में आधा संसार, दूसरे में सारा संसार लांघ लिया, तीसरे आधे पग के लिए स्थान न रहा। उसने राजा बलि का कंधा दबाया और उसे सातवें पाताल में गाड़ दिया। बलि ने प्रार्थना की, "ब्राह्मण, मेरे नाम को ही समाप्त न कर देना।"

भरथरी

कुल्लुई लोक साहित्य क्षेत्र में यह गाथा प्राय: गद्य से प्रारम्भ की जाती है। कहा जाता है कि राजा भरथरी की एक अत्यन्त सुन्दर पत्नी थी, जिसका नाम था पिंगला। राजा सदैव उसके भवन में ही रहता, न राजकाज देखता, न आखेट पर जाता। एक बार पिंगला ने उसे समझाया :

काची बौंणी काया कोठड़ी
झूठौ बौणों संसार
चौऊ दिने राजा जीउणों
छाडी देणों घर बार
समझे शूणे राजा भरथरी।

यह काया कच्ची कोठडी के समान है, संसार झूठा है। राजा इस संसार में जीवन केवल चार दिनों का है। इस प्रकार शरीर की क्षण-भंगुरता तथा संसार की असारता का तथ्य समझा कर पिंगला ने उसे शिकार पर जाने को प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा :

पांजे लाओ मेरे कापड़े
पांजे लाओ हथियार
नीली लाओ मेरी घोड़िया
राजा खेलण शिकार
समझे शूणे राणी पिंगला।

रानी पिंगला, मेरे पांचों कपड़े, पाँचों हथियार और नीली घोड़ी ले आओ, मैं शिकार पर जा रहा हूँ। यहाँ तक इस गाथा का एक अन्य पाठान्तर भी मिलता है जो इस प्रकार है :

केसी वणीं काया कोठड़ी
कैसा वणेया जंजाल

समझी चल्लो राजा भरथरी
झूठी बणी काया कोठड़ी
झूठा बणेया संसार
समझी चल्लो राजा भरथरी
बारा बरियां दा राजा जो होया,
सत्त कित्ते ब्याह,
पहली ब्याही राणी पिंगला
दूज्जी कुलवन्ती नार
समझी चल्लो राजा भरथरी
राणी जे कहैंदी सुणों राजा
मेरी ऐहो देई बात
कदी न आया रंगमहलां बिच्च
कदी न कित्ती बात
कदी न राजाओ रण चढ़ेया
कदी नहीं खेल्यो शिकार
डाही लगी राजा पुत्तरे
होया मेहल ते बार
पंज लिओओ मेरे कप्पड़े
छिट्ठा लियाओ हथियार
सत्तीं लियाओ मेरे लीले जो
होणा महलां ते बार
समझी चल्लो राजा भरथरी।

पहले पाठ में भरथरी की सात रानियों का उल्लेख नहीं है। वह गाथा इस प्रकार आगे बढ़ती है :

गोदे नहीं मेरे बालिका
महले नहीं मेरा राज,
समझे शूणे राजा भरथरी,
धागे बिना नहीं बाणा,
पुत्र बिना नहीं नार,
भाईया बिना नहीं जोड़िया
रेणा बिना नहीं ध्याड़[1]
देही कागज़ राणी बांचिए

1. दिवस,

करमा बांची न जाणू
लिखणे वाला बन्दा लिख गया
बांचण बाड़ा करतार[१]
समझे शूणे राणी पिंगला
मांगी पुत्र माइये न मिले
कर्म मिले न धुग्रार[२]
मोती लगे नहीं डाड़[३] में
धर्म बन्धे न बाड़
समझे शूणे राणी पिंगला
हिन्दू पूजें राजा देउड़ा
मुसलमाणा मसीत
मूनी जगाते भोडेनाथ को
होए जोगिया के बेष
समझे शूणे राजा भरथरी।
जांदा जांदा राजा जाई रेहा बाकियां ठार
घिरदी फिरदी हिरणी जो ग्राई,
शुण राजा मेरी एहो जेई बात,
इस हिरणे मत मारदा,
जिदी सो सठ नार,
मारी लेयां पंच सत्त मिरगियां, तेरा हुंगा शिकार
समझे शूणे राजा भरथरी
पहला तीर राजे मारेया, हिरणे लेया खुंजाई
दूजा तीर राजे मारेया, हिरणे गेया कालजे पार
घिरदी फिरदी हिरणी ग्राई, शुण राजा मेरी ऐहो जेई बात,
जैसी रंडी हिरणी फिरे, वैसी फिरे तेरी नार।
तड़फदा तड़फदा हिरण कह गया, शुण राजा मेरी बात
सिंगा देयां किसी नादी जो, जेड़ा नाद बजांगा,
नैंण देयां नैणवन्ती जो, जेड़ी सोलह करगी सिंगार
मास देयां किसी हेड़िए जो, जेड़ा छिम्बी छिम्बी खांग

१. इसका एक यह पाठ भी मिलता है : "लिखणे वाड़ा वन्दा लिख चुका बांचण बाड़ा नहीं कोए।"
२. उधार,
३. वेल।

खल्ड़े देयां किसी पंडते जो, जेड़ा हेठ बछांग[2]
बाग्गे खड़ी चम्बा मालती,
महलां रही कुलनार
समझें शूणे राजा भरथरी
राणी कहदी शूण गोल्ली मेरी, ऐही जेई बात
मत्थे दी बिन्दी टिरी पई,
सूरखी गई भुंजा भार
नक्के दी बेसर टुट्टी गई,
मौली पई भुंजा भार
पलंग दी पट्टी टुट्टी गई,
राणी पई भुंजे भार
गोल्ली कहदी शूण राणी मेरी ऐही जेई बात
नेको हूंदे राणी सूपने
नेकाँ हूंदे जाल
कल घर औणा राजा भरथरी।

कहीं-कहीं गाथा का यह अंश काफी बड़ी मात्रा में विभिन्नता लिए गद्य के रूप में भी मिलता है, जिसके अनुसार जब राजा भरथरी शिकार पर जाने के लिए प्रस्तुत होता है, तो सामने उसे एक मुर्दा दीख पड़ता है, जिसे लोग श्मशान घाट की ओर ले जा रहे हैं। मृत पुरुष की पत्नी भी सती होने जा रही

१. इसका एक यह पाठ भी मिलता है :—
मांस लागै राजा खाणैए
तीतर मारे दूई चार
गेडा मिरगा मत मारिए
होंदें बण को सरदार
समझे शूणे राजा भरथरी
जैसी राणी रोये मिरग की
वैसी रोये घर की नार
समझे शूणे राजा भरथरी
मांस देणा राजपूत को
जुण वडावी तो जाण
हाड़ी देणी काड़े कूते को
जुण चबावी तो जाण
खाल देंणी साधु सन्त को
जुण बछावी तो जाण
सींगी देंणी मुदराधरी को
जुण बजावी तो जाण।

है, उसने शृंगार कर रखा है। भरथरी पिंगला से कहता है, "रानी, सती स्त्रियाँ उस जैसी होती हैं, जो पति के मरने पर अपने प्राणों को भी विसर्जित करना चाहती हैं।" पिंगला ने उत्तर दिया, "इस प्रकार की स्त्रियों को सती नहीं, कसती (कुलटा) कहा जाता है। सती वह स्त्री है, जो पति का नाम लेते ही प्राण त्याग दे।" भरथरी ने प्रश्न किया, "क्या तू भी उसी प्रकार की सती है?" पिंगला बोली, "नहीं, मैं तो वैसी सती नहीं हूं।" भरथरी को रानी के सतीत्व पर सन्देह हुआ और उसकी परीक्षा लेने की ठानी। वन को जाते समय उसने पिंगला को दूध भरा एक कटोरा दिया और उद्यान में एक पौधा दिखाया। उसने कहा, "यदि कटोरे के दूध में लहू की छींट पड़ी दिखाई दे तो समझना 'खोटो हुआ, झोटो न हुआ' कष्ट हुआ, मेरा अनिष्ट नहीं हुआ। हां, यदि यह पौधा भी सूख जाये तो जान लेना मेरी मृत्यु हो गई है।

वन में पहुंचते ही राजा ने पहला काम एक मृग और एक गैंडा मारने का किया। मृग और गैंडे की पत्नियां अपने मृत पतियों के पीछे हो लीं। राजा किसी प्रकार भी उनसे पीछा न छुड़ा सका। उनकी दयनीय दशा देख राजा व्याकुल हो उठा। वह चिन्ता में डूबा हुआ था कि उधर से गुरु गोरखनाथ आ निकला। गुरु को देख राजा ने उससे प्रार्थना की कि वह मृत मृग और गैंडा को जीवित कर ले। गोरखनाथ ने अपनी असमर्थता प्रकट की और भरथरी को याद दिलाया कि उसकी रानी पिंगला, पहले ही उसे मृग और गैंडा का शिकार न करने के लिए कह गई थी। भरथरी की अनुनय-विनय पर गुरु ने मृग और गैंडा को जीवित कर लिया।

राजा को पिंगला की परीक्षा लेने का ध्यान आया। उसने एक पत्थर से अपने पांव की अंगुली जखमी कर ली। साथ ही उसने कुछ विश्वासी सिपाही रानी के पास इस सूचना को लेकर भेज दिए कि राजा की मृत्यु हो गई है। सिपाही राजभवन पहुंचे और रुंआसी सूरत बनाकर पिंगला को कहने लगे कि गैंड़ा, मृग के पीछे भागते-भागते राजा को चोट आ गई जिसके कारण उनकी मृत्यु हो गई। रानी तुरन्त दूध कटोरे के पास पहुंची। देखती क्या है कि दूध में लहू के छींटे पड़े हैं। वह आत्महत्या करने वाली थी कि उसे पौधे का ध्यान आया। उद्यान में गई। वहां उसने देखा, पौधा हरा-भरा था। आश्वस्त हो उसने सिपाहियों को तुरन्त राजा के पास लौट जाने का आदेश दिया, ताकि वे जख्मी राजा की सेवा-शुश्रूषा कर सकें।

सिपाहियों ने राजा को सारा वृत्तान्त सुनाया। भरथरी तो पिंगला की परीक्षा लेने पर तुला था अतः उसने पुनः उन सिपाहियों को पिंगला के पास भेजा। उन्हें समझाया कि रानी से मिलने के पूर्व वे रात को पौधे की जड़ काट रखें जिससे वह सूख जाए। उन्होंने राजा की आज्ञा के अनुसार पौधे की

जड़ काटी और रोते-रोते रानी के पास गए। उन्होंने बताया, पहली बार राजा बेहोश था किन्तु अब सचमुच मर गया है और वे उसका दाह-संस्कार कर उसे सूचना देने आए हैं। पिंगला ने दूध का कटोरा देखा, उसमें लहू की छींटें थीं। बाहर निकल कर पौधा देखा, वह सूखा हुआ था। पिंगला को विश्वास हो गया कि राजा की मृत्यु हो गई है। उसने स्नान किया, शृंगार किया और ध्यान-मग्न होकर तीन बार भरथरी का नाम लिया। तीसरी बार नाम लेते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

सिपाहियों ने पिंगला की मृत्यु का समाचार राजा को दिया। सुनते ही राजा भरथरी अपनी दुर्बुद्धि पर पश्चात्ताप करने लगा। पिंगला का जब-जब उसे स्मरण हो आता वह अपनी सुध-बुध खो देता। वह राजभवन लौट आया। वहां आकर उसने पिंगला के मृत शरीर को अपनी गोद में लिया और महल के बाहर धूनी लगा कर "हाय पिंगला, हाय पिंगला" करता रहा। भरथरी इस प्रकार पिंगला के शरीर को लेकर बारह वर्ष तक बैठा रहा।

गुरु गोरखनाथ को जब भरथरी की इस विक्षिप्तावस्था की सूचना मिली तो वह भेष बदल कर एक साधारण साधु के रूप में वहां आया जहां भरथरी ने धूनी रमा रखी थी। पास ही उसने भी अपनी धूनी जलाई। तत्पश्चात् गोरखनाथ मिट्टी की एक कच्ची "डिबी", घड़ा ले आया। उसमें जलभर वह धूनी पर रखने लगे। कच्चा घड़ा घुल गया और जल नीचे गिर गया जिससे धूनी की आग भी बुझ गई। भरथरी यह दृश्य देखता रहा। घड़े के फूट जाने पर साधु भेषधारी गोरखनाथ "हाय डिबी, हाय डिबी" चिल्लाने लगा। भरथरी के "हाय पिंगला, हाय पिंगला" जाप में बाधा उपस्थित हो गई। उसने साधु को डाँटा और कहा कि तू अत्यन्त मूर्ख है। कच्चे घड़े में जल भरने से यह स्वाभाविक है कि घड़ा फूट जाएगा, इसमें रोने-चिल्लाने अथवा शोक की क्या बात? साधु ने उत्तर दिया, यदि वह मूर्ख है तो राजा भी कम मूर्ख नहीं जो बारह वर्षों से "हाय पिंगला, हाय पिंगला" कहता आ रहा है। यदि उसे दूसरा घड़ा मिल सकता है तो राजा को भी दूसरी पिंगला मिल सकती है। भरथरी यह उत्तर सुन और अधिक क्रुद्ध हुआ, कहा, "मैं तुम्हें दूसरा कच्चा घड़ा ला सकता हूं, क्या तुम भी मेरी पिंगला मुझे दिखा सकते हो।" साधु इस बात पर राजी हो गया। उसने राजा से घड़ा लाने को कहा। भरथरी बाजार गया पर वहाँ कोई कच्चा घड़ा उसे नहीं मिला। कुम्हारों के पास सब पकाए घड़े थे। वह खाली हाथ लौट आया। उसने साधु को कहा, कच्चा घड़ा मिला नहीं, यदि तुम में सामर्थ्य है तो पिंगला मुझे दिखा दो। साधु ने भरथरी को अपनी अंगूठी दी और कहा कि उसमें वह पिंगला की मूर्ति देख सकता है। राजा ने अंगूठी देखी तो उसमें उसे एक नहीं अनेक पिंगलाएं दिखाई दीं। आश्चर्य

चकित राजा अपने गुरु को पहचान गया और उसके पांव पर गिर पड़ा। उससे पिंगला को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करने लगा। गोरखनाथ ने उसे बताया कि पिंगला को मरे १२ वर्ष बीत चुके हैं। वह सिंहल द्वीप के राजा के घर जन्म ले चुकी है जहाँ उसका नाम "बिरमा" है।

भरथरी बिरमा की खोज में चल पड़ा। भवन को ताला लगाया, अपना सिर मुंडाया और हाथ में एक छड़ी ली। कन्धे पर झोली डाली। मार्ग में लोगों ने पूछा।

कीजुए कारणे मूंड मंडाउऔ
कीजुए कारणे डींगी[1]
कीजुए कारणे झोड़ी फाउड़ी
हुई कै ऐतरी बींगी ?
बिरमें तैंई मुंड मंडाउऔ
कूते छेड़ना लै डींगी
भिछा मांगणा लै झोड़ी जो फाउड़ी
हुई जो ऐतरो बींगी
लोगो, हुई ऐतरी बींगी

लोगों को उत्तर दिया, मैं बिरमा की खोज में निकला हूं। और आगे बढ़ा तो कुछ किसान मिले जो अपने खेतों की मुंडेरों को खोद रहे थे और खेतों में हल चला रहे थे। वह उनसे पूछता है :

हाड़ू होंदे क-दाड़टू होंदे
सौचौ सौचौ तोंमें बोलो
केऊ देशा रो आन्न बौडौ
केऊ देशा रो पाणी
केऊ देशा रो राजऔ बौडौ
केऊ देशा री राणी ?

"मुझे सच्च सच्च बताना, किस देश का अन्न बड़ा है, कहां का जल, किस देश का राजा बड़ा है और किस देश की रानी ?"

आन्न शूणियां जो नेउड़ो बौडौ
पोर्वता देशा रो पाणी

१—छड़ी।

राजा शूणियां भरथरी चन्दा
बिरमा शूणियां राणी

समतल मैदानी देश का अन्न, पर्वत का जल, राजा भरथरी और रानी बिरमा बड़े हैं। राजा इसी प्रकार के प्रश्न गवालों से तथा पनघट पर जल भरने वाली स्त्रियों से पूछता है। अन्त में उसे बताया जाता है कि वह बिरमा के नगर में पहुंच गया है :

गवालटू ओ फुआलटू ओ
बोलो मोधुरी वाणी
केऊ देशा रो आन्न बौड़ौ
केऊ देशा री पाणी
केऊ देशा रो राजओ बौड़ौ
केऊ देशा री राणी ।
गवालट होंदे फुआलटू होन्दे
हामें बोली मोधुरी वाणी
आन्न शुणियां नेउड़ो बौड़ो
पोर्वतो शूणियां पाणी
राजा शूणियाँ भरथरी चन्दा
बिरमा शूणियां राणी
पाणी ए पड़ैरी ओ
बोलो मोधुरी वाणी
केऊ देशा री आन्न बौड़ौ
केऊ देशा रो पाणी
केऊ देशा री राजओ बौड़ौ
केऊ देशा रो राणी ।
हामें पाणीए पड़ेरी होन्दी
बोली मोधुरी वाणी
आन्न शूणियां नेउड़ो बौड़ौ
पोर्वतो शूणियां पाणी
राजा शूणियां भरथरी चन्दा
बिरमा शुणियां राणी

बिरमा के नगर में पहुंच कर वह मन में विचारता है कि मदिरा का एक प्याला पीकर ही उस के द्वार पर जाना चाहिए। वह कलारिन की दुकान पर जाकर 'मधु' मांगता है,

एक प्यालो तू दे मधु माइये
नोगरी फिरू मतवाड़ौ
जो दमड़ी खर्चे सो मधु पीए
फोकटिये मधु नाहीं
ऐणे जोगड़े मैं नौ लाख देखे
चौकीए फेरदै लाए
चौन्दरा सूरजा गैहणें डाऊं
बांदे[1] डांऊ डोड माडा
एक प्याला तू दे मधु माइये
नौगरी फिरू मतवाड़ौ।
चोन्दरा सूरजा सौभीए साथी
बांदे न डाणी डोडमाडा
जो दमड़ी खर्चे सो मधु पीए
फोकटिए मधु नाहीं
ऐणें जोगड़े मैं नौ लाख देखे
चौकिए फेरदै लाए।
तू कलवाड़ी सिर मतवाड़ी
सार[2] तैं मेरी न जाणीं
सूने चांदी रा पात्थरा करिदेऊं
मधु रा करी देऊं पाणी

भरथरी कलारिन से निराश हो हाथ में किन्द्री[3] लेकर बजाता हुआ आगे चल पड़ा। महल के निकट पहुंच कर उसने देखा, सामने कुछ किशोरियां खड़ी हैं। उसने उनसे पूछा, "वे कौन हैं?" उन्होंने सच बात बताई और कहा, उन के बीच बिरमा खड़ी है। भरथरी ने बिरमा के महल (भवन) के आगे धूनी जमा ली और किन्द्री बजाने लगा।

छोटी छोटी तोंमें बालिका हो जी
कै कैआ थारो नाओं
छोटी छोटी तोंमे बालिका होजी
कीदी आ थारो ग्रांओं
ओरू पोरू म्हारे डीमें डमोडू

१. गिरवी।
२. रहस्य।
३. एकतारा।

मांझे बिरमों बैंडी
ओरी पोरी हांमें भाटेबटेरी
मांझ आ बिरमा नाओं
गुरुओ मांझेआ बिरमा नाओं

किन्द्री की ध्वनि ने सब को प्रभावित कर लिया, सूर्य, चन्द्र इन्द्र, तक नाचने लग पड़े, सारी सृष्टि नाच उठी। बिरमा भोजन की थाली छोड़, जूठे हाथों किन्द्री बजाने वाले को देखने के लिए बाहर निकल पड़ी।

किन्दरी वाजी धड़ीन्दरी बाजी
जौ बाजी बौड़ी घणेरी
बेड़ें बरणा आपी ए नाचा
नाचा बिरमा राणी।
लाई साधु ए किन्दरी लाई औ किन्दरी दी तारौ
बेड़ा नाचौओ मौउलौ नाचौ नाचौ सौउरौ बाजारौ
एकी तारो री किन्दरी बोलो सौ नोखी नोखी वाणी
नाचो ल्हौडले बौडले साथी सै चौउदा औ राणी
चांदौ नाचौ लै सूरजौ, नाचौ देवतै भी सारे
चारे धूरो बोलो नाचदी लागीओ सर्गो दे तारे,
चीने लोको बोला नाचदे लागे, नाचौ बोली राजा
राजा नाचौ ला इन्द्रौ, लागा से किन्द्री रा बाजा
जैंणी बजाऊई गो किन्दरी गुरुआ
भीती ए मांखी भडांणी
कीजुए होंदी किंदरी गुरुआ
कीजुए होंदी तारी
जैंणी बजाउईगे किन्दरी गुरुआ
साथै नींओ काड़जु काटी।
जूठी ए हाथे जुठी ए जाते
बिरमा निखड़ी तोंगे
पौखी दे गो माता छारपोखी राउड़ा
मूं आंणें तोंहे सोंगै।
म्हारे धांधे बोला लागणों नाहीं
हांमें होंदे जोगड़ बूरै
पाथो पाथो हांमे भांगरो पींदै
चौठड़ू पी धातूरा

तेरे धांधें मेरे लागी आ लागणों
तू नहीं जोगड़ू बूरो
तू नहीं आ भांगरो खाँदो
तू नहीं खांदो धातूरो
म्हारे धांधे बोला लागणों नाहीं
हामें होन्दे जोगी जंजाडी
केबी होई हामें भूखे प्यासे
केबी आ बाकरे बैंड़ी।
तेरे धांधे मेरे लागींआ लागणों
तू नहीं जोगी जंजाड़ी
केबीए न रोहा भूखे प्यासे
ध्याड़ होन्दे बाकरे बैंड़ी
बूढ़े-बूढ़े मेरे ई बाब[1] शोटे
आपू कौने[2] शोटे भाई
पोखी देगो मांका पीरपंरवी राउड़ा
ईं लाई सिहै मूं खाई।
कांडो हांडो बोला खाटड़ा हांडो
हांडो नौदीओ बाऊ
एकी घौड़ी मांका पीठीए चूंगदौ
रौडा दी फूटै छाऊ।
तू ता होंदी बोला बेड़ेए बिरमा
मूं होन्दो राजा रो पूता
तू ता जाणती पीठी दी गीना
मूं ना तौं ओंठी ए छूंदौ
तैं कीले जोगीअ ठौगी बशाशी[3]।
तैं कीले किन्दरी बाजी
मैं ना बिमे ठौगी बशाशी
तू किन्दरी शूणी आ ई
सूलड़े हांडे बिरमा राणीए
रोही गेओ रोस्तौ थोड़ो

१. मां-बाप।
२. कनिष्ठ।
३. धोखा देना।

तेरे देशे भाई डुमण बीसा
जुग न पालगी चाणा
तांबै पीतड़े छापरा मेरे
सूने चांदी रे खौड़े
ऐबे मिलौ राजा भरथरी चन्दा
बिरमा मिली राणी
सै दूई ऐबे ऐणें मिले
जैंणे गांगा रो जोमनो पाणी।

देवा कोन्या (देव कन्या)

देव कन्या गाथा का भी इसी प्रकार गद्य-पद्यात्मक स्वरूप बन गया है। एक अन्य विशेष बात यह है कि यह गाथा कईं भागों में बंट गई है और प्रत्येक भाग भिन्न-भिन्न गीतों का अंग बन गया है। यदि आरम्भ के बीस-चालीस पद छाड़ी गीत बन गए हैं, तो गाथा के स्वरूप में यही पद गद्य में परिवर्तित हो गए हैं। देव कन्या के बसु के साथ ब्याह होने के पश्चात् कथानक एक छाड़ी गीत बन गया है। तासकी नाग की बसु द्वारा रक्षा और देव कन्या-बसु का ब्याह नृत्य गीत बन गया है, जिसे "छोड़ बुढ़े" में बालिकाओं को नचाने के लिए गाते हैं। इन सभी सूत्रों को एक साथ पिरो कर देवा कन्या लोक गाथा का निम्नाँकित रूप बन सकता है :

धौतारी कांसा केरो राजा
पैइयेताड़े बासुकी नागा
सौरगे बोली इन्दरा देवो राजा
कांसा राजा लाई पुआदा
शा जिमिआ लैआ करादा
शा भूमियो लेआ करादा
उणटी देआ सुणटी लेआ
नाड़ीए नाड़ीए पाणी भुआओ
धारिए धारिए पौउणी भुआवी
काँसे लागो कोठी केरो शोदा
पैइयेताडै बासुकी नागा।
काने पौड़ी माटुए बरूरा
बैणा बोला बासुकी नागा
धारना पौड़ा ती दूधा हे घीआ रो

आज पौड़ी माटुए बरूरा
जाए ता जाए बेटा है तासकी
मातडोगे खौबरा ले आए
सुण गौ बेटा तासकी नागा
काने पौड़ी माटुए बरूरा
माताडोगे खोबरा ले आए
माता डोगे कुण जोमो जोधो
चालदो हुओ तासकी नागा
नाई गेओ होरी माताडोगे
हांडा फीरा तासकी नागा
कांसा लागे कोठी केरो शोदा
बैणा बोले तासकी नागा
शूणे शूणे कांसिया राजा
हांमा आपू आगे नौकरी बी लाए
बैंणा बोला कासिया राजा
ऐणें हामें नोकिरा न लाई
नौकिरा पारखविया लाई
गाविया हामें दूइया रा लेई
बोउदा हामें वाइया लैंई

तासकी ने काम करके दिखाना स्वीकार कर लिया। जहां राजा कंस की कोठी बन रही थी, तासकी वहां मजदूर बन गया। अन्य मजदूर जितना काम करते थे वह अकेला उससे अधिक कर देता था। रात को तासकी अपना सर्प का रूप धारण कर लेता और कंस के पलंग के चारों ओर घेरा डालकर लेटा रहता। कंस के पांव के अंगूठा को वह अपने मुंह में डाल रखता था।

बैंणा बोला कांसे केरी पौरजा
शूणे शूणे कांसिया राजा
नौउआ तेरे नौकिरा कै लाओ
देई एउए मोनिशी होआ
आखी एउए सौरिपे जेई।

तासकी नाग की वास्तविकता प्रकट हो गई।

आगा ठूरो तासकी नागा
पाछा ठूरी कांसा केरी पौरजा

बाईए कांडे बीसुग्रारा भाटा
बैण बोला तासकी नागा
शुण गी भाटा बैणग्रा जै मेरे
पाछा ग्राई कांस केरी पोरजा
डाई देगी घोड़ी ग्रा रे बाला
वैणा बोला बसुग्रारो भाटा
झोड़ी ग्रागो मुंखे खीतिग्रा नहीं
किऊ कीजू केरे ग्रो दिवा दी डाऊ
बैणा बोला तासकी नागा
नाँदो कोरू छाछा री रूपा
साता हुग्रो धौरिमों भाई
घौरिका बैंणा देवा कोनिया मेरे
तोले देऊं बौरी विग्राई ।

वसु ब्राह्मण ने भी अपनी ग्रंचली में मक्खी बने तासकी नाग को छिपा लिया । कंस की प्रजा इधर-उधर ढूंढ़ती रही । हार कर वापस चली गई ।

तासकी नाग ने उसके साथ अपनी बहन देव कन्या का विवाह करने का वचन दे रखा था, ग्रतः वह वसु को भी अपने साथ पाताल ले गया । किन्तु उसे डर था कि पाताल में जाकर उसे नाग खा लेंगे । इसलिए उसने उसे मक्खी के रूप में बदल दिया और उस मक्खी को अपनी पगड़ी के छोर में छिपा रखा । तासकी अपने पिता के दरबार में गया । राजा वासुकी अपने सिंहासन पर बैठा हुग्रा था । उसकी नागिनें उसके पैर दबा रही थीं । तासकी को देख पिता ने उससे मृत्युलोक का वृत्तान्त पूछा । सुनकर कहा बेटा, देव-कन्या अब जवान हो गयी है, क्या इसके लिए किसी वर की भी खोज की है ? तासकी ने उत्तर दिया कि वर तो वह अपने साथ ही लाया है, पर उसे डर है कि नाग उस मनुष्य को हानि न पहुंचाएं । वासुकी ने कहा, जो हमारा जामाता है, उसे कोई मार नहीं सकेगा । यह सुन तासकी ने मंत्र पढ़ा और अपनी पगड़ी से वसु ब्राह्मण को निकाल कर सामने किया । वसु की शक्ल देखकर सब हैरान हो गए । वृद्ध जिसके बाल सफेद और टांगें भी टेढ़ी । वसु ने जिस प्रकार उसकी प्राण-रक्षा की थी, सारी कथा कह सुनाई । वासुकि भी वचन बद्ध था । उसने वसु को बताया कि देव कन्या ने यह शर्त रखी है कि वह केवल उस व्यक्ति से विवाह करेगी जो उसके मुंह से वाणी निकलवाए । देव कन्या ने प्रातः भोजन से पूर्व किसी से बात न करने का व्रत ले रखा था । तासकी ने वसु को एक युक्ति बताई । वसु दूसरे दिन देव कन्या के भवन में गया । वह तब कमरों में झाड़ू फेर रही थी । वसु सीधे जाकर उस

कमरे के दरवाजे पर बैठ गया, जहां देव कन्या झाड़ू दे रही थी। देव कन्या सारे घर की सफाई के पश्चात्, नहाती, पूजा करती और तब भोजन खाती। बसु जहां बैठा था, दूसरे कमरे के लिए केवल वही द्वार था। उस कमरे में झाड़ू देना बाकी था। देव कन्या बड़ी देर तक प्रतीक्षा करती रही कि वह उठ जाएगा, किन्तु बसु उठने के लिए तो बैठा नहीं था उसने आंखें मूंद रखी थीं। इस प्रकार समय बीतता गया। चारों ओर धूप आ गई, मध्याह्न भी हो गया, देव कन्या कमरे के भीतर और बसु द्वार पर। बेचारी बड़ी चिन्तित हुई, पूजा की वेला टल रही थी। कब नहाऊंगी, कब पूजा करूंगी। हार कर उसे कहना ही पड़ा, "ब्राह्मण द्वार पर से हट जाओ, पूजा के लिए देर हो रही है।"[1]

शर्त पूरी हो गई। विवाह की तैयारियां होने लगीं। देव कन्या वसु को देखकर चिन्ताकुल रहने लगी। यह देखकर उसके माता-पिता कहने लगे :

इजीए न दीनी तू न हे बापू ए
भाईए दीनी तासाकि नागे ए
शुणे शुणे देवा ए कोन्ये
बसु लागा ब्राह्मणा लै जांणा रे
शूणे शूणे देवा ऐ कोन्ये
मारता देऊ तोलै ए मुंगरी
सोंगे देऊ छींउटा राशी रे
शूणे शूणे देवा ए कोन्ये
सोंगें देऊ पौउणा कटोरू रे
शूणे शूणे देवा ए कोन्यें
सोंगे देऊ गोरखा डाबीरे।
शूणे शूणे देवा ए कोन्ये

१. कहीं-कहीं पांच शर्तों का उल्लेख होता है:—तासकी ने वसु के साथ अपने पांच "वीर" भेजे। देव कन्या की शर्त यह थी कि जो उससे पाँच बोल कहलाएगा, उससे व्याह करेगी। वसु जब द्वार पर पहुंचा तो एक 'वीर' ने चुमके से द्वार के भीतर प्रवेश कर कहा, "क्यों खोलता है, यहां ऐसे कुल की लड़की रहती है जो झाड़ू भी नहीं देती, कूड़ा भरा हुआ है।" देव कन्या ने इसे अपमान समझा, और कहा, "झूठ क्यों बोलते हो, कमरा साफ़ पड़ा है।" इस प्रकार पहला बोल हुआ। आगे वसु कमरे में गया, हुक्का पड़ा था, पीने लगा, दूसरे वीर ने सहायता की, फिर खाना खाया, थाली मैली है, लोटा मैला है, देव कन्या ने विरोध में शब्द कहे। पुनः जब चारपाई पर सोने लगता है, 'वीर' ने कहा, मैली चादर है। देव कन्या ने पाँचवीं वार विरोध किया और शर्तें हार गई।

बेदी होने लगी, फेरे पड़ने लगे :—

पेहलो ता फेरो दीनों देवा कोन्ये
शुकले शरा काड़े फिरे तेऊ ब्रामणे न
दूजो फेरो दीनो देवा कोन्ये
घिर दी ग्राखी ग्राच्छी हुई तेऊ ब्रामणे
चिग्रो फेरो दीनो देवा कोन्ये
सौ चूड़ दो नाक शुकी फीरो तेऊ ब्रामणे
चौथो फेरो दीनो वसू ब्रामणे
टोंणे कान शुष्के फीरे तेऊ ब्रामणे
पाँजुग्रो फेरो दीनो तेऊ बसू ब्रामणे
ऊटो कींगर खौडी फीरो तेऊ ब्रामणे
छौऊग्रो फेरो दीनो तेऊ बसू ब्रामणे
ऊटै जानू सौरले फीरे तेऊ ब्रामणे
सातुग्रो फेरो दीनों तेऊ वसू ब्रामणे
बारह वर्षो हूग्रौ सौ ब्रामणा
बापूए दीनो मारू मुंगरी
इजीए दीनी छींऊंटा राशीरे
भाभी ए दीनी गोरख डाबी,
भाई ए दीनों पौंउणा कटोरू रे
शूणे शूणे देवा ए कोन्ये

विदाई के पश्चात् वसु-नववधू को लेकर घर की ग्रोर चला। मार्ग में सोचने लगा :

उभ्ठी कोठी कांसे हे केसू ए
काशा केरी झूंपड़ी मेरी न

इस राजकुमारी को कैसे झोंपड़ी में रखूं। उसकी चिन्तित मुद्रा को देख देव कन्या सोचती है, शायद यह ब्राह्मण मुझे पाकर प्रसन्न नहीं। मैं रूपसी तो हूँ नहीं। मृत्यु लोक में ग्रनेक रूपवती बधुएं इसे मिल सकती थीं। पूछा

शूणे शूणे बसू ग्रो ब्रामणा
काडी गेई तेरे हैं मैली
ग्राधे नाहूं धीवरा का फिरी रे
शूणे शूणे बसू ग्रो ब्रामणा

काड़ी न गेई तू गे हे मैली
खौरे एऊ आपणे लै रोऊं रे
शूणे शूणे देवा ए कोन्ये
उच्छटी कोठी कांसे हे केसूए
काशा केरी झूंपड़ी मेरी रे
शूणे शूणे देवा ए कोन्ये।

देव कन्या ने पति को धीरज बंधाया, कहा, आप कोई चिन्ता न करें, जहाँ भी और जैसे भी आप रहेंगे, मैं उसी में खुश रहूंगी। उसे इस प्रकार समझाती रही और स्वयं उसने 'मारू मुंगरी' को आदेश दिया कि जहाँ वसु की झोंपड़ी है, तू वहाँ जाकर ऊंची-नीची सब जमीन को समतल बना दे। 'छीउटा राशी' को आज्ञा दी कि वह उस समतल भूमि पर महल बनाने के लिए जिस भी सामग्री की आवश्यकता हो, लादे। 'गोरख डाबी' को कहा, जब भवन बनकर तैयार हो जाए, तब तू खाने-पीने, सोने-बैठने, रहने-सहने की वे सब वस्तुएं जुटा रखना जो किसी राजमहल में आवश्यक हैं। फिर इन तीनों को देव कन्या ने 'पौंउण कटोरू' में भर कर भिजवा दिया।

जब वे घर के निकट पहुँचे, तो वसु अपनी झोंपड़ी के स्थान पर एक विशाल भवन को देखकर आश्चर्य चकित हो गया। वह समझा कि उसकी अनुपस्थिति में कंस ने झोंपड़ी को गिरवा कर अपना भवन बनाया होगा। देव कन्या सीधे महल में चली गई और वसु को भी साथ आने को कहा। भीतर एक बड़े कमरे में उसकी झोंपड़ी वैसी की वैसी थी।

एक दिन वसु ने एक नाई को अपनी हजामत करने के लिए बुलाया। नाई ने घर पर अपनी नाइन को कहा कि वसु के बाल बहुत बड़े-बड़े हैं, उसके सिर में जुएं पड़ी होंगी अतः वह पानी गर्म कर रखे ताकि हजामत बनाकर वापसी पर वह नहा सके। नाई हजामत बना कर आया। देव कन्या ने सोने की मोहर, एक चावल की भरी थाली, उसे इनाम में दी। साथ में कहा कि वह नाइन को भेज दे, सिर में कंघी करवानी है। नाई घर पहुँचा और देव कन्या के पास जाने के लिए नाइन को कहा। नाइन ने भी जाते-जाते नाई को कहा, कि देव कन्या के बाल 'काश' की तरह हैं, उनमें कंघी करते हुए उसके हाथ छलनी हो जाएंगे, उसके लिए पानी गर्म रखा जाए ताकि वह वापसी पर नहा सके। वहाँ पहुंच कर जब नाइन बालों में कंघी करने लगी तो उसने देखा, देव-कन्या के बाल सोने के हैं। नाइन नें दो-चार स्वर्ण-केश अपनी चोली में छिपा रखे। घर पहुंचकर नाई और नाइन में इस बात पर झगड़ा होने लगा कि किसे ज्यादा माल मिला है, नाई अपनी हार देख नाइन पर आज्ञा न मानने का आरोप लगाता है।

झगड़ा कंस के पास निर्णय के लिए ले जाया गया। कंस ने नाइन को कहा, "तू औरत है, तुझे पानी गर्म कर रखना चाहिए था।" नाइन इस निर्णय पर जलभुन गई। उसने कंस को कहा कि जैसा "तेरी रानी का मुंह, वैसा देव कन्या के पाँव का तला।"

राजा ने जब यह सुना तो उसके मन में देव कन्या को देखने की इच्छा जागी।

एक दिन कंस की घोड़ी चरती-चरती वसु के बागीचे में गई। देव कन्या ने उसे हाथ मार कर हटाया। जहां उसने घोड़ी पर हाथ मारा था, वहाँ सोने का चिह्न बन गया। कंस ने जब यह देखा तो देव कन्या को देखने के लिए वह लालायित हो गया। उसने वसु को अपने दरबार में बुलाया और कहा, "मैं तुम्हारे घर पर भोजन करूंगा।" वसु ने स्वीकृति दे दी। घर पहुंच कर देव कन्या को जब राजा की बात सुनाई, तो वह समझ गई कि राजा के मन में पाप है।

कंस भोजन के समय वसु के घर पहुँचा। वसु देखकर हैरान हो गया कि राजा के साथ न केवल उसका भाई केशी और नाई है, अपितु सारे कर्मचारी भी हैं।

देव कन्या ने "गोरख डावी" को आज्ञा दी, तुरन्त सबके लिए भोजन बन गया। देव कन्या इतनी तीव्र गति से खाना परोसने लगी कि कंस को भ्रम हुआ कि अनेक नौकरानियाँ काम कर रही हैं। नाई ने बताया, यह अकेली देव कन्या है। परीक्षा के लिए नाई ने चुपके-चुपके से देव कन्या के अँगूठे पर खटाई छिड़क दी। उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया, जब वह पुनः भोजन देने आई, तो खटाई उसके अँगूठे पर देख राजा को निश्चय हुआ कि अकेली देव कन्या ही सारे लोगों को भोजन खिला रही है। देव कन्या को जब यह ज्ञात हुआ कि वह पहचान ली गई है तो क्षुब्ध हो उठी। भीतर कमरे में जाकर वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसने भाई की दी हुई अंगूठी की याद की। उसका स्मरण करते ही तासकी नाग वहाँ आ उपस्थित हुआ। देव कन्या ने सारी घटना का विवरण कह सुनाया। तासकी ने भ्रमर का रूप धारण किया। जब राजा आदि भोजन कर चुके और देव कन्या झाड़ू देने लगी तो भ्रमर ने उड़ते-उड़ते कंस को मुंह पर डंक मारा। पीड़ा से कंस कराह उठा, उसने केशी से कहा :

लाला ता खाओ गो हे मांखीए
सापे जेहे लोह्रे लागे रे
शूणे शूणे भाई ए केशीआ
न्यारू तो बारू तो भाई आ गो कांसे आ

भाटे धौरे पांउणों न जाएरे
भाटे होंदी जौगे हे भाटणाँ
नागा होंदी तासकी ए जाई
शूणे शूणे भाई ए केसिम्रा

पीड़ा से मुक्ति पाने का उपाय वसु से पूछा, वसु ने कहा, इसका उपाय तो देव कन्या ही बता सकती है। देव कन्या ने कहा, मैं तब बताऊंगी, यदि कंस पहले वचन दे दे कि वह मुझे धर्म बहन मानेगा। कंस ने वचन दिया और दोनों धर्म के भाई-बहन बन गए।

कंस की अपनी बहन भी थी जिसका नाम यशोदा था। एक बार माघ के महीने में दोनों बहनें (यशोदा और देव कन्या) कंस के घर आईं। महल के एक कमरे में कमल का फूल था। कंस ने उन्हें उस कमरे में जाने की मनाही कर रखी थी। एक दिन दोनों बहनें उस कमरे में चली गईं और कमल के फूल को सूंघ लिया।

जसदै करोतिए धौरा ले
आणी हेरी मौता धौरे
राजा कांसिया
फूला रे बासी न लैई
हुकिमा कोरा कांसा जवाना
देई दिम्रो दूजो उम्रासा भोरालै
भोरा ला देम्रा दूजो उम्रासा
बसू पाए लोहै केरा बेड़ी
उड्टी जै सुडटी ढ़ागवी देवो
गाशा पाम्रो बोजरा शीला
एऊ बामणा लै
देई दिया दूजो उम्रासा ए भोरा लै

कमल की सुगंध से दोनों गर्भवती हो गईं। उधर से कंस को बताया गया कि तू अपनी मृत्यु स्वयं ही घर ले आया है। कंस प्रतिदिन उनका वजन कराया करता था। उस दिन जब वजन कराया तो वह अधिक था। राजा ने ज्योतिषी विद्वानों से परामर्श किया, जिनसे मालूम हुआ कि उनके गर्भ से जो सन्तान होगी, वह कंस की शत्रु होगी। कंस ने दोनों बहनों को विदा किया। भविष्यवाणी के अनुसार देवकन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र के हाथ कंस की मृत्यु होनी थी, अतः कंस ने वसु और देव कन्या को कैद करवा दिया।

एकी मासे बीती गई रे दूई मासे
दो मासे गिणतरी लाई डाई कांसिए
बीती गई चारा मासा
गिणतीए नाए चार मासा
चौऊ मासे गिणती लाई डाई कांसिए
बीती गई साता माता
गिणतीए सात मासा लाई डाई कांसिए
ग्राठा मासे जन्मों भगवाना
कन्हैयाजी, ग्राठ मासा जोमो भगवाना।
जेबी बीता जन्मो कानवाडी देळतौ
गैणा रोही बौमटा घोरा
गैणा बीता रोही बौमटा घोरा
बिजड़ी ए मारे चमकोरा
बोला रे म्हारे शूणो वसू देवा
बेटेंग्रारे दरसणा ले
ऐसे रे बेटे कौसिये न जनमे
बेटो जोमो लाल गपाला
काने कुंडल गौड़े मोती हार
हाथे डोलकी जपाला
शूणे रे वसुग्रा शुणे रे मोरे हरिया
होरिये बित्ते बाड़ो जमो
होरिये बधाये पाग्रो।
तू ता हेरे बसूग्रा भोडो।
नही गे मोरा हे भोड़ो बावरौ
भूले रे मोरा शुणे वसू ब्रामणा
बेटे दै तू कुकलै पठावी
चतुरा कन्हैया जी सब कोई नींदरा भूलै
कोटिए बाड़ो पाग्रो बालका
फाड़े पाई मोड़ी चकोड़ी
चालदो हुग्रा हे बसू देवा
नाई गेग्रो भींउरे ग्रागे
होरे नाऊं भोजूग्र रामा, संगटतै उतरे
हरिणीए ज उपरै पौड़े भगना
संगट खोले भगवाना।

एकीए कनारे भौंरी उड़ी
दूसरे कनारे बेशो हेडू
तीसरे कनारे उडे ऊगनी
चौथे कनारै बेशौ कूतो
संकट खोले भगवाना ।
उलटी पौंणी भौंरी उडी
अग्नीए बरसे आ मेवा
कुता ले गइया बंड़राई
कन्हैया जी, कुता ले गइया बंड़राई
हेडूआ जे डोंसा काड़ी नागौ
कन्हैया जी
नाचदी पटीगदी हिरणी नाई
हिरणीए भोजूआ रामा ।
चालदौ हूऔ बसूदेवा
नाई गेओ झीवरे आगे
नदी बसू देवा तौरादा लागी
तौरिदा तो लागौ है बसुदेवा
घड़ा घड़ी डूबणो आओ
आगे बीता चालिए जोवना माई
पोछे आए बंड़राई
कन्हैया जी, पीछे आए बंड़रोई
जोवना ता बोंदिया, डोरे ना बसूदेवा
डोरे विना डोरे गो बसूदेवा
चरण गे परसणै आए एऊ महाराजे ।

विष्णु नरैण

जागरा, वार्ता और अधिकांश छाड़ी गति धार्मिक गाथाएं हैं । इन गीतों में विष्णु नरैण और स्थानीय देवी-देवता के गीत तथा गड़ाई सम्मिलित हैं । देवी-देवताओं को रिझाने के लिए उन्हें नचाया जाता है । उन्हें नचाने के पश्चात् लोग देवता के सामने बैठ जाते हैं और जागरा अथवा छाड़ी गीत गाते और नाचते हैं । "जागरा" शब्द की उत्पत्ति जागरण से हुई है । ये गीत रात में जागरण कर देवता के सामने ढैंउसी-बैंखुली, थाली-डमरू के साथ गाए जाते हैं । वार्ता लम्बी कथा को भी कह देते हैं ।

छाड़ी गीत भी जागरा गीतों के अङ्ग बन गए हैं । इन गीतों के गाने का

एक सुनिश्चित क्रम होता है। पहला गीत विष्णु नारायण या स्थानीय देवता के जीवन से सम्बंधित होता है। दूसरा गीत पौराणिक-ऐतिहासिक कथानक पर आधारित होता है, तीसरा गीत किसी सती की जीवन कथा को लेकर चलता है, या चन्द्राउड़ी, कानावाड़ो देउतो आदि रूप का होता है। चौथा गीत प्राय: नाटी गीत होता है।

धार्मिक लोक गाथा के उदाहरण स्वरूप ब्रलाज के मंगलाचरण का उल्लेख पहले हो चुका है। यहां हम विष्णु नारायण द्वारा अपना भवन बनाने तथा देवताओं को कलंकित करने की कथा को लेते हैं :—

नौहे खोंडा हांडी आओ ढूंढी देउआ
दो स्यारा खोंडा गेओ छूटी न
दैंता देउआ डौरा लागी
देंता देउआ डौरा लागी न
देउतो ला बाड़ै ढ़ांडना
देउतो ला बाड़ै ढ़ांडना
तेता हौआ सूंगरे मुख न
तेता हौआ पीतड़ी बाडोटी न
देउतो आओ पीतड़ी बोडोटी न
नौहा खोंडा शौई आओ मोउई न
मौने सूंचा विष्णु नरैण देउआ
कै दे देवे बाणउणें कोठी न
गोई पृथ्वी लौई आ धाउओ गौजा न
मौने सूंचा विष्णु नरैण देउआ
ईंदी देवा वण उणें कोठी देहुरौ
ईंदी देवा बणाउणें कोठी देहुरौ
देउए लागै कोठी केरो कामा न
देउए लागौ कोठी केरो कामा न
मौने सूंचा विष्णु नरैण न
मौने सूंचा विष्णु नरैण न
नैंही आ मेरे गिरीधारा चाणा देउआ
नैंही आ मेरे गिरीधारा चाणा देउआ
भाउए हांडै चीरो बाहो
भाउए हांडै चीरो बाहो
तेत निखुई लोहू केरे बूंद न
सौए बूंदा उत्तरा लै शोटी देउए

सौए बूंदा उत्तरा लै शोटी देउग्रा
तेथो बोणों गिरीधारा चाणा बे
तेथो ब्रौंणो गिरीधारा चाणा बे
बैंणा बोला विष्णु नरैण न
बैंणा बोला विष्णु नरैण न
खौटो मेरेग्रा देउग्रा केरो कामा न
खौटो मरेग्रा देउग्रा केरो कामा न
ठारह खांदै नौ का-डणै दरवाजे न
ठारह खांदै नौ काडणैं दरवाजे न
मौने सूंचा विष्णु नरैण बे ।

दूसरी गाथा में एक बार विष्णु नारायण जागरा के उत्सव पर मोगो असवर्ण के घर नृत्य में शामिल हुए । देवताओं को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने नारायण को "बटा" लगा दिया । विष्णु ने असवर्णों के उत्सव में सम्मिलित होने पर दूषण लगाने वाले देवताओं के मिथ्याचार पर आक्षेप करने के लिए स्वर्ग और मृत्यु लोक में अन्न-जल का अकाल करा दिया । भूखे-प्यासे देवता विष्णु की शरण में गए, जहाँ उन्होंने कच्ची खाल में भरा जल पिया । कच्ची खाल का जल प्रत्येक दृष्टिकोण से दूषित माना जाता है ।

देंवा देवा खूंबड़ी बांणी
बैंणा बोला देवा देवा सौबा न
कूंणी नाचौ मांगो घोरे जागिरो
सौगो देंवा कुबड़ी का बाहरी
बैंणा बोला देवी देंउग्रा सौवारे
कुण देंऊ हामां मांही नहीं न
देंऊ नहीं विष्णु नरैण न
तुउए नाचौ मोगो घौरे जागिरो
मोगो घौरे जागिरो नाचो न
एऊ देंवा विष्णु लागौ बाटाडो न
देउ नाहे सोरिगा दोवारी भाई
बैंणा बोला देवी देउग्रो सोभी न
अन्न पाग्रो गोरू बीए गाँजेरे
ग्रगनी ए ग्रा पेटा ले घूटी न
कानी कुंबी पांणी भोरो पाणी न
बैंणा बोला देवा देवे सोवा न

आन्ना घाटे भूखे लागे मौरी न
पाणी घाट चीशै लागे मौरी न
आगी घाट खारै लागे मौरी न
बैंणा बोला देवा देवे सोबा न
कुण होआ देवा केरो मातो
देव मातो जोई आ बिआरा रें
बैंणां बोला देवा देवे सोबा रे
नाई धोइया देउवा बादाणूं न
आगा चाली भूपू केरे घोरा रे
पाछा चाला जोइया पियारा न
नाई धोइया एकी सारोगे रे
नाई धोई भाई दूजे सारोगे रे
नाई धोई चीए सारोगे न
नाई धोइया चौथे सारोगे न
नाई धोइया पांजिए सारोगे न
नाई धोइया छौइए सारोगे न
नाई धोइया सातुए सारोगे रे
सातुओं सारोगा हुडुओ न होआ न
गाची गाडो नोडिया रा ताडा न
घुवाड़नो लावो सरगा दुआरा न
पाटा कोरे ओरू पोरू हांडा न
बैणा बोला विष्णु नरैणा न
कीदा आओ जोइया पियारा रे
बैणा बोला जोइया पियारा न
मूं आओ देवा तौंए बादाणू न
अन्ना घाटी भूखे लागे मौरी न
पाणी घाटे चीशै लागे मौरी न
आगी घाट खारे लागे मौरी न
बैणा बोला जेठाणी-सांवणी
सामि हांमे छाडे बी न छाडी रें
बैणा बोला जोइया पियारा न
जिदी देऊ ईशोरा बेशो मोंडिपा
तीदी थारो भागा काटमें सावा न
बैणा बोला कोनणी सांवणी रें

भाई माताडोगे मोगिया चानाणी न
सामी म्हारे छाडा बाटाडी न
चालदो हुग्रा विष्णु नारेंणा रे
भाई चालदो हुग्रो विष्णु नारेंणा न
ग्राई गेग्रा हौरी माताडोगे रे
भाई ग्राई गेग्रो हौरी माताडोगे न
ग्राले जो चामड़े ग्रांणे पाणी रे
भाई ग्राले जो चामड़े ग्रांणे पाणी न
एकुए देंउए चीकीरा चाटी रे
भाई एकुए देउए चीकीरा चाटी न
बैंणा बोला विष्णु नारेंणा रे
भाई बैंणा बोला विष्णु नारेंणा न
तोमें देउग्रा लागो बाटाडा रे
भाई तोमें देउग्रा लागो बाटाडा रे
ग्राले चामड़े पांणी पीग्रो पांणी रे
तोमें ग्राले चामडे पांणी पीग्रो पांणी न।

विष्णु भगवान की केवल लक्ष्मी ही पत्नी मानी जाती है, किन्तु इस गीत में दो पत्नियों का उल्लेख है।

कुन्ती-ननती

रामायण, महाभारत तथा पुराणों के कथानकों पर ग्राधारित ग्रनेक लोक-गाथाएं कुल्लुई साहित्य में प्राप्त होती हैं। इन गाथाग्रों की यह एक प्रमुख विशेषता है कि इनमें लोक कवि ने ग्रपनी धारणा के ग्रनुसार ग्राख्यान बनाया है जो जनपदीय साहित्य की धारणाग्रों के एकदम विपरीत भी चली जाती है। कुन्ती-ननती की कथा में कौरव बन्धुग्रों को शालीन दिखाया गया है ग्रौर पांडवों को उद्दंड। कुन्ती पांडवों की माता है, पर कौरवों की माता ननती बताई गई है ग्रौर ये दोनों कृष्ण की बहनें हैं। एक दूसरी विशेषता जो ध्यान ग्राकर्षित करती है, यह है कि ये गाथाएं ग्रधिकांश में कंस ग्रौर रावण की चर्चा करती हैं। इन गाथाग्रों की सरसता ग्रद्वितीय है ग्रौर कल्पना का कौशल दर्शनीय है।

एक बार विष्णु नारायण वैकुण्ठ में बैठे थे। उन्हें ग्रपनी बहन कुन्ती व ननती का ध्यान ग्राया ग्रौर उन्हें देखने वह मृत्युलोक चल पड़े :

मौने सूंचा देउ विष्णु नरैणा
कौरू पांडुवे तै भाणजू मेरें
जैणे का मैं सा तैणे बी न हेरें
ननती कुन्ती श्रा ती बैहाणी मेरी ।
नाही गेश्रो देऊ हरि माताड़ोगे
शाटे कौरू उजुए जाड़ाई
सारे भाई बीरा उजुए जाड़ाई
श्रापणे मामूलै ढाला कौरा ठीला
हाथा जोड़िया तै कौरा नरयाई
बागिरू पाथरू तू मामू किदा श्राश्रो
सूतै लोड़ी मामा पैश्रारू तेरे ।
बैंणा बोला देऊ विष्णु नरैण
राजी लोड़ी तौमें बैंहणा भाणजू मेरे
जेंणे कानै तौम्हें तैंणे बी न हेरै ।
भीमासैणा कौरा सूतीश्रारा ढाला
बैंणा बोला देऊ विष्णु नरैणा
चोड़ू भीमा इना ज़ोरा की तेरी
थोड़ो भीमा तोंदी मदना न लागो ।
चालदौ हुश्रौ देऊ विष्णु नरैणा
हाथा जोड़िया कौरा नरयाई
बेशागो मामूश्रा तू खाई नाहे रसोई
बैणां बोला देऊ विष्णु नरैणा
ऐंड़ी रसोई मेरे भाँडिजू न खाऊं
श्रापणे हाथे भीमा धोरिमा देश्रा
हुऐ मामूश्रा गो धोरिमामेरे
तेरे मामूश्रा जौ कैश्रा गोलो घाटौ
मूं ता लोड़ी भीमा साई देवे बूटी
चालदो हुश्रा देऊ विष्णु नरैणा
नाई गैश्रो देऊ विष्णु नरैणा
नाई गैश्रा देऊ कौरूए बाड़ै
ठारा टीकै कौंरू उजुए जड़ाई
श्रापणैं मामुए जै पैश्रारू पौहना
हाथा जोड़िया सै कौरा
बागरू पाथरू मामू कीदा श्राश्रो

सूता लोड़ी मामा पैंश्रार तेरे
राजी लोड़ी तोमें बेहणा भाणजू मेरे
जैणें कमै तौमें तैंणे बी न हेरे
बैंणा बोला तैंबे ठारह टीकै कौरू
खाए मामूश्रा एऊ भीमा न लूंगा
चालदौ हुश्रो देऊ विष्णु नरैण
श्राई गेश्रौ देऊश्रा पांडवी ए बाड़ै
बैंणां बोला सौ श्ररजण भीमा
बोलगौ मामूश्रा कैश्रा गोलो घाटौ
सूंता लोडी मामा साइदेवे बूटी
चालदो हुश्रा देउश्रा विष्णु नरैणा
बाते मैंड़ी तेऊए दशूश्रा रा दाई
बैंणा बोला देऊ विष्णु नरैणा
किदरा श्राई मेरिए किदरा लै चाली
उत्तर श्राई भाटा पछिमा लै चाली
बैंणे बोला सौं दशुश्रारा दाई
मूंश्रा ता चाली देवा कौंरूए बाड़े
कौरूए बाड़े बी ना शाग कड़छी टापा
तू ता नाए मेरिये पांडवे बाड़े
पांडवे बाड़े होश्रा बाकरे दिहाड़ी
श्राई गई सो पांडवीए बाड़े
श्रोरी बेरा भीमा दोतीए उजिया
तेऊ घियाड़ा तौऊ सूतो सताना
बैंणा बोला सौ राणी पजाई
तौले भीमा श्राज दौशा के श्राई
बैणा बोला सौ हरिसैन भीमा
मुखा वौंटिऐ सूपानों घीश्रो
घीश्रो सूपानो कोरे बाखाणा
शारैंणे घीश्रा छोश्रा मासे बेटी
वाले बूंगिरा बाजी राजे दांदै
सौए वेटाणी सामी सामी बोला
सोई वेटी बोला यांणदा श्रांऊ या स्यांड़दा
वैणे वोला सौ राणी पजाई
तैले वोले तू याणदा श्राए

याणदा आए तू ध्याड़ै पांमें गोंपी
आई स्याणदा गै गोंपिआ न म्हारे
नोन्ती कुन्ती शाग चुंगदी नाई
बेणा बोला सौ हरि कुन्ता माई
चालगी बेंहणीए शागा चुंगदे नाणों
दूंणू भोगुआ शागा आमें लैई
चाली गेई सै शागा चुगदी लागी
वैणा बोला से हे नन्ती चेई
चालगै दाइए जो शागा गैओ हूई
बैणा बोला सौहरि कुन्ता माई
मेरी बेंहणीए शागा बि ना हुऔ
जेतरे खा तेरे शाटा शवीणा
तेतरो खा मेरे एके बोड़िया भीमा
तेता गाहे तैं देउई गाडा
पोरू जोड़ी तेउए बोलदे ढाडा
बोलू बोलू गाह उजुई लड़ाई
बैणे बोला सौहरि कुन्ता माई
मेरे भीमा लै तैं गाई कीले दीनी
नन्ती कुन्ती ए उजुई लड़ाई
छाबड़ू भाबड़ूए हुई लड़ाई
कुन्ती नौनती ए उजुई लड़ाई
नन्ती चेइए काना थौसो काना
कुन्ता माइयो गोड़ा थोसो गोड़ा
ओरी बेरा मारा कुन्ती तेआ नोन्ती
तेऊ ध्याड़े मारी नोन्ती ए कुन्ती
जोपदी चौड़दी सै घौरा ले आई
भीमा सैंणा नाहो हेड़ै केरे बोंणें
होरी बेरा स नू हेडी आंणा हेडो
तेऊ ध्याड़े तेऊ के हेड़ो बि ना लागो
बैणा बोला हरिसैणा भीमा
उज माउड़िए आगी बिना बाड़ी
तेरे माउडिए शोगा कौरो आज़ा
बैणा बोला सौ हरि कुन्ता माई
मेरे होआ नन्तीओ शोगा

खूंडे धोंका भीमा मेरी कुकाटी खाई
मांजकी धोंका मेरे लछुवा बरेड़ी
घसुए धोंका मेरे बुड़ू आड़ी माई
जुरा मुरिए स रैंणा भियाई
छाडूओ बिड्बे वोडिवारो भीमा
काना तैंई तेउए गोदिमा पाई
काछा पाडे पावो दान्तुओ कटारो।
बैंणा बोला सौहरि कुन्ता माई
भूखे भीमा ग भूखो न जाई
गौ कोरूए बाडा लै तू मांता नाए खाई
बैंणा बोला सौ हरिसैंणा भीमा
शागे शाड़ी सारी खांणी मेरी
शागे शाड़ी स तीने कै मारी
नाई गेओ भीमा कौरूए बाड़े
पाटा चौउरी का हाका मारा हाका
बिड़गै नीखुओ सौ दारजोधना
भाईआ भीमा तू बोलणी कै बोले
थारी रांडिए जो मेरी माउड़ी मारी
तेथा गाए बोला दारजोधना
बैंणा बोला जो दारजोधना
बुरुऔ बैंणा भाइया भीमा न बोले
तेरी बी माउड़ी म्हारे बी माउड़ी
छेंउड़ी छोटुए जांणे बी लागे
बेणा बोला सौ वोड़िया रा भीमा
शागे शाड़ी जो हरि खांणी दीनी
एथे भाइयो जुए पांणें पासे
शागे शाड़ी जो म्हारी कै थारी।

मृत्यु लोक आकर विष्णु सर्वप्रथम कौरवों के घर गए। साठ कौरवों ने उठकर मामा को प्रणाम किया। तत्पश्चात् मामा विष्णु पांडवों के घर गए। वहां पर भीमसेन ने सो कर ही मामा को मत्था टेका। विष्णु नारायण ने भांप लिया, भीम को अपने बल का मद है। इस मद को तोड़ने की युक्ति सोचकर वापस अपने घर चल पड़े। मार्ग में दुर्दशा (व्याधि) से भेंट हुई, पूछा, किधर जा रही है। दुर्दशा ने उत्तर दिया, वह कौरवों के घर जा रही है। भगवान ने उसे पांडवों के घर भेज दिया। वहां पहुंचते ही उत्पात आरम्भ हो गए। एक दिन

कुन्ती-ननती दोनों बहनें साग-सब्जी लेने "शाड़"[1] गईं। वहां पर भीम के पेट पर उनमें बोलचाल, गाली-गलोज हो गया और कुन्ती को छोटी बहन ननती के हाथ मार खानी पड़ी। घर आकर कुन्ती ने भीमसेन को यह घटना सुनाई, तो वह तुरन्त कौरवों के घर की ओर चल पड़ा और उन्हें गाली-गलोज देने लगा। दुर्योधन बाहर आया और भीमसेन को प्यार से समझाने लगा कि भाई, स्त्रियों और बच्चों की बातों में आकर वैर उत्पन्न करना उचित नहीं। पर भीमसेन तो क्रोध से बावला हो रहा था, कहने लगा "शाड" पर हमारी माताओं का झगड़ा हुआ है, अतः जुआ खेल कर इस बात का निर्णय किया जाए कि वह "शाड" हमारा है या तुम्हारा ?

१. घर के साथ का वह खेत जहां साग-सब्जी उगाई जाती है।

५ : लोक-सुभाषित

बुझौण

कुल्लुई भाषा में हिन्दी प्रहेलिका अथवा बुझौवल को 'बुझौण', 'बुझौली' अथवा 'बुझणी' कहा जाता है। भाव की अभिव्यक्ति, मानव मस्तिष्क की भावधारा तथा साहित्य के विकास की सीढ़ियों को समझने के लिए इनका विशेष महत्त्व है। कुल्लू की सतलुज उपत्यका में प्रचलित कतिपय बुझौणे यहां उदाहरण स्वरूप दिए जाते हैं :—

आर बी झूलौ पार बी झूलौ
मांझे कैमटू फूलौ। (मक्खन)

छिरी बिरी पाची घोंणी छैं
ऐऊ बिरिक्षो नाग्रौं कै। (धनिया)

एकी भाई ए आ पेटा दी दांद। (कद्दू)

सौरा गाही मेरे बाकरी चौरा
सौर शूका ता बाकरी भौरा (लम्प)

पांजा भाई ए आ पीठी दी फौंटौ। (नाखून)

उछटी कोठी तंग चौड़ी
हेरना लैं मीठी खांदा कौड़ी। (रीठे)

ओरशा नाहो सफेद बाकरौ
परशा आओ लाल बाकरौ। (पोलड़ू, कचौरी)

पोरा ओरू आई रूई
तैं आंणो सारो झाट वजरूई। (कंघी)

पारा ओरू आओ दांद पचीकड़
आपणें बाबा लै बोल बारहे नीखड़। (देवता)

इतनी की तितिनी, भिआ जेई रांड
यांणें मांते ठोगी आंणे, दुर कांजरा रांड। (मिर्च)

काडो हांडी लाल भात
सित हांडेए लाई घूटा घाट। (फेडू फल)

गाशा आ मेरी कोंउल कटोरी
तेरे बाबै मेरी सिगड़ी चोरी। (चन्द्रमा)

गाशा आग तोशै पांणी। (हुक्का)

ओरशा पोरशा दूई घारै
मांझा नांगे धुआड़े। (चूल्हा)

इतनी तितनी छण छणांदी
बौडे हुईआ मोंशा खांदी। (मच्छर)

न्याहरे कड़ाउटा दी छीड़ी ओ ढेर
अन्न सोसतो पांणी मंघेर। (घुन)

मूंदी धौपे कीले बाहे
मेरो गू कीलौ खाए। (आटा और छलनी)

डीलर गाओ, पटीलर बाछू
हींगरा गाओ, बीजरा बाछू। (कंघी)

लौडड़ो छोटू मनघोरी
न खा आपू न देआ ओरी। (ताला)

पारा ओरू आई टी टा
तैए मूंहा दी डेउड शरा। (सूई-धागा)

पोरा अरू आओ टीकू भाट
आपू लौड़ड लामी खाट। (माश)

बखलैण (लोकोक्तियां)

कुल्लुई लोकोक्तियों का भंडार विशद है। इनमें जीवन के गहरे अनुभव मिलते हैं। बखलैणों में कृषि-जीवन से संबन्धित अनेकों कार्यों के अनुभव व्यक्त हुए हैं। उनमें एक अच्छे कृषक की विशेषताएं भी प्रकट हुई हैं और अकर्मण्य पर व्यंग्य-वर्षा भी की गई है।

देऊ बोला छेरीआ, सैणा बोला हेरिया।

(देवता 'देवता आने' पर ही बोल पाता है, स्याना व्यक्ति अनुभव की बात करता है।)

गर्मी पसीने गाही, तेभी पाछो जे पीओ पाणी
घरा आड़ेले बोलो, गाओ बाजो डाओ आणो।

(पसीने पर पानी पीना हानिकारक है।)

स्यांणे ओ बोल, आंबड़ेआ स्वाद, पाछा लागा मीठो।

(स्याने का वचन और आंवले का स्वाद देर में ही मीठा लगता है।)

जेंणी मां तेंणी घी
जेंणे हौल, तेंणी सी।

(जैसी मा, वैसी बेटी, जैसा हल, वैसी लकीर।)

कोदरै बाड़ो तोंगै
पैसे बोडो तोंगा पाडे।

(अन्न वाला, पैसे वाले से श्रेष्ठ।)

न्हयारी खाओ गाडा दी गाओ।

(अंधेरे में चोरी से खाना, नदी के किनारे गाने के समान व्यर्थ है।)

हीशी नी ना तापा।

(बुझी आग को कोई नहीं तापता है। निर्बल का कोई सहायक नहीं होता है।)

दूई जीऊ खिचड़ी घीऊ

(दो जीव, घी खिचड़ी,छोटी गृहस्थी मौज ही मौज।)

भौरी शीरे कुला विनाश,
भौरी जिमी बिऊ विनाश।

(बड़ा परिवार कुल का नाश, अधिक भूमि बीज का नाश।)

बोहू जिमीं हसला खांदी
बोहू जोई खसमा खांदी।

(अधिक भूमि और अधिक पत्नियां अहितकर।)

छारा दी मारी लात आओ मुंहाले।

(राख में लात मारने से वह मुंह पर आती है, दुर्जन को मुंह लगाने से हानि होती है।)

जी भात, ती शाठ काओ।

(धनवान का सब मान करते हैं। जहां भात वहां साठ कौवे।)

बाबे न मारी धूधती, बेटो तुवकदार।

(बाप ने चिड़िया तक नहीं मारी, बेटा तीसमारखां।)

खौटिया माटी, थाटिया बेटी।

(खेती कमाने से और बेटी सुशिक्षा से फलवती होती है।)

तोशी बील गाशाले।

(निचली मुंडेर ऊपर को। महान् उद्यम करना।)

घीऊ खाइया कुंदडू देयौ साख।

(चोरी छिपी नहीं रहती।)

दूध फोचो नो न धीआ, बरेई मारी नी धीआ।

(दूध गिरा दिखाई नहीं देता, बिल्ली मरी सभी को दीखती है।)

जुण तेरो मींणों सोआ मेरी जात।

(जो तेरा उपालम्भ, वह मेरा स्वभाव ।)

हुश्रो नो मारनो होंदा पोखणों ।

(जन्मा हुआ मार देना, नँदा होने वाले की प्रतीक्षा करना ।)

जूए तेंई दौही जुड़खी सौबी न मूंई ।

(जूं मारने के लिये कपड़ा जला डाला, और फिर भी जूं न मरी ।)

धाने भौरे कोठड़ू भौरे नाजे रे कोठे
पौढ़ता सभे गला, नहीं ता लेबेणें ओठे ।

(धन से विद्या उत्तम ।)

धाना रा थौग पराली आगे
मुशे रा थोग बराली आगे ।

(धान की परीक्षा सूखा पड़ने पर, चूहे की परीक्षा बिल्ली के सामने ।)

बाहे आलू कर्जा गालू ।

(आलू बीजने से ऋणमुक्त होना ।)

रोपे नहीं झोड़े नहीं बाथल निंड़ू, मुफ्त बेजा जिमीं ना खिड़ू ।

(क्यार में जल नहीं दिया, बाथल भूमि की निलाई नहीं की, तो समझो बीज व्यर्थ फेंका ।)

काती रा गाश सत्यानाश ।

(कार्तिक की वर्षा हानिकारक ।)

मंगसरे री मंगसीर, सोने री टीर ।

(मघर की वर्षा लाभप्रद ।)

बोल नहीं बातर भाली, फसल किहां संभाली ।

(विना उपयुक्त अवसर देखे फसल बीजने से लाभ कहां ?)

जिमीं नहीं कैरि नंडाई, भीक मौंगया खाई ।

(यदि खेत की निड़ाई नहीं की, तो भीख माँग कर निर्वाह करना पड़ेगा ।)

पौड़ कसालिए पोढकू मित्रा, पौड़ बीभैंश्रा पोढकू खेचा ।

(आपत्ति में मित्र और अकाल में खेत की पहचान होती है ।)

कोडूओ कोडूओ थू थू, मीठौ मीठौ हड़प ।

(कठिन कार्य से दूर भागना, सुगम कार्य के लिये आगे बढ़ना ।)

घीऊए भानै धौड़े, थूके लागी रेखे ।

(काफी व्यय करने के पश्चात् थोड़े से व्यय के लिये कृपणता ।)

माओ खाओ न पोलडू, बाबो न भीड़ौ चोलटू ।

(मां के हाथ की रोटी, पिता का दिया वस्त्र जिस कन्या ने नहीं देखे, वह बिगड़ जाती है ।)

खरी जौड़िये रोटी, बूरी माए बेटी ।

(तेज आंच पर पकी रोटी खाने से जैसे स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता, उसी प्रकार डांटने वाली मां के पास लड़की नहीं बिगड़ती ।)

गौ काकड़ी रा, तिम्ब्रे लागे तूंबी

(पौधा खीरे का फल तूंबी—धनी-मानी के घर कपूत ।)

हांडे ओ छवा आणू शैई, बेशेओ छवा आणू चैई ।

(चलते-चलते मार्ग में रात हो जाए, तो भले हो जाए, यदि बैठे-बैठे हो जाए तो पछताना व्यर्थ है ।)

घीआ री घड़ी दा, रूखो हाथ न आँवदा ।

(घी के घड़े से हाथ रूखा नहीं आता, सज्जन की संगति से लाभ ही होता है ।)

परदेसी मीत, पानै चीकटौ नहीं होंदो ।

(परदेसी मित्र नहीं होता, जैसे पानी में चिकनाई नहीं होती ।)

चुली री आग हौड़ी दी लागो।

(एक तिनके की आग जंगल को जला देती है, छोटा झगड़ा बड़ा बन जाता है।)

एक न सींचणों शाउरौ, दूजौ राजेओ दरबार।

(एक ससुराल और दूसरे राजदरबार से जितना लिया जाए, उतना अच्छा।)

चोरा ले बोला चोरी कर, साधा लै प्रधान।

(चोर से कहे चोरी कर, चौकीदार से कहे सावधान रहे।)

मंगल डेउआ मीन, सात पताड़ हुए सीन।

(जब मंगल मीन में होता है तो अत्यधिक वृष्टि होती है।

मुहावरे

पांचो पाणी। (पत्ते पर जल।)
छाती ओ कोल। (छाती में घोंसला।)
देशे देशे नाचाणो। (अपमानित करना।)
दान्द दी ओंठी पाणी। (दांत तले अंगुली।
थैली छनेरनी। (दिल खोल कर व्यय करना।)
थैली भरनी। (रीत का पैसा देना।)
काना पीछू बोलणो (मंत्रणा करना।)
शीले कोदरे साही चेकणों। (बुरी तरह पीटना।)
दान्द पचोकणें। (मुंह बनाना।)
पादा कै फुटदौ। (पतला।)
शीलौ पीशण। (ऐसा कार्य जिसमें काफी देर लगे।)
पाथर बोदलनों। (पत्थर बदलना, मार्ग त्यागना।)
गौड़ो काडडू। (गले का हार।)
थूके आरशू। (थूक के आंसू।)
सींउ ध्याड़ी ओ परेशौ। (दिन में दीपक जलाना।)

६ : कुल्लुई लोक-साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन

कुल्लुई लोक-साहित्य के विविध प्रकारों का यहां तक जो परिचय दिया गया है, उसके पर्यवेक्षण से कतिपय प्रश्न प्रस्तुत होना स्वाभाविक है। प्रथम, लोक-साहित्य साहित्य की कोटि में आता भी है या नहीं ? द्वितीय, लोक-साहित्य के संकलन से क्या होगा ? तृतीय, शिष्ट साहित्य को उससे किस प्रकार के लाभ की संभावना है ?

संस्कृत भाषा में 'साहित्य' का अर्थ लिया जाता है 'जो हित सहित हो।' भामह ने साहित्य को "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" की संज्ञा दी है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्", रस से युक्त वाक्य को ही काव्य मानते हैं। पंडितराज जगन्नाथ "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्" कहते हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार "साहित्य शब्द से साहित्य में मिलने का एक भाव देखा जाता है। वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रन्थ-ग्रन्थ का ही मिलन नहीं, किन्तु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अन्तरंग मिलन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी से संभव नहीं।"

जहाँ विश्वकवि साहित्य के द्वारा शेष सृष्टि के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होने की बात करते हैं, वहां प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'साहित्य' नामक लेख में साहित्य की परीक्षा के लिए दो कसौटियां रखते हैं—(१) जो सुप्त भावों को जागृत कर सके, या, (२) जिस में चमत्कार पूर्ण अनुरंजन हो। ये दोनों बातें साहित्य की परिभाषा निश्चित करती हैं। या तो जिसमें भावों की प्रेषणीयता हो या भाषा का कलात्मक चमत्कार। संस्कृत के साहित्याचार्यों के शब्दों में हम कह सकते हैं कि रसात्मक वाक्य और रमणीय अर्थ का प्रतिपादक वाक्य काव्य हुआ, साहित्य हुआ।

लोक गीतों में रसपरिपाक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है, यदि कहा जाए कि रस ही इन गीतों की आत्मा है तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। इन

गीतों में रस की वह निर्झरिणी अविरल गति से बहती हुई दिखाई पड़ती है, जो जन-जीवन को सदा आप्लावित करती हुई उसे सरल बनाए रखती है। इस सम्बन्ध में हमें सदा यह ध्यान रखना होगा कि लोक गीतों में रस-प्रतिष्ठा की स्थिति अभिजात साहित्य से भिन्न प्रकार की होती है। यहां पर रस उतना वस्तु-सामग्री में शास्त्रीय उपादानों से परिपक्व नहीं होता, जितना अभिप्रेत होता है। साहित्याचार्यों का रस-विधान लोक-साहित्य के रस-विधान पर लागू नहीं हो सकता। लोक-साहित्य में रस की उत्पत्ति स्वतः होती हैं, उसके लिए शिष्ट साहित्य के विभाव, अनुभाव और संचारियों की आवश्यकता नहीं। अतः साहित्यदर्पणकार की परिभाषा को देखते हुए लोक-साहित्य पूरी तरह साहित्य है। दूसरे, जीवन का जो गहरा संपर्क लोक-साहित्य को प्राप्त है, वह किसी भी शिष्ट वर्ग के साहित्य को नहीं। आध्यात्मिक और ऊंचा चिन्तन इसका विषय भले न रहा हो, पर धरती पर अपने जीवन की अनुभूतियां लोक साहित्यकारों के गीतों में व्यक्त हुई हैं।

जहां तक कुल्लुई लोक कवियों का सम्बन्ध है, प्रकृति के विशाल प्रांगण में, नीलाकाश की विस्तृत पुनीत छाया में, उनके जीवन के साथ-साथ उनका काव्य भी पनपता रहा, जिसे उन्होंने आडम्बर रहित सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त किया। हमारे लोक-कवि ने न तो छन्द शास्त्र का ध्यान रखा और न ही अलंकारों को बलात् भरने का प्रयत्न किया। उसे यदि आवश्यकता रही तो केवल भाव की, लय की, स्वर लहरी और मादकता की, जो प्रचुर मात्रा में कुल्लुई गीतों में विद्यमान हैं। लोक कवि के अपने अलंकार हैं, अपनी शब्द-योजना है, अपने मुहावरे हैं और अपनी गति और ताल हैं। उसके लोक गीतों में आदि-मानव से लेकर आधुनिकतम सृष्टि की संस्कृति तथा उसके उतार-चढ़ाव, उत्कर्ष-विकर्ष तथा संक्रमण का इतिहास बोलता है। उसके गीतों में जो भाव उद्भूत हुए हैं, वे असाधारण हैं, उनमें हिम-तुल्य शीतलता है, साथ ही जलन भी वैसे ही, जैसी बर्फ में हुआ करती है।

हमारे लोक कवि की कल्पना ऊंचे देवदारू के वृक्षों से भी ऊंची उठकर हिमाच्छादित गगन-चुम्बी चोटियों से टकराती है। यहां के गीतों में रस पहाड़ के दामन में छिटके हुए रंगारंग, मन-मोहक फूलों की तरह प्राकृतिक होता है। लोक गीत-सृजनकर्ता किसी विशेष विषय, रस, छन्द, अलंकार आदि के बंधन में बंध कर अपनी रचना नहीं करता। भावातिरेक में उसके हृदय से जो उद्‌गार फूट पड़ते हैं, वही झरनों की कल-कल के साथ स्वर मिलाकर वातावरण में बिखर जाते हैं। उनमें स्वतः रस-निष्पत्ति हो जाती है, अलंकारों की छटा परि-लक्षित होती है, भावों का स्रोत उमड़ पड़ता है।

अब रहा प्रश्न कि लोक-साहित्य के संकलन से क्या होगा, तथा साहित्य को

उससे किस प्रकार के लाभ की संभावना है ? श्री राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में हम कह सकते हैं[1] :—

"किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोक साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोक साहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित रूप है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि "भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने परिचित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य-परम्परा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है···जब-जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बंध कर निश्चेष्ट और संकुचित होगा, तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्त्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुशीलन से लोक साहित्य का ऋण स्पष्टतया प्रतीत होता है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक का काव्य लोक साहित्य की अमिट छाप को लिए हुए है। "हिन्दी भाषा जन्म से लोक-भाषा रही है और संस्कृत के साहित्यिक उत्तराधिकारी से भी अधिक उसे लोक-मेधा का अधिकार मिला है। हिन्दी ने अपने साहित्य के लिए जो प्रेरणाएं प्राप्त की हैं, वे अधिकांशतः लोक-सम्पर्क से ही की हैं।"[2] हिन्दी साहित्य के आदि काल का नाम ही आचार्य शुक्ल ने "वीरगाथा काल" दिया है। भक्ति काल के साहित्य के अन्तस्तल में लोक साहित्य की आत्मा स्पष्ट झलकती हुई दिखाई देती है। निर्गुण शाखा के प्रधान कवि महात्मा कबीर की रचना को बिना किसी प्रतिवाद के लोक गीत कहा जा सकता है। जायसी के पद्मावत को लोक संस्कृति का कोष कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी।[3] तुलसी का "राम चरित" साहित्यिक परिमार्जन से युक्त लोक-प्रचलित वार्ता ही है और "सूर सागर किसी चली आती हुई गीत-काव्य-परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।"[4] डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी सरीखे विद्वानों के अनुसार हिन्दी का सन्त साहित्य लोक साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। द्विवेदी जी का कहना है।[5]

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास पृ० ३. १६ भाग, सम्पादकीय
२. डा० सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५६६
३. राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास १६ भाग, सम्पादकीय, पृ० १४
४. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६५
५. जनपद, वर्ष १, अक १, पृ० ७१. हि० सा० बृ० इ. १६ भाग, सम्पादकीय में उद्धृत।

"इन मध्य युग के सन्तों का लिखा हुआ साहित्य—कई बार तो यह लिखा भी नहीं गया, कबीर ने तो "मसि कागद" छुआ ही नहीं था—लोक साहित्य कहा जा सकता है या नहीं ? क्यों कबीर की रचना लोक साहित्य नहीं है ? सच पूछा जाए, तो थोड़े से अपवादों को छोड़ कर मध्य युग के सम्पूर्ण देशी भाषा के साहित्य को लोक साहित्य के अन्तर्गत घसीट लाया जा सकता है।"

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के सम्यक् अनुशीलन के लिए लोक साहित्य की पृष्ठभूमि से परिचित होना आवश्यक है। यही लोक साहित्य संकलन का साहित्यिक दृष्टिकोण से लाभ है और अभिजात साहित्य के लिए उसकी उपादेयता।

कुल्लुई लोक-साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन हम भावपक्ष और कलापक्ष, इन दोनों दृष्टियों से करें तो ज्ञात हो जाएगा कि देश के अन्य भागों से कटे रहने पर, यहां के लोक कवि के कबीर के समान ही "मसि कागद" के न छूने पर तथा साहित्यिक परंपराओं से एकदम अनभिज्ञ रहने पर भी कुल्लुई लोक-गीत काव्य-सौष्ठव में किसी अन्य भाषा अथवा बोली के लोक गीत से हीन नहीं। लोक साहित्य के मान दण्ड से उसके दोनों पक्ष सबल हैं।

रस-परिपाक

कुल्लुई लोक गीतों में थोड़ी-बहुत मात्रा में प्रायः सभी रसों की अभिव्यंजना हुई है, परन्तु प्रधानता शृंगार और करुण रस की है।

शृंगार रस

लामण, झुरी, दशी, कुफ्फु आदि प्रेम-गीतों में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों अंगों का निरुपण हुआ है। दोहे अथवा रूबाई के समान अर्थ की दृष्टि से अपने में परिपूर्ण ये प्रेम-गीत संभवतः कुल्लुई लोक-कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनायें हैं। इनमें सूक्ति का-सा प्रभाव होता है और इन्हें सुनकर रस की पूर्ण अभिव्यंजना का आभास होने लगता है। उदाहरण के लिए देखिये :

साजने हाथड़ू जैणे गलाबा रे फूला
राची मिला सूपने, वैड़ी मेरी आखिये झूला।

प्रिय-सुधि में आत्म-विभोर नायिका अपने प्रियतम के अंग-अंग को याद कर रही है। प्रिय के वे हाथ, जिनमें गुलाब के फूलों का मादक तथा कोमल स्पर्श है, उसे सारी रात स्वप्न में दिखाई देते रहे। उसका चेतन, अवचेतन मन उन्हीं की आराधना करता रहा। वे हाथ रात को उसके सपने सजाते हैं और दिन में नेत्र-तारिकाओं में झूलते हैं।

लोक कवि ने एक अन्य अनुपम चित्र खींचा है :

तेरे मेरे सौंगिया भावारे लागी तियारी
मुस्कुए हासमें, नदरा रे डामे नियारी।

साजन और उसकी प्रेयसी परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बैठे हैं। प्रेम का अंकुर तो फूट पड़ा है, एक-दूसरे का सान्निध्य पा, देखने को जी चाहता है, पर अन्य लोग कहीं यह देख न लें। प्रेमिका धीरे से कहती है, साथी, मेरा-तुम्हारा प्रेम हो गया है, पर कहीं मेरे सम्बन्धी जान न लें, अतः केवल मुस्करा कर ही रह जाना, अपनी दृष्टि को रोके रखना, इसे मना कर देना, मेरी ओर न फिरे। उधर से वह उत्तर देता है :

बाता जागे ठहरी, पांणीओ सोगरू बौहा,
जीभा ता न्यारू तौ, आखी न धौड़ी ए रौहा।

क्या करूं जिह्वा को तो बस में कर रखूं, उसे रोके रखूं, पर इन नेत्रों का क्या इलाज, ये तो एक पल के लिए भी शांत नहीं रहते, तुझे देखते रहते हैं।

उसे अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य ने पागल बना रखा है। वह कहता है, किस के हैं वे हाथ, जिन्होंने इस मूर्ति को बनाया।

सूनौ घौडो सुनिए, रूपो घौडो सनारे
कूंणी घौड़ी रे मूरता, जीवा बी झरांउदी म्हारे

सुनार ने सोने और चांदी की मूर्तियां बनाईं, पर यह मूर्ति किसने बनाई, यह हमारे मन को उद्वेलित कर रही है।

संयोग शृंगर से भी अधिक वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति में लोक कवि का मन रमा है। किसी सुन्दरी का प्रियतम विदेश गया। महीनों बीत गए, वह लौटा नहीं, वर्षा ऋतु का आगमन हो गया। अन्य सहेलियां अपने प्रियतम के संग सुहाग भोग रही हैं, किन्तु वह बेचारी अपने कान्त के आने की बाट जोह रही है :

काड़ीए बादड़ीए मूइए
बरखांदो मेहू बे।
किआ बरखे लोकड़ीए मूइए
बागुरे बारूरा बे
कान्ता दासावरया प्रिया,
धौरे कीले न आया बे।
आंऊ आंऊ घोरड़िये मूइए,
लेई आणूं तोखले चोड़टू बे।

आग लागे प्रिय तेरी चाकरिये
मूना लोड़ी तेरो चोडटू बे।
कान्ता दासावरया प्रिया,
घौरे कीले न आया बे।

"मेरे कान्त, परदेसी कान्त, घर क्यों नहीं लौटता ? देख, यह काला बादल मेह बरसा रहा है, प्रिय घर आ जा।" उत्तर मिला, "मेरी गृह-स्वामिनी, मैं आया ही चाहता हूँ, तुम्हारे लिए नवीन वस्त्र भी लेता आऊँगा।" वह शायद विदग्ध हृदय की तड़पन से अनभिज्ञ रहा हो, अतः खीझ के साथ वियोगिनी ने कहा, "आग लगे तेरी चाकरी में, मुझे वस्त्राभूषणों की आवश्यकता नहीं, तू आ जा, आ जा।"

भाग्यवश साजन के देश से कुकू पक्षी उड़कर वहाँ आ पहुँचता है। विरहिणी उसे देख प्रसन्न हो गई, आखिर साजन के देश से आया है न, इसे देख उसकी स्मृति बनी रहेगी। इससे बातचीत कर अपने मन की भड़ास निकाल पाएगी। साजन तो भूल गए, कुकू तू भी मुझे छोड़ कर चले न जाना :

बाशो वे मेरे कुकुआ
पांछिया दूरो बे उड़ी रोनी जाणा,
चुगा बे चुगा तोंये मुख्ता
कुकुआ मेरे बे हाथो रा खाणा।
तेंई दी बोलो खोरी पांखड़ी सोजो
सोजो जेरा लो टोसरी बाणा।
साजनो रे देशो दे आये पांछिया मेरे,
छाड़िनी हामो पापिआ बूरा नी लाणा।
दूरो पारो रे साजणे बिसरे हामों
तेरे रवाले दा म्हारे जोवर्डू लाणा।

'हे कुकु पक्षी, बोलते रहो, चहकते रहो, लेकिन उड़कर कहीं दूर मत चले जाना। उड़ते-उड़ते इधर-उधर का दाना-दुनका तुमने जी भरकर चुग लिया होगा, एक बार मेरे पास भी तो आओ, मैं तुम्हें अपने हाथ से खिलाऊंगी। प्यारे पक्षी, तुम कितने सुन्दर हो। तुम्हारे ये पंख कितने मनमोहक हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुमने रेशम के सुन्दर वस्त्र पहने हों। तुम मेरे साजन के देश से आए हो न ? मुझे छोड़कर कहीं मत जाना। मेरे साजन तो अब परदेशी हो गए हैं, तुम्हें देखकर मेरे मन को शान्ति मिलती है, तुम्हारे संग मेरा जी बहल जाएगा।"

प्रतीक्षा

पक्षी मिल गया, कुछ सहारा मिला, किन्तु साजन को भुलाया नहीं जा सकता, उस के आगमन की प्रतीक्षा में वह पलक-पांवड़े बिछाए बैठी है। सुबह से शाम हो जाती है, शाम रात में परिवर्तित हो जाती है, किन्तु वह साजन की प्रतीक्षा में बैठी ही रही। उसके आने की बाट जोहते-जोहते अब आंखें भी धुंधिया गई हैं :

सौहंज पाई सौंजडी औग भौकली गीठे
तौं निह लदे भालदे, औखी रे डहलू बैठे।

कभी मन में विचार उठता है, कहीं साजन रूठे तो नहीं, उसके रूठने की बात से ही सारा शरीर सिहर उठता है। यदि साजन रूठ गए तो किस प्रकार यह जीवन व्यतीत होगा। नदी के किनारे प्यासी मरती टाटरू (टिटिहरी) को लक्ष्य कर कहती है :

नदी रे खाटले मौरो टाटरू चीशे
जिना रे रूशे साजना झूरिये,
तिनगो जीवणा बोली कीशे

एक ओर साजन की प्रतीक्षा, दूसरी ओर उसके रूठ रहने की चिन्ता, ऐसी परिस्थिति में छाती विरह-अग्नि, अथवा चिन्ता से जलकर कोयला न बने, यह कैसे संभव है। कुल्लुई विरहिणी ने अनेकों गीतों में अपनी छाती में आग की भट्टी जलने, छाती का जलकर कोयला हो जाने, कलेजा जल जाने की बात की है। वह कहती है :

छाती जोलिए हुई भस्म
कौगड़ी जोलिए धूड़ा।

छाती जल कर भस्म हो गई, कलेजा जलकर धूल बन गया।

छाती रा केरू जालिए कोयला
लूहारे रे भोरठे साही।

छाती का जलकर कोयला बन गया। अब मेरी छाती इस प्रकार जल रही है जैसे लुहार की भट्ठी।

निर्मम प्रेमी की अवहेलना देख वह चीख पड़ती है :

छाती रा कोरू कोयला फिकरे
आजी बी बोल सा धीरा।

चिन्ता के कारण छाती का कोयला बन गया, वह अब भी कहता है, प्रतीक्षा करो।

यह जलन एकपक्षीय नहीं। साजन भी इसी प्रकार तड़प रहा है। उसे अपनी प्रेयसी की अनुपस्थिति में दिन को भी अन्धकार मालूम होता है :

छेके एजी ए भेचिए,
तों बाहजी हुआ निहारा।

मेरी भेची प्रेयसी, शीघ्र आ जा, तेरे बिना मेरा घर अन्धेरा हो गया है।

नायिका अपने नायक के आगमन की प्रतीक्षा करती रही। जब आया तो करुण स्वर में उलाहना दिया :

हीज पौखू थे परसरामा तू हीज कैईनी आओ
भाता चाणों काड़ो बेगमी रो, आशू ओलणें खाओ।

प्रिय मैं कल तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। मैंने काली बासमती के चावल बना रखे थे, जो मुझे स्वयं ही आंसुओं के सालन के साथ खाने पड़े। आंसुओं के सालन के खाने की बात में नायिका ने अपने सारे भाव उंडेल दिए हैं।

चिन्ता

नायक संभवतः पराधीन था, परिस्थितियों की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ। प्रेयसी से मिलने को आतुर, किन्तु असमर्थ। अपने दुर्दैव के सम्बन्ध में सोचते-सोचते उसका हृदय भी शिथिल हो गया था :

सूंची सूंचीओ हिकठू बाजिगो शाणो
कीता सूंचू मरनों, कि सूंचू चाकरी जाणों।

अब वह यही प्रार्थना करता था कि ईश्वर या तू मुझे मृत्यु दे दे, या मुझे इन बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए चाकरी करने जाना पड़ेगा।

नायक की विवशता का अनुभव कर नायिका उसे समझाती है :

झौरी न करनी, झौरी ए जाड़ले मरी
नाई जाणा वर्षे, विख लागा पाउली हरी।

चिन्ता चिता है, जिसमें जलकर मर जाते हैं। अरे, वर्ष बीत जाते हैं, दिन बदल जाते हैं, देखते नहीं, हेमन्त के पश्चात् वसन्त आता है। उसे सांत्वना देते हुए वह कहती है :

चीला री बूटी ए, आगू नाहे पौन्द्रह लाहै,
घिरी मेड़में फीरीओ, राजी लोडे नारणें डाहे।

प्रिय, चिन्ता व्यर्थ है, यदि जीवन रहा तो फिर मिलेंगे। केवल नारायण से यही प्रार्थना है कि वह हमें राजी (कुशल) रखे। हाँ ध्यान रखना :

शुकलै छापरा, वेशै न काड़ै कावा,
मीठे आ गींहूआ, चूटे न बाड़ा रे भावा।

हमारा जो बचपन का प्रेम है, वह टूटने न पाए।

दोनों ने प्रण किया था कि वे दोनों किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाह नहीं करेंगे। इस प्रण का साक्षी उन्होंने हाटू के मंदिर की काली को बनाया :

हाटूए मांदरे, काली आंमे दूइए पूजी
तून नाहे ओरीले, मू न आणू बौठी दूजी

पर भाग्य की विडम्बना, नाणी को किसी दूसरे पुरुष से विवाह करना पड़ा। एक दिन नाणी अपने क्यार में धान की रोपाई कर रही है। पास ही उसके प्रेमी का खेत है, जहाँ कोई भी धान रोपने के लिए नहीं :

रोपेये भींडीए हौरी शूकी धाना रे कोई
रीलू शूकौ भौरीए, नांणी फूकी खोड़ीए रोई।

प्रेमी घर का अकेला है, न माँ, न बाप, भाई-बहन नहीं, हाटू की काली के सम्मुख किए गए प्रण के अनुसार उसने विवाह भी नहीं किया। उधर नाणी का घर भरा-पूरा, सब कोई तो है। धान रोपने का समय है, क्यार में चारों ओर लोग अपने खेतों में धान रोप रहे हैं। नायिका के खेतों में समयानुकूल हंसी-खुशी, चहक-कुहक, पर नायक ने जो धान का बीज बो रखा था वह भी अब सूखता जा रहा है, न कोई साथी, और न ही मज़दूर। खेती तैयार कर रखी है, पर धान रोपे कौन ? नायक अपने खेत में खड़ा चिन्ताग्रस्त है, उसका हृदय रो रहा है, क्या उसका यही भाग्य है, क्या अपने प्रतिद्वन्द्वियों के सम्मुख उसे सदैव लज्जित होना पड़ेगा ? उधर नायिका अपने खेत से यह सब कुछ देख रही है। दिल चाहता है, अभी दौड़ कर नायक के पास जाए, और उसे आश्वासन दे। यदि आवश्यक हुआ तो स्वयं धान की रोपाई करे। पर हाये री मजबूरी, जाए कैसे, उसके पति के घर के अन्य सभी सदस्य साथ हैं, यदि गई तो घर वाले तथा समाज क्या कहेगा ? नायक से भी अधिक द्विविधा में है नाणी। बिना पंख के पक्षी समान, जिसका जन्मजात स्वभाव है उड़ना, पर

बिना पंख जो उड़ न सके। विवश, हताश नाणी रो पड़ी।

सुख किसे मिला, माता के गर्भ के अन्दर भी सुख नहीं। जीवन दुखमय है, और दुख की इस लम्बी कहानी के कुछ क्षणों को सुखमय बनाने के लिए लामण का सहारा लिया गया :

सुखा रे लामणा, दुखारे लाणे गीता
सुख न लीन्हदो माँ रे गर्भा भीता।

भाग्य

नायिका चिन्तित नायक को आश्वासन देती है, कि यह हमारे कर्म (भाग्य) का दोष है, जो हम बिछुड़े हैं।

बीजीए गेंणी ए, जग मुग लागे तारे,
हांमें न बिछड़े, कोर्मा बिछडे म्हारे।

साजन, हम नहीं, हमारे कर्म बिछुड़ गए हैं। यों भी किसके मन की बात पूरी हुई है, जो सोचा जाता है, वह यदा-कदा ही पूर्ण होता है :

खौड़ी क्वाड़िए लागो नारैणा रून्दो
भूजो नंहिरे जोमदौ, सूँचा न रे मोना रो होन्दो।

जिस प्रकार भुना हुआ बीज अंकुर नहीं निकालता है, उसी प्रकार अभिलाषा भी पूर्ण नहीं होती। किन्तु हताश होने की आवश्यकता नहीं :

भूजौ नही जोमदो, सूंचो नांई मोना रो होन्दो
जौ लिख्रो कोरमे, सौ नहीं किदरी जांदो।

यह ठीक है कि भुना हुआ बीज उगता नहीं और मन की अभिलाषा पूर्ण नहीं होती, पर जो भाग्य में लिखा है, वह तो कहीं नहीं जाता। प्रकृति के उपकरणों तथा प्राकृतिक घटनाओं का उदाहरण देकर बात और अधिक स्पष्ट की जाती है :

चन्दा सुरजा जोथे, गारौणा लागा
सबी पड़ा विपदा, सबी ए होम्रा औरे भागा।

सूरज और चन्द्रमा तक को ग्रहण ग्रास बना लेता है। इस संसार में सब को विपत्ति का सामना करना पड़ता है और सभी के भाग्य अपूर्ण होते हैं।

विधाता

प्रेमी अपनी प्रियतमा को प्राप्त न कर सका। हर प्रकार के प्रयत्न किए किन्तु सब निष्फल। हार कर कह बैठता है :

लिखदा लिखदा बिआ माथैं विसरो थूरो
एखुलै पूरो, एखुलै लिउओ औरो।

बीमा (विधिमाता) विधना भी अब बूढ़ी हो चली है, भूल जाती है, उसके विचारों की शृंखला टूट जाती है, अतः किसी के भाग्य में पूरा और किसी के भाग्य में अधूरा लिख छोड़ती है। अपने दुर्भाग्य की शिकायत नायक अत्यन्त दर्दीले शब्दों में इस प्रकार करता है :

औरे भागा रे औरे मेरे कमाए
पांणी पींदे डेउतौ, तिंदा शूके बौंहदे नौए।

रे, मेरे भाग्य अपूर्ण, मेरी किस्मत अधूरी। पानी पीने गया तो सदा बहने वाले नदी-नाले भी सूखे मिले।

सन्तोष

ऐसी परिस्थिति में सन्तोष का ही सहारा लेना पड़ता है :

बाथू रे बुल्को तेला ए लाइणों लिता
सेजा खाई रिज़का, जुण नारोणे दित्ता।

बाथू की सबजी और उसमें तेल का तड़का, यही कुछ खाने को मिलता है। पर इस में हमारा क्या वश, वही कुछ खाना चाहिए, जो भाग्य में लिखा है, नारायण ने जो 'रिज़क' दे रखा है, वही प्राप्त होता है।

विश्वास नहीं होता, हमारे ही ऐसे बुरे भाग्य हैं, संभवतः विधिमाता कोई भूल कर बैठी :

बिधि मातो हाथड़ू भूली के बिसरी गेओ
लिणों तो ओरी लै, म्हारी कमाइए पाओ।

विधाता के हाथ भी गलती कर जाते हैं। जो कुछ किसी अन्य व्यक्ति [illegible] की 'कमाई' (भाग्य) में लिखना था, वह मेरे भाग्य में लिख डाला।

सन्तोष की यह स्थिति सदैव नहीं बनी रहती, अनेक बार मन [illegible] कर उठता है, अन्याय को कैसे सहन करे, सदैव अपनी अभिलाषाओं [illegible] में मिलते कैसे देखे। यह ठीक है कि

ठंडें पाणी रे डिभणू जोड़ी पिऊ मानाले
एका बे लिखू कलम दवाते,
एका बे छिड़ी रे डाले।

विधाता ने किसीका भाग्य कलम-दवात से बना-संवार कर, सुन्दर-स्पष्ट शब्दों में लिखा और किसीका लकड़ी की डाली से अस्पष्ट। पर विधाता के लेख को स्वीकार कर बैठे नहीं रहा जा सकता। वह विधाता ही क्या जो न्याय न कर सके। ऐसी विधिमाता के तो हाथ ही काट डालने चाहिए :

खीर गंगी रा पघरू कायलू धारें ही तीके
भेटी न काटणो विधि माते रे हौथड़ू धाऊड़े कागज लिखे।

वह विधिमाता, जिसने अधूरे कागज़ (भाग्य) लिखे हैं, यदि मुझे कहीं मिल जाए तो उसके हाथ काट दिए जाएंगे।

विरह

प्रेमी से बिछुड़े अभी महीना भर ही हुआ होगा, किन्तु प्रेमिका यह अनुभव करने लगी है कि वर्षों व्यतीत हो चुके होंगे। विदाई लेते समय वह आश्वासन दे गया था कि एक मास पश्चात् लौट आएगा। नायिका के लिए यह महीना बिताना भी कठिन हो रहा है। वह कहती है :

खाईओ पाथरू गोंचा गोबरो सीनो
लोगे घाड़ी बौर्षे, मेरे नीसौ घावड़ी महीनो।

लोगों ने प्रतीक्षा में वर्षों व्यतीत किए, किन्तु मेरी दशा यह है कि एक महीना भी नहीं बीत रहा है। इसी प्रकार 'लाडी शांउणी' के गीत की नायिका एक घड़ी भर की भी प्रतीक्षा करने में अपने आप को असमर्थ पा रही है :

लाडी शांउणी ए,
लोगे बौर्षे घाड़ी
घौड़ी नीसी घाड़त्री।

लाड़ी शांउणी, अन्य विरहिणियां प्रियतम की प्रतीक्षा में बरसों बैठी रहीं, तुम्हारा यह विरह कैसा ? एक पल भी असह्य हो गया, तुम एक पल की देर सहन नहीं कर सकी।

एक अन्य नायिका की दिन गिनते-गिनते अंगुलियों की पोरियां तक घिस गई हैं :

छाहटी छोलेद चूटो जेरी शेलोरी डोरी
दिनणू गोणदे घोशी गूंठी री पोरी।

दही बिलोते जिस प्रकार चरखी में बंधी रस्सी एक ही स्थान पर घूम कर घिस-घिस कर टूट जाती है, उसी प्रकार तेरी प्रतीक्षा में दिन गिनते-गिनते मेरी अंगुलियों की पोरियां भी घिस गई हैं।

उधर नायक की भी यही दशा है, उसे जब प्रिया की सुधि आती है तो सारी रात सो नहीं सकता :

लहनी नालिए तुबकु, शीह्रा कोठे रा कूंदा
याद लागी एंदी भूरी री, रात नी निंदरे सौंदा।

किन्तु विवश है, भूरी दूर देश में है :

जौथ निकती चांननी, ओपी औंधला सीडू
भूरी छूटी दूरा देशा न पांखा गोऊ हींदा चीडू।

मनुष्य भी क्या बना है, हाथ-पाँव हैं, पर पक्षियों के समान पंख नहीं। पंख होते तो उड़ कर भूरी के पास दूर देश पहुँच जाता।

संदेश

सारौ डेउआ शांउणा, सारौ डेंउओ भौद्रो महीनो
दुखिओ सुखिओ, चीठी न कागदू दीनो।

प्रेमिका चिरकाल से प्रेमी के पत्र की प्रतीक्षा कर रही है, किन्तु परदेसी ने अपने सुख-दुःख का पत्र तक न दिया। वह अपनी ओर से ही पहल करती है :

तोमें आ नेउड़ी हामें बोड़ें सराजी,
सुख साना तोमा ले, हामेया बहुता राजी

तुम मैदानी भाग (गर्म देश) के रहने वाले हो, और हम सराज (पर्वत शिखरों) के। हम यहाँ सकुशल हैं, ईश्वर तुम्हें सुख से रखे।

संभवतः नायक को सन्देश मिल जाता है अतः वह उत्तर में कहलवाता है :

आई गेओ शौउजा, आई गेई काती की लौई
ऐणो बोले भूरीले, आपणे कीना दी रोहे।

असौज का महीना आ गया, कातक मास में होने वाला लवी का मेला भी आ गया। मेरी भूरी को यह संदेश दे देना कि जब तक मैं न आऊँ वह अपने

"कीना" धर्म का पालन करती रहे।

जब कभी नायिका ज्योत्स्ना को संदेश-वाहिका बनाती है और परोक्ष रूप से अपनी तुलना चन्दा की चांदनी से करती है :

जोथा दाइए तू लाए लाम्बड़ी झाड़ै
ती कौरे रोशनी, जी बौसा साजना म्हारे।

प्रिय चंद्रिका, तू वहां प्रकाश करना, जहां मेरे साजन बसते हैं। तेरे प्रकाश को देख, संभवत: उन्हें मेरी सुधि आ जाए।

चन्द्रमा विरहिणी को यदि कहीं जलाता है, तो कहीं सांत्वना भी देता है :

जोथा बोला दाईए बोडौ कौरू आसरो तेरो
लोगू ए गे देशादी, जीऊ दुआसुओ मेरो।

बहन "जोथ" (चंद्रिका), पराये देश में मैं तेरा बड़ा सहारा मानती हूँ। जब-जब मेरा मन उदास हो जाता है तब तब तू ही मुझे सहारा देती है।

रीलू (नायक) अपनी नाणी (नायिका) को कहला भेजता है कि वह अपना संदेश बाग के मधुप के हाथ भिजवाए :

ध्याडा नौहठो औडिया, जोथा लागे लूहाहू
कीता भेजेया बागेरा भौंरा, कीता फिरदा माहू।

जब सूर्य अस्त हो रहा हो और उसकी किरणें पर्वत-शृंगों पर पड़ रही हों, उस समय, प्रेयसी, तू बाग के भ्रमर या घूमने-फिरने वाली मधुमक्षिका को अपना सन्देश-वाहक बना कर भेजना।

नायिका को भी संदेश-वाहक के रूप में भ्रमर ही प्रिय लगता है, वह कहती है :

कागुन छाडनु, कागु देंदो चुगली पाई
पाटु छाड़े भौंवरा, वेशी देआ कुशाड़ी लाई।

अपना संदेश कौआ के हाथ न भिजवाना, वह तो चुगलखोर है। संदेश भ्रमर के द्वारा देना ताकि वह मेरे पास बैठकर चुपके चुपके तुम्हारा मंगल-समाचार सुना सके। इससे पूर्व नायक कौए को अपना संदेश दे गया था :

काडेआ कावा मेरी बालांदिए नाये
चिठे देऊं लिखैओ, नाणीं ए मोठणै पाये।

उसने कौवे को कहा था, मेरी प्रेयसी के घर चले जाना। तुम्हें चिट्ठी लिख कर दूंगा, उसे नाणी की गोद में डाल देना।

स्मृति

रीलू नाणी के रूप-सौन्दर्य की याद करता रहता है :

जेभी सोठू नाणी ए ढीली तेरी गाची्रो ठांणों
भौरी छूटा चिलिमा, खौरी छूटा भूखियों खाणों।

नाणी जब मुझे तेरी पतली कमर और उस पर बंधी गाची[1] का स्मरण हो आता है, तो भरी हुई चिलम और भूख पर भोजन भी भूल जाता हूं।

प्रिया-सुधि में आत्म-विभोर नायक बीते दिनों की याद करता है और अब जिस-जिस मार्ग से उसकी नाणी आती-जाती थी, उसे भी वह प्यार करने लगता है :

चीकनी माटीए, खुज लागी नाणी ए तेरे
जैहा बाते तू हांडे, सौ बाता गौरती मेरे।

लोक-कवि ने नायक को इतना प्रेमविभोर कर दिया है कि वह प्रकृति का भी मानवीकरण कर देता है। "चील की बूटी" (चील वृक्ष) से वह अपने हाथ पसारने की प्रार्थना करता है, जिससे उन्हें पकड़कर नदी को पार कर सके और अपनी प्रेयसी से मिल सके :

चीलारी बूटी ए, लाम्बे दे लाम्बे लधारै,
अोरू दे गे हाथड़ू, मेरे आंणों नैइए पारै।

चील के छोटे वृक्ष ! तू जोर-जोर से हिल, अपने हाथ आगे बढ़ा, मुझे नदी पार आना है।

वियोग-खंडिता नायिका का सुन्दर चित्रण अनेक गीतों, लामणों में मिलता है :

देखी हेरे रिलुआ तेरे धरा-वणा रो चासो
अोरी ले नेसरा, मूले शुनअ-फाकुलअ डासो।

गडरिये, देख लिया है मैंने तेरे घर का हालचाल। क्या तेरी यही प्रीत है कि दूसरों (अन्य प्रेमिका) के लिए तू नेसरे[2] पर्वत शृंग से लाया और

१. लम्बी बारीक चादर जो कमर में लपेटी जाती है।
२. पर्वत पर उगने वाली सुगन्धित बूटी

मेरे लिए केवल खाली फाकुला[1] (जिसमें भरा हुआ नेसर औरों को बांट चुका है)।

गान्धा और नेसरा लाणें दे नाणी ए ओरी
फूल-स्पाड़िये ताले आणूं नाणीए चोरी।

इस दुर्गन्ध युक्त नेसर को, हे नाणी, तू अन्य लोगों को पहन लेने दे। तेरे लिए तो में स्पाड़ी का फूल (जो नेसर के पत्ते से भी अधिक खशबूदार होता है) चोरी कर भी ला दूंगा।

फूल स्पाडियो किदी पाणों रीलुआ मेरे
छाड़ कोरे छिदरा, धाची न बोलणी तेरे

रीलु मुझे स्पाड़ी पुष्प से क्या लेना है, मैं तेरा प्यार देख चुकी हूं, तू मेरा राजीनामा (तलाक) कर दे, तू मुझे पाल भी न पाएगा।

करुण रस

कुल्लुई गीतों में करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती है। स्त्रियों के 'छींजा गीतों' में करुण का सागर उंडेल दिया गया है। पुत्री की विदाई के गीत भी करुणा की साक्षात् प्रतिमूर्तियां हैं।

किसी नवविवाहित वधू को उसकी सास ज़हर दे देती है, मरने से पूर्व वह अपनी माता को सन्देश भेजती है कि मुझे तो मेरी सास ने ज़हर दे दिया है, मेरी मां, मेरी उपभोग की जो वस्तुएं तुम्हारे पास पड़ी हैं उन्हें मेरी सहेलियों में बांट देना। उधर अपने पति "सास के पुत्र" से भी कहती है, आप बैठे रहना। हम तो तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं:

एक सडेउ[2] मेरी आमां बोले
साइओ देणों बांडी-बांडी बे।
बांडी-बांडी आ दे मेरो गुड़ी पटारा
साइओ देणों बांडी बांडी बे।
एक सडेउ मेरी आंमा बोले
बेशो जै बेशो गे शाशुआ पुत्रा
हांमे होंणे तीर्थ बाहरी।

पति संभवतः उस से प्रेम करता था, अतः कहने लगा:

१. ऊन का बना हुआ थैला।
२. संदेश।

ऐणे न बोलो ईना वेणंआ
शांगे दी पौड़ा म्हारे छूरी वे।

इस प्रकार की बात न करो, इन्हें सुनकर मेरे गले पर मानो छुरी चल रही है।[1]

राजा गोपीचन्द की गाथा करुण रस से ओत-प्रोत है। माता अपने पुत्र को स्वयं नहलाती थी, अपने अधिकारों का अपहरण होता देख रानियों ने समझाया और एक दिन सूर्य की किरणों से तपाया जल, चन्द्रमा की चांदनी में "तपाया" गोमूत्र माता ने आंगन में रखा और गोपीचन्द को नहाने के लिए बुलाया। गोपीचन्द ने उत्तर दिया, "मां तुम्हारे हाथ से मैं अपना सिर नहीं नहलाऊंगा, मेरी पन्द्रह रानियां मेरा सिर नहलाएंगी।" माता ने कहा, "जब तुझे दस महीने पेट में रखा, तुझे दूध पिलाया, उस समय कहां थीं तेरी ये १५ रानियां ?" माता ऊपरली मंजिल के "तोंग"[2] में चली गई, वहां से वह गोपीचन्द में हुए परिवर्तन पर विचार करने लगी। सहसा उसकी दृष्टि श्मशान की ओर गई, वहां उसने देखा, मृत शरीर जलाया जा रहा है, पलभर में ही वह शरीर भस्म की ढेरी में परिवर्तित हो गया, माता की आंखों से अश्रु टपक पड़े। तोंग के नीचे नहाने को तैयार गोपीचन्द बैठा था। अश्रु-जल उस पर आ गिरा। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में देखा, आकाश देखा, न बादल गरज रहे थे, न बिजली थी। यह जल की बूंद कहां से आई ! ऊपर तोंग से गोपीचन्द को देखती हुई माता ने उत्तर दिया, बेटा, न बादल गरजे, न बिजली चमकी, यह जल की बूंद तेरी माता के अश्रु हैं।" पूछा, "माता तू क्यों रो रही है ?" उत्तर मिला, "बेटा सामने श्मशान में एक मृतक को जलाया गया, विचार उठा, कहीं तुझे भी लोग इस प्रकार न जलाएं।" गोपीचन्द ने कहा, "माता कोई युक्ति बता दे, किस प्रकार काया अमर रह सकती है ?"

सूरजी झाड़ा के पाणीं तपाउओ
चौन्दरे झाड़ा के तपाउओं गोंचा
तोंगा पाडे आणींआ छाड़ौ।
तेरे बी हाथे माइये शीरा नहीं न्हैउंदो
शिरा न्हैंआं मेरी पौंदरा राणी
जेभी धीनौं तौ दौशमासै उदरे
तेभी कीती तेरी पौन्दरा राणी।

१. छींजा गीतों के लिए देखिए तृतीय अध्याय।
२. बरामदा।

उत्तरा दी देखू पोछमा दी देखू
कीदैं नहीं बादड़ी काड़ी
पूर्वा दी देखू दोखणों दी देखू
कीदा पौड़ी पाणी ए बरुरा ।

ओ बादल न गरजे माता, बिजली न चमके यह ठंडी बूंदा कहा से आई बे ।
ओ बादल न गरजे गौ बेटा, बिजली न चमके महलै जे बैठी रोन्दी तेरी माई बै ।
नदी ए जै किनारे बेटा एक मुर्दा जलाया जलफल होंदी भस्मा दी ढेरी ।
ओ हड्डी तो जल गई बेटा लकड़ जैसे मांस जड़िया जैसा बन का घास ।
ओ जो यह बुध दे दे मेरी माता, किस विध रहेगी काया अमर जी ।

शांत रस

गोपीचन्द के इस गीत का अन्त संसार की असारता, शरीर की नश्वरता से होता है । इस प्रकार की भाव-व्यंजना राजा भरथरी के गीत में भी है :

काची बर्णीं काया कोठड़ी
झूठा बणां सणसार,
चौऊ दिंने राजा जीउणा
छाडी देणां घर बार,
समझें शुणे राजा भरथरी ।

यह काया कच्ची है, संसार झूठा है, जीवन केवल चार दिन का है, उसके पश्चात् यह संसार त्यागना है, अतः राजा भरथरी, घरबार त्याग दे ।

देवी-देवताओं के स्तुति विषय के गीत, भेंटें, नटावक तथा ब्रह्मखाड़ा के भजनों में भी शान्तरस का सुन्दर परिपाक हुआ है । 'दामोदरदास' का भजन "बीत गया दिन भजन बिना, समझत नहीं मूढ़मना" तथा कबीर और नामदास के भजन, जिन में ऐहिक जीवन की निस्सारता प्रदर्शित है, इसके अन्य उदाहरण हैं ।

कला पक्ष

यहाँ तक हमने कुल्लुई लोक-साहित्य के भाव पक्ष पर विहंगम दृष्टि डाली । कला पक्ष का अगले पृष्ठों में विवेचन किया जाएगा । इसके अन्तर्गत हम अलंकार, शैली, प्रतीक, यौन तत्त्व और छन्द विधान पर विचार करेंगे ।

अलंकार

कुल्लुई लोक-गीतों में अलंकार कहीं-कहीं अवश्य उपलब्ध होते हैं, परन्तु इन्हें आयास पूर्वक नहीं लाया गया है। लोक-गीतों के अलंकार-विधान की यह सर्वप्रमुख विशेषता है। हमारे लोक-गीतों में शब्दालंकारों में अनुप्रास, छेक तथा वृत्यानुप्रास—और अर्थालंकारों में उपमा का बाहुल्य है। उपमाएं मौलिक हैं, रूप-साम्य के आधार पर प्रयुक्त की गई हैं। साथ में ही उनके गुण और प्रभाव के साम्य का भी ध्यान रखा गया है। उपमान मूर्त और अमूर्त दोनों हैं। उपमा के अतिरिक्त रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टांत के भी थोड़े-बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं। अनुप्रास के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि लामण में उनकी प्रचुरता पाठक स्वयं देख चुके होंगे।

उपमा

लोक-गीतों से प्रयुक्त उपमा की एक विशेषता यह भी है कि इसमें एक विचित्र प्रकार की सादगी, नवीनता और मौलिकता है, जो कृत्रिम कविताओं में देखने को नहीं मिलती।

कुल्लुई लोक-कवि ने प्रिय द्वारा विस्मृत नायिका की तुलना उस तूँबे से की है जिसे राही मार्ग में ही भूल जाता है :

चीटी कोहेड़िये, रोही लुम्बिया लूम्बी
साजणे घाली बिसरी बांटोए
हाटिये डेरे दी जेरी तूम्बी ।

री सखी, यह उजली कोहेड़ (धुन्ध) सदा इस आशा से भूपती रहती है कि सखा "मेघ" अब बरसा, तब बरसा, किन्तु हवा का एक ही झोंका आकर इस बेचारी की आशाओं पर पानी फेर देता है, और यह प्यासी की प्यासी तड़पती रह जाती है। सखी, तू जिस प्रिय के बियोग और प्रतीक्षा में बैठी है, उसने तुझे ऐसे भुला दिया है जैसे हाटी[1] डेरे[2] में तुम्बी भुला देता है, अर्थात् जिस प्रकार तूम्बा भुला दिया जाने पर राही उसे लेने वापस नहीं लौटता, उसी प्रकार तेरा साजन भी शायद तेरे पास न लौटे।

एक नायक अपनी तुलना घायल पक्षी के साथ करता है और कहता है :

फूली कोरो फुलिटू, डाली फूलो शांछी
तेरे बिना एरा फिरूं, जेरा घायलो पांछी

१. सौदा खरीदने बाजार जाने वाला व्यक्ति
२. सराय।

प्रिय, तेरे बिना मैं इस प्रकार इधर-उधर भटक रहा हूं जैसे घायल पक्षी। यदि उसकी स्थिति घायल पक्षी के समान है, तो उसी के समान दूसरा विरही नायक इस प्रकार विरह में सूख रहा है जैसे फेफड़ा हवा निकल जाने पर सुकड़ जाता है :

रोड़ू बागा री पीपली सोया, रामपुरा रे दाखा
तेरी झौरियां शुकदे लागो, शूके भौशा रे पाखा।

तुम्हारी याद में मैं इस प्रकार सूख रहा हूं, जिस प्रकार बिना हवा के फेफड़ा।

वह कभी अपनी नायिका की उपमा फूल से देता है :

फूला जैंणी तू होड़ की घूघीए

तो कभी अपनी प्रेयसी को "महीना पकाए पूणीं" मुलायम कपास कहता है :

तू ती बोला नाणीए महीना पकाए पूणी।

कुल्लुई लोक-कवि मन की अभिलाषा की उपमा भुने हुए बीज से देता है, वह कहता है :

खौड़ी क्ताड़िए, लागे नौरेंणा रोन्दो
भूजौ नहि रे जौमदौ, सूँचौ न रे मनारो होन्दो।

नायिका को समझाते हुए नायक कहता है, "जिस प्रकार भुना हुआ बीज नहीं उगता है उसी प्रकार मन की अभिलाषा भी पूर्ण नहीं होती है।"

अपने वातावरण से लोक-कवि द्वारा उपमानों के चुनाव का एक उदाहरण देखिये :

गाड़ बोहे गाड़ीए ढोंके न आंदी कूला
बाड़ी चूकी जिंदडी, हौरे तबाकू ए फूला

मेरी "बाड़ी जिंदडी" यौवन (तेरी प्रतीक्षा में) ऐसे मुरझा गया, जैसे हरे तम्बाकू का फूल।

एक अन्य प्रेम-गीत में गर्ववती नारी की उपमा गोहड़ के धान से दी गई है :

नहीं करना गरवा, नहीं करना गमाना
शिगा चूटा गरवा, शिली सेरीरो जीणों धाना।

कभी गर्व-गमान (अभिमान) मत करना। गर्व उसी प्रकार शीघ्र टूट

जाता है जिस प्रकार जोहड़ में उगा हुआ धान ।

रूपक

कुल्लुई लोक गीतों में रूपक का सांगोपांग वर्णन तो मिलता नहीं, इस अलंकार की झलक अवश्य देखने में आती है। निम्नांकित लामण में यौवन रूपी फूल, पर-पुरुष रूपी लोभिया (भ्रमर) द्वारा ले जाने पर जर्जर शरीर रूपी फूल के डंडल को देखकर रोने की बात कही गई है :

बूहने खोजी टिपरी, पीच्छे खड़ी मड़ोली
फूल नेऊ तेरे लोभिये, डंडलू हेरीये रोली ।

प्रतीक को यदि रूपक अलंकार का रूप मानें, तो इस प्रकार के रूपक अलंकारों का प्रयोग यहां के लोक-गीतों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। "अन्य के द्वारा" प्रस्तुत को व्यक्त करने की उक्ति का इन गीतों में विशेष प्रयोग हुआ मिलता है। 'कुफ्फू' गीतों में कुफ्फू-पक्षी भी है, पुष्प भी है और साथ में प्रेमी का द्योतक भी।

उत्प्रेक्षा के अनेक उदाहरण तो मिलते नहीं, पर जहां-कहीं इस अलंकार का प्रयोग हुआ है वह बहुत सुन्दर बन पड़ा है। "रुक्मी" के नाटी गीत का निम्नलिखित पद उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया जाता है :

धन ता कूटा रुकमीया,
छाका ला जानू
मूंडा माथे गेठड़ी
दूसजा सौकणां मानू ।

रूकमी धान कूट रही है। मूसल मारने से उसके घुटने छनक रहे हैं। सोकन (सौत) मानो सिर पर रखी सुलगते अंगारों की अंगीठी है जो सदैव जलाती रहती है।

लोक-कवि ने अपने गीतों में मुहावरों का कई बार बड़ा अनूठा गुंफन किया है, अंगुली पर दिन गिनना—अधैर्य का एक प्रयोग इस 'कुफ्फू' गीत में हुआ है :

कुफ्फू बांशा घूधती, रोई रांगली रोणा
दूरा री धियाणा ओंठिया दुसड़े गोणा ।

दूर देश से लाई गई बधू अपने मायके में माता-पिता से मिलने के दिन की प्रतीक्षा कर रही है और अंगुलियों पर दिन गिन रही है। इसी प्रकार 'पत्ते पर पानी'। 'छाती में घोंसला बनाना' (चिन्तित मन), 'कान में कहना', 'देश-देश में नचाना' (अपमानित करना) आदि मुहावरों का भी इन गीतों में प्रयोग

हुआ है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां दी जाती हैं :

कांडे रे कोरथा, नैइए मेरे आ घोला
ड़ेंदी मेरी चिड़िए, छाती दी गे बुंणदी कोल्हा।

कोडू काड़ा री शोहरी, तोमें काना पीछू कै बोला।

चीतरो चादरू धोणों उछटे छोए
भली ध्याड़िए संगी साथडू खौरिए होंदे न कोए

फूला जैंणी तू होडकी घूघी ए
देशा देशे नाचाणी।

रेवत रामा खड़ी शालाणी,
एक बारी तू मेल सजना,
झूरी रीझे री लाणी।
किबे तौहरू तू रेवता रामा
पौतरू पेंदला पाणी।

शैली

द्वितीय अध्याय में गीतों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में कुल्लुई लोक-गीतों को शैली की दृष्टि से हमने स्थूल रूप से तीन वर्गों में—प्रबन्धात्मक, वर्णनात्मक तथा भावात्मक—रखा है, किन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो सभी गीतों में शैली की एक-सूत्रता नहीं मिलती। प्रत्येक गीत की अपनी शैली है। लोक-साहित्य लोक-जीवन का दर्पण है, प्रतिबिम्ब है। जीवन का मार्ग विस्तृत, युग-युग से प्रवाहित, वैविध्य पूर्ण रहा है, उसी प्रकार लोक साहित्य है। इसकी विविध शैलियों का समुचित रूप से न वर्गीकरण सम्भव है न यथार्थ परिचय ही। यदि आनुष्ठानिक गीतों में 'यथा तथ्य' शैली का प्रयोग होता है, तो प्राय: सभी नृत्य, ऋतु आदि गीतों में पुनरावृत्ति, संवाद, प्रश्नोत्तर तथा असंबद्वता किसी न किसी रूप में पाई जाती है। कुछ बातों का अनावश्यक विस्तार और कुछ का संकेत मात्र सामान्य-सी बात है। चतुष्पदियों में बहुधा प्रथम दो पद निरर्थक होते हैं और केवल तुक मिलाने के लिए जुड़े रहते हैं। झूरी में प्रथम दो पद लघु आकार और बाद में दो पद बृहत आकार होते हैं, इस प्रकार के चतुष्पदियों के स्थान पर पंचपदी से पढ़ने में आते हैं।

प्रतीक

लोक साहित्य में सौन्दर्य की अनुभूति का कल्पना द्वारा विकसित रूप कम ही मिलता है। यही स्थिति कुल्लुई लोक-साहित्य की है। जीवन की मूर्त अभिव्यक्तियों के विधान में जो सहज सौन्दर्य और पुष्ट सुषमा है, वह इस में प्रबलता से अभिव्यक्त हुई है। कुल्लुई लोक-साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग अर्थ-गौरव में भी बहुत सहायक हुआ है। लामण आदि प्रेम-गीतों में प्रतीकों के द्वारा भावों की अश्लीलता और मर्यादा की रक्षा कलात्मक ढंग से की गई है। यौन-भावों को प्रकट करते समय प्रतीकों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। खिचड़ी पकाना, नींबू खाना, नींबू छूना, बर्तन भरना, खेत बीजना आदि इस दृष्टि से मनोरंजक प्रयोग हैं। स्तन के लिए सदैव फल अथवा नींबू का प्रतीक व्यवहृत हुआ है। रीलू, साजन, भंवरा, संगी आदि नायक के लिए, भूरी, नाणी, चिड़ी आदि नायिका के लिए प्रयुक्त हुए प्रतीक हैं।

यौन तत्त्व

कुल्लुई लोक-साहित्य में निरन्तर यौन संकेतों को संयम और सुरुचि के साथ लाया गया है, यह नहीं कहा जा सकता। झुरी, लामण आदि प्रेम गीतों में कई बार यौन-वर्णन नग्न रूप में भी सामने आता है। यौन-सम्पर्क की चाह को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है। पर यौन तत्त्व को इस प्रकार नग्न रूप में व्यक्त करने वाला साहित्य समूचे लोक-गीत भण्डार का एक बहुत छोटा अंश है।

इन थोड़े से गीतों को उदाहरण के रूप में लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि लोक-साहित्य गंवारू है, उसमें सुरुचि का अभाव है। संस्कार गीत, नृत्य गीत, देवी-देवताओं के गीत तथा लोक गाथाओं में भावानुरूप सुरुचि के आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है। उदाहरणार्थ एक नृत्य गीत में यथार्थ सम्पर्क के फलस्वरूप गर्भ की चर्चा अत्यन्त संयम के साथ "भड़ू ओ भात" (भड़ू का भात) कहकर की गई है। भड़ू[1] में भात पकाया नहीं जाता, यदि पका लिया जाए तो बताया नहीं जाता, इसी प्रकार अवैध रूप से गर्भधारण न बताया जा सकता है और न छुपाया ही।

छन्द

कुल्लुई लोक गीतों की प्रत्येक कोटि के गीत का अपना छन्द है। तृतीय अध्याय में विविध प्रकार के गीतों को पढ़ते हुए पाठक उन के छांदिक रूप से

१. दाल पकाने का बर्तन।

अवश्य अवगत हो गए होंगे। तुकान्त छन्दों के उदाहरण भी वहीं प्राप्त होंगे। जैसाकि हम पहले भी कह चुके हैं, तुकान्त गीतों में, विशेषतः लामण आदि चतुष्पदियों में, प्रथम पंक्ति बहुधा तुक मिलाने के लिए रखी जाती है, अतः उस में दूसरी पंक्ति के भावों की छाया ढूंढ़ना उचित नहीं, यह स्थिति सर्वत्र नहीं, अनेक तुकान्त गीतों में दोनों पंक्तियां सार्थक होती हैं। छन्द और तुक स्वयं लय पर आधारित हैं, लय को दृष्टि में रखकर ही छन्दों का विधान किया गया है। लोक गीतों का प्राण लय है, अतः उनका छन्द होना किसी प्रकार संदग्धि नहीं। यों देखा गया है कि किसी-किसी छन्द के प्रथम दो चरणों में कुल मिला कर पांच शब्द हैं, जबकि बाद के दो चरणों में आठ-नौ शब्द हो जाते हैं : जैसे :

चीतरो चादरू धोंणो उछूटे छोए
भली ध्याड़िए संगी साधडू, खौरिये होंदे न कोए,

खौड़ी क्वाड़िए, लागौ नारैणा रोंदो,
भूजौ नहिं रे जोम दौ, सूंचन रे मना रो होंदो।

चीटी कोहेड़िये, रोही लुम्बिया लूम्बी,
साजणे घाली बिसरी बांठोए, हाटिए डेरे दी जेरो तूम्बी।

साधारणतया लोक गीतों को पढ़ते समय यह जान पड़ता है कि इनमें प्रयुक्त छन्दों में यति भंग, गति भंग, न्यून पदत्व और अधिक पदत्व आदि अनेक दोष हैं। यह हम पिछले अध्यायों में गीतों के उदाहरणों में देख चुके हैं। किन्तु जैसा हम कह चुके हैं, लोक गीतों में पिंगल के नियमों का पालन नहीं होता, उन में केवल लय का ध्यान रखा जाता है और गाने से लय के द्वारा इन सारे दोषों का परिहार हो जाता है।

७ : कुल्लुई लोक-साहित्य का महत्त्व

लोक-साहित्य समाज की अमूल्य एवं अनुपम निधि है। इसमें हमारा भूत निहित है, वर्तमान प्रतिबिम्बित है और भविष्यत् के लिए यह प्रकाश-स्तम्भ का कार्य सम्पादित करता है। कुल्लुई क्षेत्र जैसे पिछड़े इलाकों के इतिहास के लिए लोक साहित्य ही नींव, चूना, गारा, ईंट, पत्थर सभी कुछ है। इसमें समाज की एक-एक रेखा, सामयिक बोध की एक-एक अवस्था, वैयक्तिक सुख-दुख, हर्ष-विषाद और सामूहिक जय-पराजय अंकित है। भविष्यत् के लिए लोक साहित्य में अनेकों अनुभव-प्रसूत सूक्तियां प्राप्त हैं। लोकोक्तियों का भंडार तो है ही, लोक गीत में भी सारगर्भित वाक्यों का अभाव नहीं। 'भोड़ाराम' के नृत्य गीत का यह पद लीजिए :

नोकरी न कौरनी बोहरे वांणीए
भाटा रे न चारणें गोरू
जिमी बी न खोटणी चांजरा वांजरा
कांजरा न आणनी जोरू।

(बनिये की चाकरी, ब्राह्मण के पशु चराने का काम, बंजर—पत्थरीली भूमि की खेती और कंजर (वेश्या) स्त्री से विवाह, सदैव हानिकारक हैं।)

लोक गीत का यह पद कितनी स्पष्टता से हमें खबरदार करता है।

हमारी संस्कृति का जैसा स्वाभाविक, सच्चा तथा सजीव चित्रण इस साहित्य में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। यदि कहा जाए कि कुल्लुई संस्कृति के दर्शन केवल यहां के लोक-साहित्य में ही होते हैं, तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसी साहित्य के पर्यवेक्षण से इस प्रदेश में बहने वाली दो सांस्कृतिक धाराओं का पता चलता है। यहां के लोगों की धार्मिक मान्यताएँ, रीति-रिवाज, आचार-विचार, सभी कुछ लोक-साहित्य ने अपने अन्दर सुरक्षित रखे हैं।

कुछ विद्वानों ने लोक-साहित्य के महत्त्व, को साधारणतया छः भागों में विभक्त किया है :[१] (१) ऐतिहासिक महत्त्व, (२) भौगोलिक और आर्थिक

१. डा० कृष्णदेव उपाध्याय, हि० सा० वृ० इ० १६ भाग, प्रस्तावना पृष्ठ १६७

महत्त्व, (३) सामाजिक महत्त्व, (४) धार्मिक महत्त्व, (५) नैतिक महत्त्व, (६) भाषाशास्त्र सम्बन्धी महत्त्व ।

लोक-साहित्य के महत्त्व का इस प्रकार का विभाजन सुस्पष्ट नहीं है। लगता है वर्गों की संख्या बढ़ाने के लिए ही इस प्रकार की गणना की गई है। साहित्य का ऐतिहासिक महत्त्व तो है, किन्तु भौगोलिक महत्त्व तथा आर्थिक महत्त्व का पृथक् वर्ग बनाना उचित नहीं । ऐतिहासिक महत्त्व के अन्तर्गत इन दोनों का अन्तर्भाव हो सकता हैं । लोक-साहित्य में जन-जीवन के आर्थिक पक्ष के सम्बन्ध में कुछ सूचना इधर-उधर बिखरी मिलती है । वह इतिहास का अंग बन जाती है । इतिहास केवल राजनीतिक स्थिति का विवरण मात्र तो है नहीं, उसका क्षेत्र विस्तृत है । इसी प्रकार लोक-कथाओं और लोक-गीतों में नगर अथवा ग्राम विशेष का नाम अथवा वहां की वनस्पतियों का नाम आ जाना विशेष भौगोलिक महत्त्व की बात नहीं । जिस रूप से इस प्रकार वर्गीकरण करने वाले विद्वानों ने भौगोलिक महत्त्व का विवेचन किया है वह उचित नहीं । यदि लोक-साहित्य में भौगोलिक महत्व की किसी घटना का ध्यान को आकर्षित करने वाला उल्लेख हुआ है तो राजा बाणासुर जैसी कथाओं में, जहां पर प्रागैतिहासिक काल में मानस सरोवर के देश में आए भूकम्प का ज़िकर किया गया है जिसके फलस्वरूप उस प्रदेश का मान-चित्र ही बदल गया । इस प्रकार के उल्लेखों को भी हम इतिहास की ही सामग्री मानते हैं ।

धार्मिक तथा नैतिक महत्व सामाजिक महत्व वर्ग के अन्तर्गत आ सकते हैं । अधिक से अधिक उन्हें सांस्कृतिक महत्व का अंग माना जा सकता है । इस दृष्टि से देखने पर लोक-साहित्य के महत्त्व को हम इन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं ।

१. साहित्यिक महत्त्व
२. सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व
३. ऐतिहासिक महत्त्व
४. भाषा शास्त्र सम्बन्धी महत्त्व ।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व

कुल्लुई लोक-साहित्य के साहित्यिक महत्व की विवेचना हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं । इस साहित्य का सांस्कृतिक महत्व अत्यधिक है । यदि कहा जाए कि इस प्रदेश की संस्कृति का प्रतिबिम्ब केवल मात्र लोक-साहित्य में मिलता है, तो उचित होगा । वस्तुतः यहां का समूचा जनजीवन इस साहित्य में चित्रित है। चाहे यहां के धर्म को लें, अथवा समाज-संगठन को या जातीय प्रभाव को, सभी की सुस्पष्ट एवं सुलभ व्याख्या लोक-साहित्य से ही

प्राप्त होती है। किस प्रकार इतिहास के लम्बे काल में इस प्रदेश में विभिन्न जातियां आईं, यहां की जातियों से संघर्ष कर उन पर आरम्भ में प्रभुत्व प्राप्त किया, किन्तु अन्ततः उनमें ही अन्तर्भुक्त हो गईं और कालान्तर में एक नये जातीय विधान को जन्म दिया, यह लोक-साहित्य में इंगित है।

आज यहां के निवासी सब के सब हिन्दू हैं, और जो कुछ एक सौ मुसलमान, सिख और ईसाई हैं, वे या तो आधुनिक काल में बाहर से यहां आकर बसे हैं, या स्थानीय लोगों से ही धर्म-परिवर्तन किया है। हिन्दुओं में राजपूत, कनैत, राहू, कोली और ब्राह्मण प्रमुख हैं।

ब्राह्मण संख्या में अपेक्षाकृत कम हैं, पर फैले सारे प्रदेश में हैं। उनके मूल निवास के संबंध में दो टूक कहना कुछ कठिन है, पर स्थानीय लोक कथायें और परम्परायें बताती हैं कि उन में से कुछ एक तो आदिम निवासियों तथा प्रथम आक्रामक खशों के वंशज हैं, और कुछ देश के मैदानी भागों से ही यहां आए हैं। एक लोक-कथा के अनुसार आर्य ब्राह्मण का पहला दल परशुराम के साथ यहां आया। गौड़ ब्राह्मणों का यह दल सतलुज के किनारे-किनारे इस प्रदेश में प्रविष्ट हुआ, और उसका कुछ भाग सुकेत के काव और ममेल ग्रामों में ठहरा, दूसरी टुकड़ी महासू के निरत और दत्तनगर के स्थानों पर रुकी और अन्तिम भाग कुल्लू के निर्मण्ड ग्राम में जा बसा। इस कथा का समर्थन अनेक गीत करते हैं, विशेषकर वे जो, भूंडा और जग आदि मेलों पर गाए जाते हैं।

यही स्थिति राजपूतों की है। राजपूतों के दो मुख्य वर्ग हैं। राजपूत और खश। खश इस प्रदेश के आर्यों से पूर्व के निवासी हैं। ये लोग मध्य एशिया से पहाड़ों पहाड़ भारत में प्रविष्ट हुए। यहां उन्हें नाग अथवा दानवों से जूझना पड़ा। इस ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्ट उल्लेख "दियाउड़ी" मेले में मिलता है। यह खश-दानव संघर्ष संभवतः आर्य-दानवों के संघर्ष से भी पहले का है। इसी मेले से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि खश आरम्भ में इन दानवों अथवा नागों को अभिभूत करने में असफल रहे, किन्तु कालान्तर में आर्यों की सहायता से तथा छल का सहारा लेकर वे नागों पर विजय पा सके। इस प्रकार लोक-साहित्य इस प्रदेश की जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग के संबंध में हमें उसी प्रकार की जानकारी देता है, जैसी कि ऋग्वेद आर्य, असुर, दस्यु, दास अथवा दानव के बारे में देता है।

खश बाहर से आए लोग हैं, पर वे आर्यों के भारत आगमन से भी पहले से यहां रहते चले आए हैं। विशुद्ध राजपूत अपने राणा, मियाँ, ठाकुर, राठी और रावत उपवर्गों सहित सामान्यतः स्वयं किसी राजवंश की सन्तान हैं या उन राजवंशों की सेवा में नियुक्त योद्धाओं और सैनिकों के वंशज।

खशों के समकक्ष ही कनैत राजपूत हैं। लोक-साहित्य साक्षी है कि ये कनैत या तो आदिम जाति के वंशज हैं, या खशों की उन दानवों अथवा नागों से उत्पन्न सन्तान जिन्हें उन्होंने जीता था। एक लोक-कथा कनैतों को कोलियों का ही बन्धु बताती है। संभव है कि कनैतों का मुख्य भाग राहू ही खशों और कोलियों के वंशज हों। परम्परा कोलियों को आदिवासी भी मानती है, अनार्य भी कहती है, और आर्यों के ही बान्धव भी सिद्ध करती है। यह अनिश्चितता संभवत: इस कारण है कि कनैत, राहू, कोली आदि समाज के वर्ग सहस्राब्दियों के समन्वय की उपज है और उन में विभिन्न जाति तत्व मिश्रित हैं। यह स्थिति किन्नौर और स्पिति के बीच के इलाके पन्द्रह-बीस में रहने वाले राहुओं में प्रचलित निम्नलिखित कहावत में भी दीख पड़ती है :

गीआ[1] न लामणु[2]
सभोटी[3] न बामणू[4]
छैई आणें छैई आंणे तेरी।
दोतो दोती ए राधेशाम सीताराम ॥
एई कौरी तेरे पारी पांडौ भाई छैऊ।
ऐबे रोह तै हाँऊ छैणा ॥

गीत न लामण,
सभोटी न बामणू,
बरबाद कर दिया, बरबाद कर दिया, तेरे,
सुबह ही सुबह (इस) राधेशाम सीताराम (ने)
इसी तरह तूने सामने के घर वाले भाई को मार डाला,
अब क्या तू मुझे नष्ट हुआ देखना चाहता है?

कहा जाता है कि प्रात:काल राधेश्याम-सीताराम जपने वाले छोटे भाई के प्रति यह कटु वाक्य एक बड़े भाई के हैं। इस वृत्त से लोगों की मान्यता प्रकट हो जाती है। उन के लिए गीत, लामण आदि जानी-पहचानी वस्तुएं हैं जिन के साथ दैनिक सम्बन्ध है। पर, राम और कृष्ण तो कुछ-कुछ पराये से हैं विदेशी हैं, अत: एकदम अमान्य हैं।

धर्म के क्षेत्र में यह दृष्टिकोण बराबर सामने आता है। यदि गम्भीरता से देखें तो धर्म तथा अन्य मान्यताओं के सम्बंध में यहां दो समान प्रबल धाराएं निरन्तर, अबाध गति से बहती मिलेंगी। एक ओर जनता का कुछ भाग यदि तुलनात्मक रूप से हिन्दूधर्म के शास्त्रीय रूप में अधिक आस्था रखता है, तो

(१,२,३,४) विभिन्न लोक गीतों के नाम। ये सब प्राय: शृंगार प्रधान हैं।

दूसरी ओर एक बहुत बड़ा भाग स्थानीय देवी-देवताओं, नागों पर अधिक श्रद्धा रखता है। इस प्रकार समूची जनसंख्या दो भागों में बंटी जान पड़ती है। एक वर्ग मुख्यतः ब्राह्मण और उच्च राजपूत—पर यदि शास्त्रीय धर्म का प्रभाव पच्चहत्तर प्रतिशत तथा स्थानीय देवी-देवताओं का पच्चीस प्रतिशत है, तो दूसरे वर्ग में यह क्रम एकदम उलट जाता है। उनके पौराणिक देवी-देवता भी स्थानीय रूप धारण कर लेते हैं, यहां तक कि शिव भी जो यहां के सर्वप्रिय आराध्य देव हैं, नाग में एकाकार हो जाते हैं।

पूर्णतया आज न तो विशुद्ध शास्त्रीय रूप है, और न ही अपने प्रारंभिक रूप में स्थानीय धर्म। दोनों ने एक-दूसरे से बहुत कुछ लिया, एक दूसरे को बहुत कुछ दिया। "दशूराजा" तथा "सियोबोडो" लोक गाथाओं में राम अपना पारंपरित मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप त्याग एक सामान्य व्यक्ति बन जाते हैं, जो अमावस्या की आधी रात्रि में रानी सीता से गहन जंगल में जाकर अपने स्नान के लिए जल मंगवाते हैं। शिव अपने महायोगी के गुणों को छोड़कर एक अलमस्त अल्हड़ व्यक्ति का बाना धारण कर लेते हैं, और बेचारी पार्वती को अपने साथ बीहड़ पहाड़ी मार्ग से घसीटकर "रणसी बीर" के घर शिवरात्रि का नाच करने ले आते हैं। पार्वती विरोध में केवल यह कह पाती है :

भौडे ईशरा तैं एत कीले आणी,
रोडें पोलड़ी न बातै पाणी।

"भोले ईश्वर, तू मुझे कहां ले आया ? पांव में मेरे जूते नहीं, और मार्ग में कहीं जल नहीं।"

इतना ही नहीं, नृत्य का प्रेम तो यहां स्वयं विष्णु भगवान भी नहीं छोड़ सके। "जागरा" तथा अन्य त्यौहारों पर वह भी नाचने और नचाने का आग्रह करते हैं।

नृत्य का यह प्रेम यहां का मानव जन्म से ही लेकर आया है, कोई मेला हो, त्यौहार हो, पर्व हो, नृत्य के बिना निर्वाह नहीं। फसली काम से निवृत्त हो गए हो और अन्य कोई विशेष कार्य न हो तो बेकार बैठने से लाभ क्या ? दो-चार मित्र इकट्ठें हुए, वादक बुलाए गए और नाच आरम्भ हो गया। यदि बाहर बर्फ गिरी है, इधर-उधर जाना संभव नहीं, तो क्यों न सुअवसर से लाभ उठाया जाये और नृत्य का आयोजन किया जाये। किसी मेले का दिन है या कोई मंगल अवसर है, तब तो नाच होना ही चाहिए। नृत्य होता है और घंटों होता रहता है। यह वैयक्तिक भी है, सामूहिक भी। नृत्य के अपने गीत हैं।

संभव है, नाचने की इस रुचि की पूर्ति के लिए ही मेलों का आयोजन

किया गया हो, अतः वे जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। यदि मेले न रहें तो जीवन नीरस और शुष्क बन जाएगा। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाले लोगों के लिए मेलों का यों भी महत्व है। उनके मनोरंजन के यही एक मात्र साधन हैं। वे जीवन की कठिनाइयों, प्रकृति के आकस्मिक प्रकोप तथा दुख को नाच-गाने में डूबोकर आने वाले संघर्ष के लिए नवशक्ति का सजृन करते हैं, यही कारण है कि लोक-साहित्य की एक बड़ी मात्रा, विशेषतः लोकगीत, इन मेलों से ही संबंधित हैं। चाहे ये 'भूँड़ा', 'जंग' 'शोली ठिरशु' या 'जागरा' जैसे धार्मिक मेले हों, या 'दियाउड़ी', दुशैहरा जैसे साँस्कृतिक, ऐतिहासिक अथवा पौराणिक मेले।

ऐतिहासिक महत्व

लोक-साहित्य इतिहास की कड़ियों को जोड़ने के लिए अपने में अनेक सूत्र रखता है, यह हम पहले अध्याय में देख चुके हैं। लोक-कथाओं में ऐसी प्रचुर सामग्री है जिस के आधार पर कुल्लुई प्रदेश के इतिहास की विस्मृत कड़ियां जोड़ी जा सकती हैं। लोक-गीतों में भी इतिहास की ऐसी सामग्री है जिसके सम्यक अध्ययन से हमारे इतिहास की नई-नई खोजें हो सकती हैं 'भूंडा' आदि यज्ञों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों से हमें ज्ञात होता है कि आज से कई शताब्दियों पूर्व देश के मैदानी भागों से लोग यहां आकर बसे, और यहां के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को एक नया मोड़, नई दिशा दे गए। 'पानू त्रिष्ट,' 'रणी वजीर', 'नेगी दयारी', 'राजा फुम्बडुआ' (राजा भगवन्तसिंह), 'मानसिंह की फौज' आदि अनेक गीत हैं जो इतिहास के आधार पर स्थित हैं। इस प्रदेश में बसने वाली जातियों—ब्राह्मण, खश, कनैत, कोली आदि से संबंधित कथाएं उनके विषय में हमें बहुमूल्य जानकारी देती हैं। इन्हीं कथाओं और गीतों के आधार पर हम यह निश्चित कर सकते हैं कि यहां के मूल निवासी कौन हैं।

एक बार गढ़वाल के एक सामन्त रणजीत सिंह ने रोहड़ू के डोड़राक्वार पर आक्रमण किया. वहां के सामन्त की स्त्री ने साधारण महिला के वस्त्र पहने और रणजीत के तम्बू में चली गई। वहां जाकर उसने रणजीत को प्रणाम (सूई) किया, रणजीत ने उसे बहन कहा और सुहागवती रहने का आशीर्वाद दिया। इस पर उसने अपना वास्तविक परिचय दिया और बहन के नाते उसे डोड़राक्वार को बिना जीते वापस लौट जाने को बाध्य किया। इस घटना को लेकर यह गीत गाया जाता है :

शीलआ लडोतूआ बानो डोडरा रो घाटा
खादी खोरचा पूरा ला मेरा रे गुमे रा माटा।

दुषिधारो देवरो जोलो विन्थरी रो बीरा
का कोरा रोंणी वजीरा तेरो लांकड़ो बजीरा ।
लाड़े भिगालते कोरा ले विष्ठा का सूए ।
साता जुगा रे लाड़िया मेरे तू बोऐणा हुए ।
बोला गे डोडरा रे पापते ग्रा गाडेरे थाएं ।
दूणी बिन्थरी पौड़ा कादो चलाए ।

कुल्लू का राजा भगवन्त सिंह विवाह के लिए नालागढ़ रियासत में गया । वहां विवाह के समय हैजा की बीमारी फैल गई, जिस से राजा भगवन्त सिंह के साथ गये हुए बहुत से लोग मर गए । इस निम्नाँकित गीत में बाकी बचे हुए लोगों ने अपनी सन्तान ग्रौर दूसरे लोगों को चेतावनी दी है कि फिर कभी नालागढ़ न जाना :

म्हारे राजे ग्रा फुम्वड़ुग्रा
नाला नई गड़ा वे जाणा लो ।
जाडे काले वे ग्रकल देणी
नाला नई गडा वे जाणा लो ।
नई पूछे देऊ देवते,
नई पूछी न्योली राणी ।
बिमारी पोई नालागडा न
शादी गिणी न जाणी ।
राजा म्हारा कुलुरा शोभला
नालागडा री राणी
दया रखी म्हारे देवते
बिमारी नी कुलु बे ग्राणी ।

सिरमौर के राजा ने कल्लू के राजा जयसिंह को जुए का निमन्त्रण दिया । राजा निमन्त्रणा के पीछे की चाल को समझ गया। उसने ग्रपने मन्त्री नेगी दयारी से मन्त्रणा की ग्रौर जुए का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । राजा के स्थान पर नेगी दयारी नाहन जाता है, जहां उसका बड़ा स्वागत किया जाता है । नाहन की रानी दयारी को धर्म का भाई बनाती है । नगर की एक गली में तीथूं के साथ जुग्रा खेलता है, पर पहली बाजी हार जाता है, यदि दूसरी बाजी भी हार गया, तो उस का वध किया जाना था । देवी हिडिम्बा की कृपा से नेगी दूसरी बाजी जीत जाता है ग्रौर तीथूं को हराकर ग्रपने राजा के मान की रक्षा करता है :

(१) नेगी दायरी

नाहणीय राजये चिठ्ठी दीनी लिया, कुड़ू बाजार दी आई।
हांय बोला हांय मेरे कुल्लू केरे राजया, कुल्लू बाजारा दी आई ।।
चीठी दीनी लीया[1] बोला नाहणीय राजये, "जूए पासै खैलदो आए।
जै न आवौ तू जूए पासै खैलदौ कुड़ू देंऊं तेरो जलाए।।"
कुलूए राजये चिठी लाई बांचणी, माँझा माँझी श्रोठगेश्रो दौड़ी।[2]
'हांय बोला हांय मेरी कुड़ू केरी राणीयें, जौ के आज विपता पौड़ी।[3]
घोड़ी बीता छाड़ै बोला चाकरा राजयै, "नाही गैए छिवरै[4] दयारै।
सौहरा का आश्रौ बोला होकमा दयारिया आश्रो लोड़ी कुड़ू बाजारै।
जांदौ गेश्रां बौंदा नेगि:ा दयारियां, कुड़ू बाजारा दी आश्री।"
सूले बीता कौरे बोला होकमा राजेया, "केऊ कामै मूं बादाश्रौ[5]
डौरे बीना डौरे मेरे कुड़ू केरे राजया, पीठी लै मूं नेगी दयारी।
"जैणों बोलू मूं तैणों कौरे तू राजया, विपता न पौंदी भारी।।
छोश्रा बीता शौश्रा ईना घोड़े दे, पालकी नौ शौश्रा डांगु सापाही।
ठारह जै भेजा ईन कुड़ू केरे कौलश, पीठी दैश्रा हिड़मा[6] माई।।
कुड़ूए राजयै चिठी दोनी लीया, नाहनी बाजरा दी आई।
"हांय बौला हांय मेरो नाहणीय राणीयै, नाहणी बाजारा दी आई।।
तांबू दी न रौंहदौ चानणी न रोंहदौ, एहा गहौड़ी बैड़े बाणाए।
जैना बाणाय तू बेड़े भौंणा, तेरी देंऊ नाहणी जलाए।।"
नाहणीय राजये चिठी लाई बांचणी, मांझा-मांझी श्रोठ गेश्रौ दौड़ी।
"हांय बोला हांय मेरी नाहणीय राणीये, जौ के आज बिपता पौड़ी।।
तैंबीए ठाकूती[7] राजया, शूंणी गोल न धराड़ी[8]।
"कौरणी आपणी भुगतणीं पौड़दी, आपणें पैरे खराड़ी[10] ।।

१. लिखकर,
२. फटना,
३. पड़ी,
४. शिविर,
५. बुलाया,
६. पड़ती,
७. हिडिम्बा, (मनाली की देवी),
८. रोकना,
९. अधूरी,
१०. कुल्हाड़ी।

डौरे बी न डौरे मेरे पती पड़मेश्वरा, पीठी लै मूं होंदी प्यारी।
जैंणों मूं बोलू तैंणों कौरे राजया, विपता न पौंड़दी भारी ।।
तांबुए न डांदी न डादी मैहला न सी कदै वाड़ाई।
कुड़ू रे बाजीरा तेऊ नेगी दयारी, सोंगे मूं लेंऊं धौरमा लाई।
एक बी न पौड़े बोला नेगी दयारिया, तीर्थू वराम्हणै मारै।
जुण बी हारदै जुए पासै खेलदा, तैऊए कौरदौ पतारै[1] ।।
तीर्थूए ब्राहमणी लौंका केरी बिस्वा, सारे देशौ तीरथूं लूंड़ा।
ध्याड़ी बीता कौरदौ लिलरी सिलरी, बैंड़ी काटाऊं दौ मूंड़ा ।।
एक बीता बाजी मारी नेगी दयारिय, घोड़े हेरे पालगी हारी।
दूजी बोला बाजी मारी नेगी दयारिय, हारी दीनी फौजा सारी ।।
ठारहा कलशा देवतै हारै, जैबी ची खैलौ बाजी दयारी।
चौथी बाजी लै नैगी दयारिये, आई गेई मूंडा री वारी ।।
"कीदी बीता गेऐ घोड़े बोला पालगी, कीदी गेई फौजा सारी।
कीदी बोला गेऐ मेरे कूड़ू केरे कोलशा, कादी गेई हिड़मा माई।
दूजी बेरा खेले तू जुआौ नेगीआ, मूं बी समूरी आई ।।"
एक बीता जूआौ खेलौ नेगी दयारियै, घोड़े बोला पालगी आई।
दूजौ बोला दाओ मारौ कुड़ू रे नेगीय, जीती हेरै डांगू सपाही ।।
चीए बोला जूए लै नेगी दयारिये, कोड़शा देवतै आए।
काटी दीनी मूंडकी तीर्थू ब्राह्मणे, चौथे दावे पाए ।।

(२) मानसिघे फौजा

इस गीत में कुल्लू के राजा मानसिंह की बुशैहर-कुम्हारसैन के राजाओं पर चढ़ाई का उल्लेख है।

नगरै दारुबड़ूबै घोड़े भारी जनकूणी[2]।
तौले बोलू ला घोड़े बदेरूआ तैं के खोबरा शूणी ।।
"तेरी मौता राजेआ साहबा धारा तीरथा होंणी।
तोंए बोलूगौ घोड़े बदेरुआ जुणा होंणी सौ होंणी ।।
तीदा रौ डेरौ पौड़ौ टीकरा बाई।
मानसिंघा री फौजा आघी औजौ बी न आई ।।"
नगरे दारूबड़ुऐ राए छेड़े नागारै।
मानसिंघा रे हाजरू आऐ बीजी गैणा रे तारे ।।

१. दुर्दशा।
२. हिनहिनाना।

तीदारो डेरो पौड़ौ दाड़ी डुआरै ।
चौथे ध्याड़ै पूजै आनी बाजारै ।।
आनी चौरदी बांणां माझै नेगीए घोड़ी ।
घोड़ी पाई तेरी छोछा लै देंणी म्हारे झींझणा[1] चोड़ी ।।
तीदा रो डेरौ पौड़ौ कुरपणा गाड़ै[2] ।
दूजै ध्याड़ै पूजी गेऐ रामपुरा रे बाड़ै ।।
नौदी लोंहगी गाहणें कापड़ै न भीजे ।
घृघतू[3] बासारै[4] बोला आजौ बी न धीजै ।।
मानसिघा री नोबता बाजी ढोला बाजै नागारै ।
अणगिणता फौजा आई कलगी ए झालारै ।।
एछी गेऐ बोला कुड़ुए छोकरै मांड़ू रे रैले ।
छोरी भाईओ मूसली जेई मौरू[5] रे गैलै ।।
फाट बाई पार तेगा री लागी शाड़ीए लाए ।
शाड़ी ए शालूटकीयै परजा री माए ।।
रामपुरा रे राजेओ गेऔ धरजा घौटी ।
हाथा जोड़िआ नौजरा दीनी, कुड़ू फौजा हौटी ।।
कमारशणा री बीला[6] चाली कूड़ू री फौजा सारी ।
रामपुरे बाजारा दी एकी झोंणी बोली जौ मारी ।।
"कुड़ू केरे राजेआ, तू आ खमारटिओ जाओ ।
म्हारे आओ बाशौहरा लै हांडै बेचदौ लाओ ।।"
कांडूरी डामौरियै ठोड़ै मीठोड़ै ।
तुबकीए चूसकू लागे तोपा रे गोड़ै ।।
कांडूरी डामौरिये ढौडा री ठामाशै ।
तुबकी ए चूसकू लागै तीरा लागुए काशै ।।
नगरे दारूबड़ुए जोड़ी बाजी दमामा ।
केंणों लागो घृघतुआ म्हारे राजेए कामा ।।

सतियों के सतीत्व का गीत हमारा लोक कवि मुक्त कंठ होकर गाता है ।

१. चावल का एक प्रकार,
२. नदी,
३. बुद्धू,
४. बुशैंहरवासी
५. वृक्ष,
६. किनारा ।

इस प्रकार के गीत जहाँ एक ओर सती की स्मृति बनाए रखते हैं, वहां दूसरी ओर इतिहास की भूली-बिसरी घटनाओं को भी जीवित रखते हैं। "पवारी विष्ट" गोरखों के साथ युद्ध में काम आ गया। उसकी सती साध्वी पत्नी चैंखी ने "जौहर" किया :

सौती (सती) चैंखी

हाटुठई पौड़ी टीरा गाहै लूंबरू[1] धूंई[2]।
काड़ीए रांडे बादड़िए कौदिए न मूंई ।।
टूंजी[3] मारू टूंजी गाहै हाटूआरी टीरा ।
कौदड़ू आच्छा माटीए[4] पवारिओ वजीरा ।।
कौदड़ू लागा माटीए आंगतू तौरा ।
लौडली बेरा शाऔ[5] तौ पवारिओ बौरा ।।
आगए तोंगा दी चेंखी पोंडदी ऊटी ।
घौड़ाई घौड़ी ए मेरी कींगरा[6] चूटी[7] ।।
नोटी[8] आए हाजरू इनें ढाला[9] बी न पाई ।
लोहुओ गेओ माटिए पाणी दुहाई ।।
"कै लाई आजरूओ खौबरा नोखी ।
कुण सारे पीरैं कुणी जिन्दड़ी का मोखी ।।
कै लाई दाई मेरीए खौबरा नौखी ।
और सारै पीरैं आपी विष्ठै मोखी ।।
तोंगे हड़ी चेंखीए बिणा जोड़ीए बूटै ।
केऊ दोषा माटिए मेरे कौर्मा फूटै ।।
भाईआ बोलू मौदनू आं, सूचिआ कै तेरै ।
छूरौ कटारौ आणें ओरू जोड़नों मेरै ।।
जोड़णेंए दाईए तू लाइ न डाई[10] ।
कोटाधारो बासौ देऊ दूहणा ले गाई ।।

१. गहरी, २. धुंध,
३. टिकटिकी,
४. पृथ्वी माता,
५. देखा,
६. कमर,
७. टूटना,
८. जोड़ा
९. प्रणाम,
१०. जिद करना ।

कोठाघारो बासी भाईआ मेरे न चैहीं।
बिष्टा पवारी बिण रोंहदी नैंही॥
ओड़ा[1] बोलू बागुरिआ खोड़े आरो छजौ।
ऐंणों चाणे जुगा[2] मेरो जेणों सोगीरो जुगा॥
सोईआ[3] बोलू गैहरूआ ताटिओ बनांणी।
दूजे जूगे[4] कापड़ै "तू होन्छनै न चाणैं॥
"जै बोली दाईए[5] कारीगारै नैहणा[6]॥
तेरे लिखू जुगा दी मूं विष्णू नरैंणा॥
ओड़ा बोलू बागुरिआ मौरदौ पैंड़ौ[7]।
घाटौ चाणों जुगा मेरो मोंपरू[8] केड़ौ॥
धीनौ लागों जुगा मेरो साऊंएं बरोली।
मैंची मेरे सामतू तै रामा रामा बोले॥

इस के पश्चात् चैंखी देवी की पालकी खड़ाण नामक ग्राम में लाई जाती है। वहां पर वह ग्राम-देवता के मन्दिर में जाकर देवता से प्रार्थना करती है :

"देवा होंदी भीशरा तेरड़ी जाई।
चार शों[9] जागा देई जोड़दी आई॥
देखो देखो लोगूओ सौती ओ सुहागा।
घीआ री लाई घिघली[10] बेलरू आगा॥
सोड़ा बोलू सांऊंणीओ मेरीओ माओ।
आगीए लागै लौहूज शीघ्रै टपाओ॥
रैका बोली सांमता दी देश खलाणा।
जीदी तौजै सौतिए हासदा प्राणा॥

१. जागीर,
२. बढ़ई,
३. पालकी,
४. दर्जी,
५. जीवन,
६. वहन,
७, औजार।
८. कुटम्ब,
९. कन्धा,
१०. बालिशत।

घीन तेरो चेंखीए सिघणीओ हीओ ।
छूरे कटारे सौगे जौहरा किओ ।।

ढींग

लोक-साहित्य में कतिपय ऐसी क्रियाओं का वर्णन मिलता है जिनका अब लोप हो गया है। रोहडू के एक गीत "छोडे" में 'ढींग' नाम के एक जादू अथवा विद्या का उल्लेख है :

गढवाली राजे री जोन बड़ी
महासू देवा रो नारो
बुशैहरी राजे रो "ढींग" बड़ो
झाड़ी आना लो गोइनी रो तारो ।

गढ़वाल के राजा की प्रजा बड़ी है और महासू देवता का नाम। बुशैहर के राजा की "ढींग" नामक "विद्या", जो आकाश से तारे तोड़ लाती है।

कहा जाता है "ढींग" विद्या द्वारा किसी ऊंची जगह पर बड़े-बड़े वृक्ष—दयार आदि—को मंत्रों के जोर से मोड़ लिया जाता था। इस प्रकार मोड़ कर उन वृक्षों की शाखाओं में बड़े-बड़े पत्थर फंसा दिए जाते थे और जिस स्थान पर निशाना लगाना होता था, उसकी ओर संकेत कर मंत्र पढ़ा जाता था। वृक्षों में बन्धे पत्थर अपने निशाने पर जा लगते और वहां सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देते। युद्ध में इस प्रकार की विद्या का प्रयोग प्रायः किया जाता था।

सामाजिक महत्व

संस्कृति का जैसा स्वाभाविक, सच्चा तथा सजीव चित्रण लोक-साहित्य में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं। इस साहित्य में मानव-समाज का अकृत्रिम चित्र मिलता है। समाज के प्रायः सभी पहलुओं का वर्णन हमें लोक-साहित्य में प्राप्त है। कुल्लुई लोक-संस्कृति अथवा जन-जीवन के दो-एक पक्षों की यहां विवेचना की जाएगी।

(१) **कुल्लुई नारी**—कुल्लुई लोक-साहित्य में नारी के दो रूप साथ-साथ उभरते हैं। नारी एक ओर अत्यन्त ही भावना-प्रधान, साध्वी, चतुर गृहिणी, माता-तुल्य सास, आज्ञाकारिणी पत्नी, गृहलक्ष्मी और योग्य प्रियतमा है तो दूसरी ओर कर्कश, निन्दक, अत्याचारी सास, जलने वाली ननद, संकुचित हृदय भावज और फूहड़ तथा अयोग्य पत्नी है।

एक चित्र में स्त्री संयत, दबी-दबी, परिवार की रेखाओं से घिरी दीन

पड़ती है, तो दूसरे चित्र में नितान्त स्वच्छन्द। यदि एक ओर वह क्रीतदासी-सी लगती है जिसे अपने मायके जाने के लिए परिवार के अन्य सदस्यों की आज्ञा लेनी पड़ती है, तो दूसरी ओर वह अपने भाग्य की विधायिनी, अपनी वासनाओं की पूर्ति पर अपनी सन्तान को त्याग देने वाली दीख पड़ती है। जहां एक नारी अपने पति के साथ सती हो जाती है वहां दूसरी पति-त्याग को एक अत्यन्त साधारण बात मानती है और स्वयं "रीत" की "ढेरी" भरने और अपने प्रेमी के लिए नया घर बनाने, उसकी भूमि की काशत करने को उद्यत रहती है। एक ओर अपने पति की प्रतीक्षा में उसके नेत्र अन्धे हुए जाते हैं, तो दूसरी ओर एक सुगंधित फूल (नेसर) के न मिलने पर वह अपने पति से राजीनामा (तलाक) मांगने लग पड़ती है। समग्र रूप में नारी एक ओर केवल विलास की वस्तु दिखाई पड़ती है, जिसमें उसका सहर्ष सहयोग है, तो दूसरी ओर बैल की तरह खेती-पाती के लिए उसका उपयोग हुआ दीख पड़ता है।

आर्थिक रूप से स्त्री स्वाधीन है या पराधीन, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं तो वह स्वतन्त्र प्रतीत होती है और तलाक की रकम स्वयं दे देती है, पर दूसरी ओर भाई की दयनीय दशा देखकर वह उसे अपना चन्द्रहार दे देती है और फलस्वरूप स्वयं दीवार में चिन दी जाती है। प्रतीत होता है कि देश के मैदानी भागों के प्रभाव से दूर रहने वाली कुल्लुई नारी आर्थिक स्वाधीनता अथवा पराधीनता के सम्बन्ध में अधिक चिन्तित नहीं है। उसके शरीर में शक्ति है, बाहु में बल है, पीठ में भारी से भारी बोझ ढोने की क्षमता। वह अपना निर्वाह स्वयं काम करके कर सकती है। हां समाज के उस वर्ग की नारी, जिस पर शास्त्रीय हिन्दूधर्म की अधिक छाप है, अथवा जो बाहर से आकर यहां बसा है, आर्थिक रूप से पराधीन है और उसी मात्रा में उसका जीवन बन्धनयुक्त है, वह अपने ससुराल वालों की दया की याचक है, यहां तक कि सास उसे विष देकर मार भी सकती है।

(२) सती रूप—सती लोक-कवि के लिए श्रद्धा और रहस्य का विषय है। कुल्लुई लोक-गीतों में इस रहस्य की हृदय-स्पर्शी व्यंजना बड़ी गहराई से व्यक्त हुई है। कई गीतों में अग्नि-आरोहण करने वाली विधवा के ससुराल पक्ष के परिजन प्रसन्न हैं किन्तु पितृ पक्ष में मां बाप, भाई रोते-बिलखते, सती को बार-बार समझाते मिलते हैं कि वह सती न हो। वे उससे पूछते हैं कि वह किन वस्तुओं के अभाव के कारण सती होना चाहती है? वह उन्हें बता दे जिससे वे तुरन्त उसे पूरा कर दें।

सती चिता का आरोहण करने से पूर्व शृंगार करती है, पालकी में बैठकर श्मशान आती है और भस्म हो जाने पर "सोलह साउणियों" द्वारा स्वर्ग में पहुंचाई जाती है। उसकी पालकी पर चिउटी और राम-लक्ष्मण-सीता की

मूर्तियां खुदी रहती हैं।

(३) **पारिवारिक चित्रण**—संयुक्त परिवार भारतीय जीवन की विशेषता रही है। कुल्लुई लोक-साहित्य में बहुधा इस प्रकार के परिवार का ही चित्रण हुआ है, जिसमें अनेक सदस्य हैं। कहीं इस परिवार का मुखिया "दादा" है और कहीं-कहीं माता। जहाँ दादा प्रधान है वहां परिवार के सब सदस्य परस्पर प्रेम पूर्वक रहते हैं और सुख-दुख में समान रूप से भाग लेते हैं। परिवार में सुख-शांति है, कलह का नाम नहीं। जहां माता परिवार की मुखिया है, वहां बहू का जीवन कष्टमय है। कन्या लाड़ली है, पुत्र जुआ-पाशा खेलने या इस प्रकार के अन्य व्यसनों में रत है।

पिता का उल्लेख प्राय: संस्कार गीतों में ही आता है।

बहू—कुल्लुई परिवार में दृष्टि सबसे पहले बहू पर जाती है, परिवार की वही एक ऐसी सदस्या है जिसका चित्रण लोक-कवि ने विशदता से किया है।

बधुओं का जीवन कहीं-कहीं सुखमय है, किन्तु अनेक परिवारों में उनका जीवन नितान्त नीरस और कष्टमय है। ससुराल में जहां जीवन नये सिरे से आरम्भ होता है, उत्साह और उमंगों का स्थान सिसकियां ले लेती हैं। प्रात: से शाम तक उन्हें दासी की भांति काम करना पड़ता है। खाने को सूखी-रूखी रोटी मिलती है, यही कारण है कि जब वे अपनी माता के पास आती हैं तो वापस ससुराल जाने तक का नाम भी नहीं लेतीं। वधुओं ने अनेक गीतों में अपनी माताओं से बड़े ही दुख भरे शब्दों में ससुराल की शिकायत की है, वे अपने ससुराल के दुखी जीवन की अपेक्षा पीहर में रहना अधिक पसन्द करती हैं। एक बधू अपनी माता को कहती है:

तेऊ देशी जांदी ए बी न जाऊं माए

मां, उस देश (पति के देश) तो मैं कभी नहीं जाऊंगी। वहां के लोग न तो खाना जानते हैं और न पहनना। न उन्हें उठने-बैठने का सलीका है और न खेती-बाड़ी करने का ढंग आता है। सुबह से शाम तक मैं नौकर की भांति काम करती हूं। मां, मैं वहां नहीं जाऊंगी।

ससुराल लौटने में उसकी अरुचि का एक और कारण भी है। विवाह हुए बहुत समय बीत गया, किन्तु वह एक बार भी पीहर नहीं आई। माता-पिता, भाई-बहन की याद सताती है। वह उस शुभ दिन की प्रतीक्षा करती रही जब वह अपने 'पेउके' जा सकेगी और इसके लिए अंगुलियों पर दिनों की गिनती करती है:

दूरो री धियाणा ओठिया दुसड़े गौणा।

उसके ससुराल वाले उसे पीहर जाने की अनुमति नहीं देते। उसने कई

बार अपनी सास और पति से इस सम्बन्ध में चर्चा की, किन्तु उन्होंने टाल दिया। एक दिन जब उसने पुनः यह प्रसंग चलाया तो सास ने कहा, अपने ससुर से आज्ञा ले लो। ससुर 'कुल बहू' को कहता है अपने जेठ से आज्ञा लो, इस प्रकार बेचारी कुल बहू को जेठानी, देवर, देवरानी और ननद आदि के पास भिजवाया जाता है। गुड़ियों के साथ खेलने वाली ननद कहती है, 'कुल-भाभी, अपने स्वामी को जाकर पूछो। बेचारी स्वामी के पास आती है। उसकी प्रार्थना सुन वह उत्तर देता है, हां चले जाना, पर बिना बुलाए जाओगी कैसे? अच्छा, आकाश में जितने तारे हैं, उतने दिनों तक प्रतीक्षा करो और नदी के किनारे फूलने फलने वाले घास के जितने बीज हैं उतनी संख्या में निमंत्रणों का इन्तजार करो। बेचारी, क्या कभी लौट पाती।

सास-बहू—लोक-गीतों में सास हमें अत्यन्त कठोर स्वभाव की मिलती है। बहू को वह निरन्तर कष्ट देती है। उसके लिए कभी उसके मुख से प्यार के वचन नहीं निकलते। संभवतः इसी व्यवहार को लक्ष्य कर एक दिन बहू पूछती है:

"शाशुइए, केभी आ सौ साजी सतरैण ?"
"सास, संक्राति[1] कब है ? सतरैण का उत्सव कब है ?"

सास तुरन्त उत्तर देती है :

"बहूए, तोले सोए डोंकी[2] सोए वैण
"बहू, तुम्हारे लिए वही भोजन और वही वाणी।"

बधू अपने भाई को बतलाती है कि उसकी सास "आग की लपट" है, अतः वह घर के अन्दर आए तो तुम तुरन्त द्वार के बाहर चले जाना, जिससे उसे यह मालूम न हो सके कि तुम मुझसे मिल चुके हो और मैंने तुझे अच्छा-अच्छा भोजन खिला लिया है।

सास केवल जिह्वा से ही प्रहार नहीं करती, यदि वह उचित समझे तो बहू को विष खिलाकर मार तक डालती है। मरण-शैय्या पर पड़ी एक बहू कहती है :

"शीलै जै बातै पीशौ माहुरी,
दूवा देंही ए पियाउओ।"

ऐसा प्रतीत होता है कि बहू बहुधा मूक पशु की भांति सब कष्ट सहन

१. संक्राति का दिन इस प्रदेश में त्योहार के रूप में मनाया जाता है।
२. कड़छी, जिससे सालन दिया जाता है, यहां मुहावरे के रूप में प्रयुक्त! भोजन से अभिप्राय:।

करती जाती है और मुंह से शिकायत नहीं करती। ऐसे संयुक्त परिवार में संभवतः पति-प्रेम भी उसे पूर्णतया प्राप्त नहीं।

लोक-गीतों में वधू की करुण-कहानी तो कई बार सामने आती है, सास के अत्याचारों का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है, पर स्वयं सास के भावों का उल्लेख कम हुआ है। कुल्लुई लामण में इस प्रकार का एक भाव अप्रत्यक्ष रूप में सामने आया है। सास बेचारी वृद्धा होने पर भी घर-गृहस्थी का काम कर रही है किन्तु उसकी बहू सारे दिन बेकार बैठी रहती है। सास बहू के काम न करने की शिकायत करती है। वह सत्युग और कलियुग की तुलना द्वार वधू के व्यवहार की आलोचना करती है :

सौती जुगा सौती जुगारी बारी
रीख पीशा थौ फाफरो, बाग आणथौ बाकरी चारी।
कली जुगा कली जुगा री बारी
शाशू खाली खौटिया, बोशिया खा बुआरी।

सतयुग में रीछ "फाफरा" पीस लाता था और शेर बकरी चराया करता था, किन्तु अब कलियुग में सास कमाकर खाती है तो बहू बैठकर अर्थात् बिना कमाए।

ससुर-बहू—ससुर प्रायः एकान्त-जीवी प्राणी दीख पड़ता है, सास-बहू के झगड़ों से वह दूर रहता है। वधू को वह कुललक्ष्मी मानता है। इक्के-दुक्के गीतों में ससुर की बहू के प्रति कामुकता का वर्णन भी मिलता है, पर ऐसे प्रसंग बहुत कम मिलते हैं और जहां हैं भी वहां लोक-कवि ने ससुर की कटु आलोचना की है और उसे समाज में लांछित किया है। "तुलसीराम" के नृत्य गीत के ये पद इसके उदाहरण हैं :

थोड़ो-थोड़ो पीए तुड़सीरामा
बाशा बाईआ रो पाणी
सारे देशा हूई चू बचू
बोहू देवकू आणी।

(तुलसी राम, बाशा बावली का जल थोड़ा पीना। सारे देश में आलोचना हो रही है कि तुमने बहू देवकी से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया है।)

देवर-भाभी—समाज में देवर-भाभी का सम्बन्ध बड़ा पुनीत माना जाता है। भाभी देवर के लिए माता तुल्य है। किन्तु लोक-गीतों में इस प्रकार के सम्बन्ध का उल्लेख नहीं। इनमें उनके पारिस्परिक अनुचित सम्बन्धों का ही वर्णन है। पति परदेश गया है, वह १२ वर्षों के उपरांत घर लौटता है। इस

बीच देवर अपनी भाभी के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और भाभी को पांच लड़ियों की डोडमाड़ा (आभूषण) उपहार में देता है। पति बिना पूर्व सूचना दिए घर लौटता है और पत्नी के गले में पड़ी डोडमाड़ा को देखकर पूछता है यह किसने दी ? पत्नी टाल-मटोल करती है, कहती है अपनी माता से पूछ लो। अन्त में स्वीकार करती है :

"झूठ गलांदे नरका जो जांदे
सच गलांदे बेडा पार
डोडामाड़ा देरे दीतियां।"

यह 'डोडमाड़ा' देवर ने दी है। यह सुन वह भाई को मार डालने को तय्यार है, पर मां समझाती है :

"भाइयां दी जोड़ी सदा ओ सलामत
नारां बतैहरड़ीयां ।"

भाइयों की जोड़ी सदा सलामत रहे, नारियां तो अनेकों मिल जाती हैं। संभवत: भाई के स्थान पर वह पत्नी को बध करने की ओर संकेत करती है।

ननद-भावज—ननद और भावज के सम्बन्धों में शिथिलता के दर्शन होते हैं, उनमें परस्पर विरोध ही दीख पड़ता है। ननद भाभी में अवगुण ही देखती है और भाई तथा माता से उसकी निंदा करती है। अवसर मिलने पर स्वयं उसे जली-कटी सुना देती है। भावज के लिए ननद "बिजड़ी जामाका" बिजली की कौंध है।

ननद का विवाह हो जाने और भावज के स्वयं गृहस्वामिनी बन जाने पर उनके इस सम्बन्ध में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। कुछ समय पूर्व की पशु के समान मूक वह स्वामिनी भावज का रूप धारण कर एक संकुचित हृदय की नारी बन जाती है, जिसे ननद का अपने घर आना अरुचिकर है। प्रतीत होता है कि सास द्वारा दिए गए कष्टों का बदला वह उसकी बेटी से निकालना चाहती है।

भाई बहन को अपने घर बुला लाता है परन्तु भावज उसके लिए द्वार बन्द कर देती है। उसे कहती है, घर पर खाने के लिए कुछ नहीं। यदि उसे खाना ही है, तो चूल्हे की राख खा ले :

भाई ए आंणी वेदीआ, भाभीए हूडो दुआरा
फुट मेरी दुआरी ए, होय चोखनी चारा।
न फूटे दुआरी ए, न होए चोखनी चारा
ओरू आए नोंणने, खाइ लेए चूली का छारा।

भावज के हाथों अपमानित होने पर भी बहन भाई के यहां कुछ दिन बिता लेती है। जब ससुराल लौटने का समय आता है तो भाभी से प्रार्थना करती है, भाभी मुझे ससुराल जाना है, सफर लम्बा है, मेरे पांव धो ले, उनमें तेल लगा ले, मेरे लिए भोजन पका ले। भाभी उत्तर देती है, घर पर जल नहीं कि तेरे पांव धो सकूँ। तुम्हारे भाई ने गाएं-भैंसे नहीं पाल रखी हैं। कहां से घी लाकर तुम्हारे पैरों की मालिश करूं। तुम्हारे भाई ने बेगमी चावल नहीं ला रखे हैं, भोजन कैसे पकाऊँ। भावज के उत्तर को सुनकर बेचारी ननद रो पड़ती है। कहती है, यदि मेरी माता जीवित होती तो अपनी अंगिया खोलकर और अपने गले के आभूषण उतार कर मुझे दे देती।

भाई-बहन—कुल्लुई लोक-साहित्य में चित्रित सभी पात्रों में से भाई-बहन का चित्रण अत्यन्त पुनीत है। उनके सम्बन्ध स्वर्गीय हैं। बहन भाई के लिए अपने गले का चन्द्रहार उतार कर देती है और फलस्वरूप स्वयं मृत्यु को आलिंगित करती है। दूर से ही वह भाई को आता हुआ देख लेती है और सास तथा ननद से गुप्त रखकर उसे अच्छे से अच्छा भोजन खिलाती है। उसके घोड़े तक की वह आवभगत करती है।

अपने भाई से वह अपने हृदय की सारी व्यथा कह सुनाती है। उसे देखकर वह हर्षातिरेक में रो पड़ती है। जब भाई वापस जाना चाहता है, तो बहन ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वर्षा अत्यधिक हो जाए, जिससे रास्ते टूट जाएं और भाई जा न सके। वह उसे कहती है, मैं तुम्हारे लिए सोने की गागर में शीतल जल भर लाऊंगी। तुम्हें दूध, दही और ताजे घी में बना भोजन खिलाऊंगी।

यह प्रेम एकपक्षीय नहीं। भाई भी उसी प्रकार अपनी बहन का ध्यान रखता है। जब वह बहन से विदा होकर अपनी माता के पास आता है और माता उससे पुत्री का समाचार पूछती है तो वह उत्तर देता है कि मां, जब मैं विदा हुआ तो वह रो पड़ी थी। माता रोती बहन को छोड़ आने पर उसकी भर्त्सना करती है। यह जानकर कि बहन संभवतः दुःखी होगी, वह तुरन्त लौट जाता है और नंगे पांव ही बहन के पास पहुंचकर उसे अपने साथ ले आता है। भाई को जब यह दुखद समाचार सुनाया जाता है कि उसकी बहन सती हो रही है, तो भावावेश में आकर कह उठता है कि कौन है ऐसा व्यक्ति जो उसकी बहन को चिता में जला दे। सब काम-काज छोड़कर भागता-दौड़ता वह विधवा बहन के पास आ जाता है और उसे सती होने से रोकने का हर संभव प्रयत्न करता है। वह आश्वासन देता है कि उसे जिस वस्तु की भी आवश्यकता हो वह उसे दे देगा। जब बहन अपनी हठ पर अड़ी रहती है तो वह चिता में घी के घड़े उंडेल देता है जिस से बहन का शरीर शीघ्र भस्म हो जाए और उसे अधिक कष्ट न भोगना पड़े।

बहन का भाई के प्रति प्रेम का एक उत्कृष्ट उदाहरण एक लामण में प्रस्तुत है जहां बहन कहती है कि संसार में सबसे सुन्दर पुरुष उसका भाई है। वह अपने भाई के अंग-प्रत्यंग की प्रशंसा करती है।

माता-पुत्र-पुत्री—यद्यपि किसी लोक-गीत में माता को स्वार्थी प्रदर्शित किया गया है जो अपनी वासनाओं पर अपनी सन्तान को न्यौछावर कर देती है, पर साधारणतया माता का अपनी सन्तान के प्रति अगाध स्नेह ही दिखाया गया है। कुल्लुई माता पुत्र तथा पुत्री में अधिक भेद नहीं समझती, उसके लिए दोनों समान रूप से प्रिय हैं, पुत्री अपेक्षाकृत अधिक क्योंकि वह थोड़े दिनों तक ही उसके साथ रहेगी।

पति-पत्नी—मुख्यतः पति-पत्नी का अलौकिक और दिव्य प्रेम कुल्लुई लोक-गीतों में दिखाया गया है। पत्नी प्रत्येक कार्य में पति का हाथ बंटाती है, उसके सुख-दुख में बराबर का भाग लेती है। उसकी अकाल मृत्यु पर सती तक हो जाती है। यदि पति परदेश गया हुआ होता है तो अपने सत् की रक्षा करती हुई उसके आगमन की प्रतीक्षा करती है, 'झुल्पिया' गीत में जेठ के लाख प्रलोभन देने पर भी वह अपने प्रति-प्रेम में कोई अन्तर नहीं आने देती। कुछ ऐसे भी लोक-गीत हैं जहां पत्नी विवाह के बन्धन को अधिक महत्व नहीं देती और उधर पति मामूली अपराध पर पत्नी के प्राण ले लेता है।

साधु—कुल्लुई समाज में साधु-सन्तों का बड़ा आदर किया जाता है। उन्हें सम्मानपूर्वक घर पर ठहराया जाता है और कभी अविश्वास की दृष्टि से नहीं देखा जाता। यही कारण है कि नायक जब अन्य साधनों द्वारा अपनी नायिका से मिलने में असमर्थ हो जाता है तो 'साधु वैरागी' का भेष बनाकर वह उसके घर चला जाता है। एक "दशी" में तो स्वयं नायिका उसे 'साधु वैरागी' रूप धारण कर आने का निमंत्रण देती है जिससे कि उसके परिवार के अन्य सदस्य उस पर सन्देह न करें।

भाषा शास्त्र सम्बन्धी महत्व—भाषा शास्त्र की दृष्टि से लोक-साहित्य का महत्व सबसे अधिक है। भाषा-शास्त्री के लिए इसमें बहुमूल्य रत्न पड़े हैं। लोक-गाथाओं, लोक-गीतों और लोक-कथाओं में व्यवहृत शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषा शास्त्र सम्बन्धी अनेक गुत्थियां सुलझाई जा सकती हैं। शिष्ट भाषा की समृद्धि में "छाती ओ कोल" छाती का घोंसला, "पाचो पांणी" पत्ते पर पानी आदि कुल्लुई मुहावरे बड़ा योग दे सकते हैं।

कुल्लुई लोक-साहित्य में कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जिन के भावों को समुचित रूप से व्यक्त करने में हिन्दी असमर्थ है। उदाहरण के लिए कुल्लुई 'झरी' शब्द है। इसका अर्थ हम 'विरह' करते हैं, परन्तु "झरी" का भाव 'विरह' से

पूरी तरह व्यक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार का दूसरा शब्द "लुम्बालुम्बी"[१] है। इस का हम 'लटकना' अर्थ हिन्दी में करते हैं, वास्तविक भाव इससे कुछ भिन्न है। 'लुम्बालुम्बी', 'लटकना,' 'चूना' और 'रिसना' के भावों को वहन करता है। कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी की विभिन्न बोलियों में नहीं मिलते। "रिगड़"[१], चिश[२], चीश[३], आदि ऐसे ही शब्द हैं। हिन्दी को अपने भण्डार की वृद्धि के लिए कुल्लुई जैसी विभिन्न बोलियों की शब्दावली का ऋणी बनना होगा। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "प्रचंड शक्तिशालिनी हिन्दी भाषा की विभूति का विशाल मंदिर जनपदीय भाषाओं को उखाड़कर नहीं बन सकता, वरन् इस पंचायतनी प्रासाद की दृढ़ जगती में सभी भाषाओं और बोलियों के सुगढ़ प्रस्तरों का स्वागत करना होगा।"[४]

१. सेवक,
२. प्यास,
३. जल,
४. पृथ्वी पुत्र, पृष्ठ २७।

परिशिष्ट

कुल्लुई भाषा

पहाड़ी भाषाएँ

उत्तरी भारत की पहाड़ी भाषाओं को तीन भागों में बांटा जा सकता है, पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाड़ी । इस प्रदेश के सुदूर पूर्व में खस-कुरा या पूर्वी पहाड़ी है, जिसे आमतौर पर नेपाली कहा जाता है। उसके पश्चिम में तथा इस भूखण्ड के मध्य में कुमाऊनी और गढ़वाली भाषाएं हैं ।

पश्चिमी पहाड़ी पूर्व में जौनसार बाबर से पश्चिम में चम्बा जिला तक बोली जाती है । इसकी उपभाषायें हैं, जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, कुल्लुई, मंडयाली, कांगड़ी, चम्याली और भद्रवाही । इन उपभाषाओं की अनेक बोलियाँ हैं, जो शब्द-समूह, व्याकरण तथा उच्चारण में थोड़े-थोड़े फासले, पांच-सात गांव के बाद एक-दूसरी से थोड़ी बहुत भिन्न हो जाती हैं ।

जौनसारी : यह उपभाषा उत्तर प्रदेश के जौनसार-बाबर के इलाके में बोली जाती है ।

सिरमौरी : हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिला तथा उसके सीमावर्ती जिले महासू की जुब्बल तहसील के कुछ भागों में बोली जाती है। जौनसारी से इसका निकट का सम्बन्ध है, किन्तु ज्यों-ज्यों हम गिरी नदी के पूर्वोत्तर जुब्बल में आते हैं, यह क्योंथली से मिलती जाती है ।

बघाटी और क्योंथली : इन दोनों का आपस में काफी निकट का सम्बन्ध है। बघाटी हिमाचल प्रदेश की सोलन तहसील में और क्योंथली (किउथली) अपनी कई बोलियों के रूप में शिमला के आस-पास चारों ओर बोली जाती है ।

मंडयाली : मंडी और सुकेत में बोली जाती है । अपने पूर्वी भाग में बघाटी और क्योंथली के सम्पर्क में है और उत्तर में कुल्लुई की सराजी से । पश्चिम में कांगड़ी का अंश लिये है ।

कांगड़ी : यह उपभाषा समूचे कांगड़ा जिले में बोली जाती है । इस उपभाषा पर पंजाबी का थोड़ा-बहुत प्रभाव है ।

चम्याली : कांगड़ी से मिलती-जुलती चम्याली हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले में बोली जाती है, जिसके पश्चिम में काश्मीर राज्य के जम्मू प्रांत का सीमावर्ती इलाका भद्रवाह है, जहां भद्रवाही बोली जाती है।

कुल्लुई : मोटे तौर पर इस उपभाषा का क्षेत्र अपनी कई बोलियों के रूप में सारे कुल्लू जिला से लेकर महासू जिला के उत्तर में, रामपुर तहसील में सराहन, पूर्वोत्तर में कोटखाई, जुब्बल, थरोच और दक्षिण में बलसन, ठ्योग तथा फागू तक है।

कुल्लुई की बोलियों में प्रमुख हैं—कुल्लू तहसील की कुल्लुई, इनर सराज तथा मंडी सराज की सराजी और सेजी, और दक्षिण में औटर सराज तथा महासू रामपुर की तहसील, कोटगढ़, कुम्हारसेन, शंगरी और निकटवर्ती इलाकों की शोडोची अथवा सडोची और औटर सराजी।

औटर सराजी और सडोची को डा० ग्रियर्सन ने सतलुज समूह का नाम भी दिया है। सतलुज समूह की बोलियां एक ओर शिमला के चारों ओर बोली जाने वाली क्योंथली बोलियों और दूसरी ओर सेंजी, सराजी तथा कुल्लुई को मिलाती हैं और इस प्रकार एक सेतु का काम करती हैं।

भाषा का यदि शत-प्रतिशत विशुद्ध रूप लिया जाए तो बोलियों के कई और भी उपभाग हो जाते हैं। उस दशा में कुल्लुई भाषा कुल्लुई तहसील की केवल तीन वजीरियों, लग-महाराज, लग-सारी और लग-परोड़ में बोली जाती है और वहां भी प्रत्येक बजीरी में उच्चारण, व्याकरण तथा शब्द-समूह में अन्तर आ जाता है। कुल्लू-सुलतानपुर की अपनी पृथक् भाषा रह जाती है, जिस पर पंजाबी, कांगड़ी आदि का बहुत गहरा प्रभाव है।

लोक-साहित्य की दृष्टि से कुल्लुई साहित्य का केन्द्र सतलुज समूह की बोलियों का क्षेत्र है, जिसमें एक ओर बुशैहर, कुम्हारसेन, शंगरी आदि प्राचीन राज्य थे और दूसरी ओर कुल्लू राज्य का भी एक अच्छा-खासा भाग उसके अन्तर्गत आ जाता है। यह क्षेत्र इस समूचे भूखंड की संस्कृति का केन्द्र रहा है। वैसे भी भौगोलिक दृष्टि से यह मध्यवर्ती इलाका है और यहीं पर संस्कृति की वे दो-प्राचीन और मध्य कालीन धारायें, जो इस क्षेत्र की एक विशेष प्रमुखता है, साथ-साथ बहती दिखाई देती हैं। लोक कथाओं और लोक गीतों के अधिकांश भाग का यही प्रदेश घटना-स्थल है, जहां के कई स्थानों का उनमें बार-बार जिकर आता है। लोक-साहित्य को दृष्टि में रखते हुए हम इन विभिन्न बोलियों को एक ही भाषा—कुल्लुई के अन्तर्गत मान सकते हैं, यद्यपि भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण आदि की दृष्टि से इनका अपना पृथक् स्थान ही हो।

विशेषताएँ

उच्चारण : विशेष कुल्लुई बोली में दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाने की प्रवृत्ति

है जैसे हाथ का उच्चारण होथ और कान का कौन। अन्तिम 'स' बहुधा 'ह' बन जाता है जैसे 'बरास' का 'बराह'।

समूची कुल्लुई उपभाषा में 'अ' का प्रायः 'औ' जैसे 'और' के समान उच्चारण होता है। कहीं-कहीं 'ए' का उच्चारण बड़े हल्के ढंग से होता है और लिखने में 'इ' लिखा जाता है स्वर उच्चारणतया बड़ी असावधानी से होता है और 'इ' तथा 'ई' और 'ओ' तथा 'औ' में बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर भेद रहता है। जैसे 'होना' का 'हौणो'।

शिमला सराजी (क्योंथली) में अन्तिम 'इ' का प्रायः लोप हो जाता है और उसके स्थान पर 'ई' का प्रयोग होता है। यदि 'ए' से पहले 'इ' स्वर आए तो उस गुण स्वर 'ए' की ध्वनि कहीं-कहीं 'ई' हो जाती है। यदि पहले 'इ' न हो तो ध्वनि कभी-कभी 'ओ' बन जाती है।

हिन्दी की वर्णमाला के अतिरिक्त इस प्रदेश में दो और व्यंजन हैं, जिनकी ध्वनि ट्स् और ड्ज या अज् जैसी है। जैसे चाजारो की ध्वनि ट्सजारो जैसी और जपणू (कहना) की अजोपणू जैसी।

संस्कृत 'त्र' जब हिन्दी में 'त' बनता है तो वह 'त' कुल्लुई भाषा में 'च' बन जाता है, जैसे संस्कृत की त्रिणी से हिन्दी में तीन और कुल्लुई में चीन या चौन बनता है। इसी प्रकार संस्कृत 'क्षेत्र' का हिन्दी 'खेत', यहां पर 'खेच' बन जाता है।

कई स्थानों पर मध्यवर्ती 'क' का 'ग' रूप हो जाता है, जैसे 'सूकर' का 'सूंगर'। इसी प्रकार मध्य 'र' और 'ल' का प्रायः लोप हो जाता है, जैसे 'घोड़े का' 'गोहड़े-रा-औ=गोहड़े-ओ'

अन्य भाषा के शब्दों में यदि आरम्भ में 'य' अथवा 'व' हो, तो उनका लोप हो जाता है, जैसे 'याद' का 'आद' और 'वास्ते' का 'आस्ते'।

हिन्दी में केवल एक ऊष्म दन्त्य 'स' है, जो संस्कृत के तालव्य 'श' तथा मूर्धन्य 'ष' दोनों का काम करता है। कुल्लुई में संस्कृत के तालव्य 'श' का भी प्रयोग होता है, जैसे संस्कृत का 'देश' हिन्दी का 'देस' और कुल्लुई का 'देश' होता है। मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' हो जाता है, जैसे 'औषधी' का 'औखटी' अथवा 'औखद'। 'ष' जब कभी 'च्छ' भी बन जाता है, जैसे 'मानुष' का 'माणच्छ'।

हिन्दी की आकारान्त पुंल्लिग संज्ञाओं का अन्तिम 'आ', या 'ओ' 'ऊ' बन जाता है, जैसे हिन्दी 'घोड़ा' का 'गोहड़ो' अथवा 'गोहड़ू'।

यद्यपि महाप्राण 'ख', 'छ', 'थ', 'फ' में कोई विकार नहीं आता, पर 'घ', 'झ', 'ढ' और 'य' तथा 'भ' में महाप्राणत्व की न्यूनता लक्षित होती है, जैसे 'भी' का 'ब्री', 'भाई' का 'ब्राई', 'बांधना' का 'बांदनू' और 'धी' (बेटी) का 'दी'।

बहुधा ऐसा देखा गया है कि महाप्राण 'घ', 'भ' आदि के उच्चारण के समय स्वर साधारण व्यंजन के साथ आ जाता है, जैसे 'घोड़ा' का 'गोहड़ो', 'घर' का 'गोहर'। इसी प्रकार 'होना' की ध्वनि 'ओंणों' या 'ओहणों' होती है।

कभी-कभी दूसरी भाषाओं के शब्दों का 'क', 'ग', 'च' 'ज', 'त', 'द' और 'प' 'ब' बन जाता है।

संज्ञा—संज्ञा के मुख्यतः दो ही रूप होते हैं—मूल तथा विकारी। ईकारान्त तद्भव पुंल्लिग को छोड़, अन्य तद्भव संज्ञाओं के दो भेद हैं—सबल और निर्बल। सबल तद्भव संज्ञाओं के अन्त में 'आ', 'ओ' या 'ऊ' आता है, जैसे हिन्दी 'घोड़ा' का 'गोहड़ो' या 'गोहड़ू'। निर्बल संज्ञाएं व्यंजनांत होती हैं, जैसे हिन्दी का 'घर' 'गोहर' या 'घोर'। औटर सराज और सड़ोची में संज्ञा के मूल रूप के साथ जहाँ कहीं अन्त में 'टो' या 'टरौ' लग जाता है, जैसे 'भारटो', हिन्दी ऊंचा का 'उछटो' या 'उशटो'।

लिंग : कुल्लुई में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के स्त्रीलिंग और पुंल्लिग दो रूप ही होते हैं। प्राणियों की द्योतक संज्ञाओं के सहगामी स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'अन', 'अण' प्रत्यय लगाया जाता है। भाट्—भाट्+अण=भाटण। चमार+अण=चमारण। ऊकारान्त संज्ञाओं में 'ऊ' के स्थान पर 'ई' लगाते हैं, जैसे छोटू—छोटी, शोरू—शोरी। इस प्रकार ओकारान्त संज्ञाओं में भी 'ई' का प्रयोग होता है, जैसे गोहड़ो—गोहड़ी। कई बार हिन्दी के शब्दों का लिंग परिवर्तन हो जाता है, जैसे पुंल्लिग 'गगन' का यहां स्त्रीलिंग 'गैण' या 'गैणा' बन जाता है।

वचन : हिन्दी के समान ही कुल्लुई में भी दो ही वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। बहुधा एकवचन और बहुवचन के रूप समान ही होते हैं।

कारक : कारक प्रायः भारत की अन्य आर्य भाषाओं जैसे ही हैं। एकवचन में कर्त्ता और विकारी रूप है और उसी प्रकार बहुवचन में भी। विकारी रूप एकवचन में एक जैसा होता है, जैसे गोहड़े अथवा घोड़े एकवचन तथा बहुवचन दोनों में। इसके अतिरिक्त सबल तद्भव संज्ञाओं के हिन्दी के समान ही रूप बनते हैं, जैसे कर्त्ता एकवचन (घोड़ा) गौहड़ो, बहुवचन गौहड़े। विकारी एक तथा बहुवचन गौहड़े।

निर्बल तद्भव पुंल्लिग संज्ञाओं के कारक रूप यहां की एक अन्य विशेषता है। कर्त्ता के रूप में कोई स्वर जोड़ देने से विकारी रूप बन जाता है, किन्तु यह स्वर भिन्न-भिन्न बोलियों में भिन्न-भिन्न हैं, और यही इनके आपसी भेद की मुख्य पहचान है।

उपभाषा का नाम	कर्त्ता एकवचन	विकारी एकवचन
क्योंथली	गोहर	गोहरो
सतलुज समूह	गोहर (घौर)	घौरे, गोहरे
कुल्लुई	घौर, गोहर	घौरे, गोहरे, गोहरा

निर्बल तद्भव स्त्रीलिंग संज्ञाओं का विकारी रूप भी स्वर की वृद्धि से बन जाता है, जैसे

	कर्त्ता एकवचन	विकारी एकवचन
क्योंथली	बुहण	बौहणे
सतलुज समूह	बेहण	बेहणी
कुल्लुई	बेहण	बेहणी

विकारी के अतिरिक्त करण और अधिकरण एकवचन तथा बहुवचन दोनों रूप 'ए' जोड़ने से बन जाते हैं। जैसे बाबे (पिता द्वारा), घौरे (घर में)।

विभक्तियों के अन्य रूप प्रत्ययों के प्रयोग द्वारा बनते हैं और वे भिन्न-भिन्न बोलियों में पृथक्-पृथक् हैं, जैसे :—

	को	से	का, के, की	में
क्योंथली	खे, हागे, आगे, गे	यो, हागो, फा	रो	दो, पांदे
सतलुज समूह	लै	का, कै	ओ	दी
कुल्लुई	बे	न	रा	मांझा, मांझे

विशेषण : विशेषणों में कोई भिन्नता नहीं और वे अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही हैं।

सर्वनाम : उत्तम तथा मध्यम पुरुष सर्वनामों के एकवचन में कई रूप बनते हैं, जिनमें मुख्यतः लिखने का ही भेद है। कर्त्ता उत्तम पुरुष में 'अ', और 'हअऊ' तथा विकारी उत्तम पुरुष एकवचन में मा, मू या मो रूप होता है।

क्रिया : वर्तमान काल में सकर्मक क्रिया के कई रूप हैं, किन्तु प्रायः धातु 'ओ', 'हो', 'आ' या 'है' का ही अधिक प्रयोग होता है। वर्तमान काल के 'है' का एक अन्य रूप है 'आथी' या 'एथी'। यह केवल नकारात्मक भाव के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे—जल नहीं है। पाणी नेहीं आथी, पाणी नेहीं एथी।

भूतकाल के लिए 'थियो', 'थओ', थो या 'ती', का प्रयोग होता है, जैसे—'वह गई हुई थी। सोती नोंठी दी, सोती नाही नी। भूतकाल एकवचन पुंलिंग रूप 'त', बहुवचन 'तै', स्त्रीलिंग एकवचन 'ती' और बहुवचन भी 'ती'।

भविष्यत् काल प्रायः 'मूं' लगाकर बनाया जाता है, जैसे—मैं मारूंगा।

मूं मार मूं, किन्तु अन्य पुरुष में यह रूप 'सौ मारा', 'वह मारेगा' बन जाता है।

कुछ प्रमुख धातुओं के रूप इन बोलियों में एकदम भिन्न हैं, जैसे—जाना के लिए 'डेउणों,, 'नांहणों', 'नोठणों'। कुल्लुई विशेष में जाना या भागना के लिए 'नोशणू' का प्रयोग होता है। इस प्रकार पीना के लिये 'पीना' या 'भूठणा' प्रयुक्त होता है।

नीचे हम कतिपय शब्दों के विभक्तियों के रूप देते हैं :

संज्ञा : ओकारान्त घोड़ो (गोहड़ो), पुंल्लिग

सतलुज समूह :

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	घोड़ो	घोड़े
कर्म	घोड़ेओ	घोड़ेओ
करण	घोड़े के	घोड़े के
सम्प्रदान	घोड़े लै	घोड़े लै
अपादान	घोड़े का	घोड़े का
सम्बन्ध	घोड़े ये, ओ	घोड़े य
अधिकरण	घोड़े दी	घोड़े दी

कुल्लुई :

कर्त्ता	घोड़े	घोड़े
कर्म	घोड़े बे	घोड़ेवें
करण	घोड़ेन	घोड़ेयान
सम्प्रदान	घोड़ेबे	घोड़ेयाबे
अपादान	घोड़ेन	घोड़ेयान
सम्बन्ध	घोड़ेरा	घाड़ेरा
अधिकरण	घोड़े मांझे	घोड़े मांझे

(व्यंजनान्त घौर पुंल्लिग)

सतलुज समूह :

कर्त्ता	घौर	घौर
कर्म	घौरे	घौरे
करण	घौरा के	घौरा के
सम्प्रदान	घौरा लै	घौरा लै
अपादान	घौरा का	घौरा का
सम्बन्ध	घौरे	घौरे

अधिकरण	घौरा दी	घौरा दी

कुल्लुई :

कर्त्ता	घौर	घौर
कर्म	घौरा बे	घौरा बे
करण	घौरान	घौरान
सम्प्रदान	घौराबे	घौराबे
अपादान	घौरान	घौरान
सम्बन्ध	घौरेरी	घौरेरी
अधिकरण	घौरा फोरे घौरा माँझे	घौरा फोरे, घौरा माँझे

(ईकारान्त हाथी पुल्लिग)

सतलुत समूह :—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	हाथी	हाथी
कर्म	हाथी ओ	हाथी ओ
करण	हाथी के	हाथी के
सम्प्रदान	हाथी लै	हाथी लै
अपादान	हाथी का	हाथी का
सम्बन्ध	हाथी-ओ, हाथीए	हाथी-ओ, हाथी ए
अधिकरण	हाथी दी, हाथीआ	हाथी दी, हाथीआ

कुल्लुई:—

कर्त्ता	हाथी	हाथी
कर्म	हाथीबे	हाथीबे
करण	हाथीन	हाथीन
सम्प्रदान	हाथीबे	हाथीबे
अपादान	हाथीन	हाथीन
सम्बन्ध	हाथीरा, हाथीए	हाथीरा, हाथीए
अधिकरण	हाथी मांझे, हाथी आ	हाथी मांझे, हाथी आ

ऊकारान्त संज्ञाओं, जैसे बिच्छू 'वीचू' के रूप ईकारन्त की संज्ञाओं के समान ही बनते हैं। 'बाव' पिता के रूप घौर के समान ही बनते हैं किन्तु सम्प्रदान में 'बाबा' बन जाता है। 'नाओं' नाम-के विभक्तियों के रूप नहीं बनते।

(ईकारन्त छोटी (पुत्री), स्त्रीलिंग)

सतलुज समूह २२७

कर्त्ता	छोटी	छोटी
कर्म	छोटी	छोटी
करण	छोटी का छोटीए	छोटी का, छोटीए
सम्प्रदान	छोटी लै	छोटी लै
उपादान	छोटी का	छोटी का
सम्बन्ध	छोटीए, ओ	छोटीए, ओ
अधिकरण	छोटी दी	छोटी दी

कुल्लुई :— शोरी (पुत्री)

कर्त्ता	शोरी	शोरी
कर्म	शोरी	शोरी
करण	शोरीन, शोरीए	शोरीन, शोरीए
सम्प्रदान	शोरीबे	शोरीबे
अपादान	शोरीन	शोरीन
सम्बन्ध	शोरीरा	शोरीरा
अधिकरण	शोरीन	शोरीन

बहिन 'बोबी' के रूप भी शोरी के समान ही बनते हैं।

व्यंजनान्त बेहण (बहिन)

कर्त्ता	बेहण	बेहणो
कर्म	बेहणी, बेहणो	बेहणी, बेहणो
करण	बेहणीए	बेहणीए
सम्प्रदान	बेहणी लै	बेहणी लै
अपादान	बेहणी का	बेहणी का
सम्बन्ध	बेहणीए, बेहणीओ	बेहणीए, बेहणीओ
अधिकरण	बेहणें, बेहणादी	बेहणें, बेहणादी

इसी प्रकार गाओ (गो) के भी रूप बनते हैं, किन्तु सम्बन्ध कारक में गावीओ और गावीए रूप हैं।

सर्वनाम **पुरुष वाचक**

सतलुज समूह

एकवचन	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
कर्त्ता	मूं	तू	सौ
कर्म	मं	तू	सौ

करण	मूंखा	तोंखा	तेउखा
सम्प्रदान	मूंलै	तौलै	तेउलै
अपादान	मूंखा (का)	तोंखा (का)	तेउका
सम्बन्ध	मेरो	तेरो	तेउओ
अधिकरण	मूंदी	तोंदी	तेउदी

कुल्लुई :

कर्त्ता	हांऊं	तू	सौ
कर्म	मूंम्हे	तौमै (बे)	तेइबै
करण	मून	तौन	तेउन
सम्प्रदान	मूंम्हें	तोंबे	तेइबे
अपादान	मून	तोन	तेइन
सम्बन्ध	मेरो (रा)	तेरो (रा)	तेइरा
अधिकरण	मून	तोन	तेइन

स्त्रीलिंग अन्य पुरुष के कतिपय विभिन्न रूप होते हैं, जैसे सम्बन्ध कारक में तैओ (तेसरो), सम्प्रदान में तैआ ले (तेसालै), अपादान में तैआ का (तेसा का), अधिकरण में तैआ दी (तेसादी)।

बहुवचन पुरुषवाचक

सतलुज समूह :—

कर्त्ता	हांमें	तूमें (तोमें)	सै
कर्म	हांमा	तूमा (तोमा)	तीना
करण	हांमा का, हांमें	तोमा का	तीना का
सम्प्रदान	हांमा लै	तोमा लै	तीना लै
अपादान	हाँमा का	तोमा का	तीना का
सम्बन्ध	म्हारो,म्हारे,म्हारी	थारो,थारे,थारी	तीनो, तीने, तीनी
अधिकरण	हामाँदी	तोमादी	तीनादी

कुल्लुई :—

कर्त्ता	आस्से	तुस्से	सै
कर्म	आस्सोवे	तुस्साबें	तिन्हाबे
करण	आस्सान	तुस्सान	तिन्हान
सम्प्रदान	आस्साबे	तुस्साबें	तिन्हाबे
अपादान	आस्सान	तुस्सान	तिन्हान
सम्बन्ध	आस्सारा-रे-री	तुस्सारा-रे-री	तिन्हारा-रे-री
अधिकरण	आस्सन	तुस्सन	तिन्हन

निकटवर्ती निश्चयात्मक सर्वनाम जौ (यह) का रूप देखें :—

सतलुज समूह	पुंलिंग एक वचन	स्त्रीलिंग एकवचन	वहुवचन
कर्त्ता	जौ	जौ	जै
कर्म	ऐउ	ऐआ	ईना, ईने
करण	ऐउ का	ऐआ का	ईना का
सम्प्रदान	ऐउ लै	ऐआ लै	ईना लै
अपादान	ऐउका	ऐआ का	ईना का
सम्बन्ध	ऐउओ	ऐओ	ईनो
अधिकरण	ऐउदी	ऐआदी	ईनादी

सम्बन्ध वाचक जुण (जो)

	एकवचन	वहुवचन
कर्त्ता	जुण	जुण
कर्म	जुणी	जुणीए
करण	जौहा का	जोनाका, जुणीका
सम्प्रदान	जोहालै	जोहालै
अपादान	जोहाका, जुणी, जुणीए	जौनाका, जुणीका, जुणीए
सम्बन्ध	जोहरो	जोहरो
अधिकरण	जोहादी	जोहादी

कुल्लुई के रूप हैं : कर्म जुणीबे, करण और अपादान जोइन, जिन्हान, सम्प्रदान जौसाबै, जिन्हाबे, सम्बन्ध जौसारा, जिन्हारे तथा अधिकरण जौसान, जिन्हान। निकटवर्ती निश्चयात्मक सर्वनाम 'जौ' के रूप भी इसी प्रकार बनते है।

प्रश्नवाचक कुण (कौन)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कुण	कुण
कर्म	कुणी	कुणीए
करण	कोहाका, कुणीए	कोहाका, कुणी का
सम्प्रदान	कोहा लै	कोहा लै
अपादान	कोहा का, कुणीए	कोहा का, कुणी का
सम्बन्ध	कोहरो (केसरो)	कोहरो (केसरो)
अधिकरण	कोहादी (कोसदी)	कोहादी (कोसदी)

"क्या" के सम्बन्ध कारक का रूप है 'किउओ'। अन्य सर्वनाम हैं 'किच' (कुछ), जुण, कुणी (जो कोई), 'जुण किच (जो कुछ)

विशेषण : उन विशेषणों की, जो संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होते हैं, संज्ञा के समान ही विभक्तियां बनती हैं, किन्तु विशेष्य के साथ लगने वाले विशेषण में जो अकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त हैं, उनके साथ कारक-चिह्न नहीं लगते।

तुलना के लिये 'का' या 'थाका' प्रयुक्त होते हैं, जैसे आच्छो (अच्छा), एथाका आच्छो (इससे अच्छा), सौभी का आच्छो (सबसे अच्छा)।

कुछ ये विशेषण हैं : ऐंणों (इस प्रकार), तेणों (उस प्रकार), केंणों (कैसा), जैंणों (जैसा), एतरो (उतना), तेतरो (इतना), केतरो (कितना), जेतरो (जितना)।

क्रिया विशेषण : कई ऐसे विशेषण हैं जो क्रिया विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। कतिपय प्रमुख क्रिया-विशेषण इस प्रकार हैं :—

कालवाचक : ऐभें, ऐभी (अभी), तेभे, तेभी (तब), जेभे, जेभी (जब), केभे, केभी (कब), ओज, आज (आज), काल, कालै (कल), पारशी, पोरशी (परसों), चौथे (चौथ), काल, हिज्ज (कल, भूतकाल), फौरज, फरेज (परसों), थनोरज (तीन दिन पहले) जेब केभी (जब कभी), केभी न, कदी न (कभी नहीं), केभी न केभी (कभी न कभी)।

स्थानवाचक : ओखै, ईंधी (यहां), तोखै, तींधी (वहां), कोखै, कीधी (कहां), जौखे, जीधी (जहां), ओखैं तिकर, ईंधा तैंई (यहां तक), ओखैं तिकर, ईंधा लै (यहां), ओखैन, ईंधा (यहां से), कीबे, कीलै (क्यों) शीघ्र, छेके (शीघ्र) नेंई, ना (नहीं), हूभी, उभी, गाशा, ऊजै (ऊपर), हूंदी, बुन्नै (नीचे), नेढी, नेड़े, सेटे (निकट), दूर (दूर), आगड़ै, आगदे, सामणै (सामने, आगे), पात्शा, पाशा, पीछै, पाछै (पीछे), भीतरे, आन्धे (अन्दर), बाहरे (बाहर), आच्छे कोरे (अच्छी तरह)।

कुछ सम्बन्ध बोधक अव्यय इस प्रकार हैं :—

पारले, पारै, पारशा (उस ओर), ओरले, वारै, आरशा (इस ओर), मोंझे, मांद्झा, मांझा (बीच) पांधै, गाहे (पर), पांधै, तैं (ऊपर), मूं आगे, मूं काय (मेरे पास), मूं सोंवे, मूंसी (मेरे साथ), तेइबे, तेउलै (उसे), तेरी तेंई (तेरे लिये), आस्सा साही, हांमा साही (हमारे जैसा)।

योजक : होर, अ, ओर (और), पर, पोर (किन्तु), जै (यदि), तेथे, एत्थीं तेंई (इसलिये), जैसौ, जिले कि (यद्यपि), जेंडा, जेंणों (मानो)।

लिपि :

पश्चिमी पहाड़ी के सारे प्रदेश की बोलियां टाकरी (टक्करी) लिपि में लिखी जाती रही हैं। इधर अब टाकरी का प्रचलन बहुत कम हो गया है और देवनागरी लिपि सर्व-प्रिय हो गई है। वैसे लिखित साहित्य नहीं के बराबर ही मिलता है।

टाकरी का काश्मीर की शारदा और पंजाब-सिंध की लंडा से निकट संबंध है। इस लिपि में स्वर योजना नितान्त अपूर्ण है। मध्यम ह्रस्व स्वर प्रायः प्रयुक्त नहीं होते हैं और मध्यम दीर्घ स्वर अपनी पूर्ण अवस्था में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे देवनागरी का 'तू' टाकरी में 'तऊ' लिखा जाता है।

मुद्रित साहित्य

मुद्रित रूप में कुल्लुई लोक-साहित्य दस-बारह वर्षों से ही हमारे सामने आया है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास डा० एम० एस० रंधावा ने किया है। उन्होंने कुल्लू की ब्यास उपत्यका के ५०-६० गीतों का संकलन कर 'कुल्लू के लोकगीत' नाम से सन् १९५५ में एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी। इस पुस्तक में 'प्यार, विरह, देवर-भाभी के गीत, नृत्य गीत," और लगभग ५० लामण दिये गये हैं। दो-चार 'समय-समय के गीत' के नाम से राष्ट्र उत्थान के गीतों को लिया गया है।

लोक-साहित्य के अन्य वर्गों सहित सर्वप्रथम निबंध प्रस्तुत लेखक का "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' षोडश भाग, हिन्दी का लोक-साहित्य में छपा है। गीतों के विभिन्न वर्गों पर इस लेखक के लेख 'सहयोग', 'दिव्य-ज्योति', 'हिम भारती', 'हिम प्रस्थ', 'मार्च आफ इण्डिया', 'एडवान्स', 'दैनिक ट्रिब्यून' तथा 'पैट्रियाट' में प्रकाशित हुये हैं। इन्हीं की एक लोक-कथा भी 'पंच जगत' पत्रिका ने छापी है। कुल्लुई लोक-कथाएं अभी तक विस्मृति के गर्त में पड़ी हैं। यदि शिमला के आस-पास की कहानियों को भी गिनती में लिया जाए, तो उनका अंग्रेजी में एक संकलन श्रीमती ड्कोर्ट ने 'शिमला विलेज टेल्स' नाम से प्रकाशित करवाया है।

हिमाचल लोक-सम्पर्क विभाग की ओर से प्रकाशित 'हिमाचल के लोक-गीत' में भी कुल्लुई भू भाग के १८ गीतों का प्रकाशन हुआ है। 'हिमप्रस्थ' में इधर कतिपय छोटे-मोटे गीत प्रकाशित होते रहे हैं।

सहायक ग्रंथ

हिन्दी :

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, (हि० स० वृ० इ०) षोडश भाग	राहुल सांस्कृत्यायन
२. कुल्लू के लोकगीत	एम०एस० रंधावा
३. धरती गाती है	देवेन्द्र सत्यार्थी
४. धीरे बहो गंगा	देवेन्द्र सत्यार्थी
५. लोक साहित्य, भाग एक और दो	रामनरेश त्रिपाठी
६. व्रजलोक साहित्य का अध्ययन (व्र०स०अ०)	डा० सत्येन्द्र
७. कनउजी लोकगीत	सन्तराम अनिल
८. राजस्थान के लोकगीत	सूर्यकरण पारिक, ठाकुर रामसिंह, नरोत्तम स्वामी
९. गढ़वाली लोकगीत	गोविन्द चातक
१०. भारतीय लोक साहित्य (भ०ल०स०)	श्याम परमार
११. भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थायें (भ०स०स०स०)	कैलाशनाथ शर्मा
१२. हिमाचल की लोककथायें	ओकले-गैरोला
१३. हिमाचल के लोकगीत	

संस्कृत :

१. ललित काव्यम्	पं० कन्हैयालाल

उर्दू :

१. तवारीखे कोहिस्ताने जुब्बल	भगवानदास
२. बहारे कुम्हारसेन	बहार सनामी

English

1. Linguistic Survey of Punjab — Grierson
2. History of the Tribes and Castes of the Punjab and N. W. F. P. — Rose, H. L.
3. History of the Punjab Hill States, Vol. I. & II. — Hutchison & Vogel
4. Folk Literature of Bengal — Sen, D.C.
5. Folk Songs of India — Mookerjee
6. Introduction to Folklore — Cox, M. R.
7. Ancient Geography of India — Cunningham
8. Archaeological Survey Report,. Vol. XIV

पत्र-पत्रिकाएं :

१. पंच जगत
२. हिमप्रस्थ
३. दिव्य ज्योति
४. सहयोग
५. सप्तसिन्धु
६. मार्च ग्राफ इंडिया